# आधुनिक हिन्दी-काव्य :
# समस्याएं एवं समाधान


लेखक :

डा. लालताप्रसाद सक्सेना,

एम ए , पी एच डी डी लिट् ,

रीडर, हिंदी-विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय,

जयपुर



उपमा प्रकाशन

# समर्पण

विद्वद्वर

डॉ० कुंवर चन्द्रप्रकाशसिंह

को,

जिनके स्नेह, सौजन्य

एवं भारतीयतानुराग

से

लेखक को सदैव

सबल मिला है,

सादर-सश्रद्ध

—लालताप्रसाद सक्सेना

# दृष्टिकोण

प्रस्तुत पुस्तक का अपना एक इतिहास है। कुछ समय पूर्व भाई डॉ० आनन्दप्रकाश दीक्षित तथा बन्धुवर डॉ० लक्ष्मीधर मालवीय ने 'परिचर्चा' में इस प्रकार का विषय रखा था और तब हम लोगों ने आधुनिक काव्य की कतिपय सम्भाव्य समस्याएँ उठाई थीं। कालान्तर में ऐसा अनुभव होने लगा कि वस्तुतः आधुनिक काव्य की समस्याओं पर विचार करने की आवश्यकता है। 'प्रियप्रवास का महाकाव्यत्व' साकेत का महाकाव्यत्व, 'कामायनी का महाकाव्यत्व', नयी-कविता की समस्याएँ आदि यदि एक ओर विशद विवेचन की अपेक्षा रखती हैं तो दूसरी ओर तटस्थ एवं निष्पक्ष दृष्टिकोण की। इसी भावना और दृष्टि से इन समस्याओं पर विचार किया गया है। प्रियप्रवास का महाकाव्यत्व बहुत पहले लिखा गया था, अतः उसमें उससे सम्बद्ध अन्य समस्याओं को समाविष्ट नहीं किया जा सका। पर साकेत तथा कामायनी के सन्दर्भ में उनसे सम्बद्ध अन्य समस्याओं को भी समाविष्ट कर लिया गया है। नयी कविता की समस्याओं पर विचार करते समय ऐसा अनुभव हुआ कि उनके विशद विवेचन के लिए एक पृथक पुस्तक की अपेक्षा है अतः जानबूझ कर उसकी कतिपय समस्याओं को यहाँ छोड़ दिया गया है। पृथक ग्रन्थ में उसकी समस्याओं पर सविस्तर विचार किया जा रहा है। यदि अध्येताओं को इनसे कुछ भी लाभ हो सका तो मैं अपना श्रम सार्थक समझूँगा।

इस कार्य में मुझे प्रियवर मोहन सक्सेना, सुश्री कल्पना एवं कामना तथा शिशु सुधांशु से प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष रूप में जो सहायता प्राप्त हुई है उसके लिए मैं उनकी मंगल-कामना करता हूँ। लेखन कार्य में व्यस्तता के कारण मैंने रुग्णावस्था में भी अपनी धर्मपत्नी श्रीमती निर्मला सक्सेना की चिन्ता न करके उनकी जो उपेक्षा की है, उसके लिए मुझे खेद है।

—लेखक

# विषयानुक्रमणिका

## प्रथम अध्याय



## द्वितीय अध्याय



## तृतीय अध्याय

# चतुर्थ अध्याय

# पंचम अध्याय

# षष्ठ अध्याय

## : १ :

# भारतेन्दु एव द्विवेदी युगीन काव्य समस्याए एव समाधान

'काव्य' शब्द सस्कृत काव्य-शास्त्र म यद्यपि साहित्य के पर्याय क रूप म प्रयुक्त हुआ है—उसके अन्तर्गत वहा दृश्य एव श्रव्य दोनो ही प्रकार का साहित्य आ जाता है—तथापि यदि सूक्ष्म दृष्टि स विचार किया जाय तो विदित होगा कि उसका इस अर्थ में प्रयोग अनुचित है। काव्य कवि की कृति है और कवि और साहित्यकार परस्पर पर्याय नही हो सकते—एक का क्षेत्र सकुचित है तो दूसरे का व्यापक। सस्कृत म दृश्य काव्य (रूपकों, म भी काव्य (कविता) का प्राधान्य रहता था, अत वहा काव्य शब्द को साहित्य के पर्याय के रूप म प्रयुक्त करना किंचित् सार्थक भले ही हो आधुनिक युग म वह अपने वास्तविक अर्थ म ही प्रयुक्त हो सकता है साहित्य अथवा कविता क अर्थ मे नही क्योंकि उसका स्थान इन दोनो क मध्य मे है—प्रथम की अपेक्षा उसका क्षेत्र सकुचित है द्वितीय की अपेक्षा व्यापक। हा काव्य और अगरेजी पोएट्री (Poetry) शब्द अवश्य समानान्तर हैं। आग्ल पोएट्री म जिस प्रकार एपिक (Epic), लिरिक (Lyric) बैलेड (Ballad) आदि सभी काव्य विधाए अन्तर्भूत हैं उसी प्रकार हिन्दी 'काव्य म भी महाकाव्य एकाथ काव्य खड काव्य गीति काव्य आदि सभी काव्य विधाए भी। तुलसी की कविता की अपेक्षा तुलसी का काव्य कहना अधिक युक्तिसगत होगा। 'कविता' शब्द को हम मुक्तक काव्य के लिए ही प्रयुक्त करना चाहिए। व्यापक अर्थ मे हम उसे प्रयुक्त नही कर सकते। ऐसा करने क पूर्व हम उससे सबद्ध काव्य विधाओ के नामकरण म परिवर्तन करना होगा—महाकाव्य को महाकविता एकाथ काव्य को एकाथ कविता और खड काव्य को खड-कविता की अभिधा देनी होगी। अत स्पष्ट है कि काव्य से आशय कवि क कर्तृत्व से, उसकी कला स है, अन्य साहित्यिक विधाओं स नहीं। आधुनिक काव्य के अन्तर्गत कवियो की कृतियों का ही समावेश हो सकता है सभी साहित्यिक रचनाओ का नही।

आधुनिक काव्य का क्षेत्र बहुत व्यापक है। भारतेन्दु द्विवेदी, छायावाद, प्रगतिवाद तथा प्रयोगवाद सभी युगो का काव्य उसकी परिधि के अन्तर्गत है। अत यहा हम क्रमश प्रत्येक की कतिपय समस्याओ पर प्रकाश डालेंगे।

भारतेन्दु युगीन काव्य की प्रमुख समस्या आलोचको का उसके महत्त्व निर्धारण विषयक मत वैभिन्य है। इसमे यदि एक ओर कलात्मकता एव काव्यगुण सम्पत्ति का अभाव माना जाता है तो दूसरी ओर उसकी भूरि भूरि प्रशसा की जाती है। उसक रचयिताओं के विषय म यदि एक ओर यह कहा जा सकता है कि उनका काव्य जीवन का यथावत् चित्रण मात्र है तो दूसरी ओर यह

कि उनकी व्यापक काव्य-दृष्टि तथा युगीन प्रसवकारिणी मर्मान्तक पीड़ा की इस प्रकार उपेक्षा नहीं की जा सकती। 'सीमित और गोचर जगत् की रचि गनुष्टि के स्थान पर भक्तिकाल के बाद पुनः काव्य रस को सामान्य जन समूह की ओर उन्मुख कर देने का काम'[1] इन कवियों की महान् उपलब्धि है। नवयुग के अग्रदूत 'निज भाषा उन्नति' के विधाता तथा जीवन एवं साहित्य के समन्वयकर्त्ता इन कवियों का महत्त्व अपरिमेय है। उन्होंने सामाजिक दोषों रूढ़ियों तथा कुरीतियों का विरोध किया, अन्धविश्वास की खिल्ली उड़ाई[2] छुआछूत के प्रचार पर व्यंग्य किए[3] नारी शिक्षा का समर्थन तथा बाल विवाह का विरोध किया विधवाओं के दुःख पर क्षोभ प्रकट किया, वेश्यागामी भ्रष्ट तथा मुस्लिम संस्कृति से प्रभावित हिन्दुओं की कटु आलोचना की 'ईसाइयत' और ईसाई प्रचार पर उग्र आक्रमण किए स्वदेशी धर्म और आस्था का प्रचार किया, वैष्णव होकर भी सामाजिक कल्याण की दृष्टि से समाज के आमूल चूल परिवर्तन पर बल दिया भक्ति एवं रीति युगाराध्य राधा-कृष्ण के रूप लावण्य एवं मोहिनी लीलाओं के ध्यान में मग्न होकर प्रेम का प्रवाह बहाया[4], रोग निवारणार्थ समाज का तेज चाकू से 'आपरेशन' किया, हास्य-व्यंग्य की मधुर सृष्टि द्वारा सामाजिक उत्थान में योग दिया जागरण वेला का मंगल-गीत गाकर जनता को जागरूक किया अंगरेजों की शोषण-नीति के प्रतीक टैक्स की भर्त्सना की और विदेशी सभ्यता के आकर्षण तथा प्राचीन रोजगार के बहिष्कार पर क्षोभपूर्ण व्यंग्य, अंगरेज शासकों की साम्राज्यवादी नीति का 'पर्दाफाश' स्वतन्त्रता के महत्त्व का उद्घोष लोक भाषा एवं लोक-छन्दों का व्यवहार

---

१ डा० विश्वम्भरनाथ उपाध्याय, आधुनिक हिन्दी कविता, पृ० ११०।

२ प्रचलित हाय प्रपंच परिपाटी पर तुम चलते जाते,
आर्यवंश को लज्जित करते कुछ भी नहीं लजाते।
धर्म आग्रह सब है केवल करने ही को झगडा,
नहीं तो सत्य धर्म प्रेमी से कैसा किससे रगडा।
—बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमघन'।

३ बहुत हमने फैलाए धर्म
बढ़ाया छुआछूत का कर्म।
—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र भारत-दुर्दशा (सं० शि ला जोशी), पृ० १५।

४ छहरें मुख पै घनश्याम से केश, इत सिर मोर पखा फहरें।
उत गोल कपोलन पै अति लोल अमोल लली मुकुता थहरें।
इहि भांति सो बद्रीनारायण जू दोऊ देखि रहे जमुना लहरें।
नित ऐसे सनेह सो राधिका श्याम हमारे हिए में सदा बिहरें।
बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमघन'।

तथा महाजनों की कपटपूर्ण शोषण नीति का रहस्योद्घाटन किया। यदि एक ओर उन्होंने प्राचीन भक्ति एवं रीतिकालीन परिपाटी पर शृंगारी एवं भक्ति-काव्य की रचना की तो दूसरी ओर धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक सांस्कृतिक एवं भाषा संबंधी समस्याओं के चित्र तथा उनके समाधान प्रस्तुत किए यदि एक ओर उन्होंने ब्रजभाषा की सरसता पर मुग्ध होकर उसमें प्रचुर काव्य रचना की तो दूसरी ओर युगजीवन की आवश्यकता का अनुभव करके खड़ी बोली का स्वरूप निर्माण करके उसे काव्य-क्षेत्र में स्थान दिया[1], यदि एक ओर गम्भीर साहित्य की सृष्टि की तो दूसरी ओर लोक-साहित्य की ओर भी पर्याप्त ध्यान दिया, यदि एक ओर कवित्त, सवैया, रोला छप्पय, दोहा आदि साहित्यिक छन्दों का प्रयोग किया तो दूसरी ओर कजली, ठुमरी चती होली, खेमटा कहरवा गजल, अद्धा, सामी, लवें लावनी बिरहा, चननी आदि लोक छन्दों के अपनाने पर भी बल दिया 'सुहाती', 'रुलाती गालियों' तथा शिष्ट कबीरा की भी रचना की, यदि एक ओर रीतिकालीन आचार्यों की भांति यौन विकृति—स्वरति समरति चित्ररति, वस्त्ररति आदि—की व्यजना की तो दूसरी ओर सूर एवं तुलसी की भांति निर्मल सात्विक प्रेम एवं भक्ति विषयक पदों की भी सृष्टि की[2], यदि एक ओर जन भाषा में अपने विचारों को पद्यबद्ध किया तो दूसरी ओर यत्र-तत्र उत्कृष्ट काव्य[3] के भी उदाहरण प्रस्तुत किये, यदि एक ओर

———

१ साझ सवेरे पछी सब क्या कहते हैं कुछ तेरा है।
हम सब एक दिन उठ जाएंगे यह दिन चार बसेरा है।
—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, प्रेम प्रलाप भा० ग्र०, द्वि० स० पृ० २९९।

तथा
वन्दनीय वह देश जहा के देशी निज अभिमानी हों।
बान्धवता में बधे परस्परता के निज अज्ञानी हों।
—श्रीधर पाठक।

२ ब्रज के लता पता मोहिं कीजै।
गोपी पद-पंकज पावन की रज जामें सिर भीजै।
आवत जात कुंज की गलियन रूप सुधा नित पीजै।
श्री राधे राधे मुख, यह वर मुंह माँग्यो हरि दीजै।
—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र श्री चन्द्रावली (स० वार्ष्णेय), प्र०स०, पृ० ५२।

३ सखी ये नैना बहुत बुरे।
तब सों भए पराए हरि सो जब सों जाइ जुरे।
मोहन के रस बस ह्वै डोलत, तलफत तनिक दुरे।
मेरी सीख प्रीति सब छाँडी ऐसे ये निगुरे।
जग खीझ्यो बरज्यों प ये नहिं हठ सों तनिक मुरे।
अमृत भरे देखत कमलन से विष के बुते छुरे।
—भा० हरिश्चन्द्र श्रीचन्द्रावली (स० वार्ष्णेय) प्र० स०, पृ० ७२।

मुक्तक काव्य की रचना की तो दूसरी ओर 'जीर्णजनपद'[1] जैसे प्रबन्ध काव्य की भी, यदि एक ओर राजनीति, समाजनीति एवं काव्य का समन्वय किया तो दूसरी ओर गद्य एवं पद्य की भाषा के बीच की सम्मान रेखा के निवारण का प्रयत्न भी। प्रबन्ध काव्य के अभाव में सुन्दर के स्थान पर किसी उदात्त चरित्र की सृष्टि भले ही इस काव्य में न मिले किन्तु प्रबन्ध काव्य के उदात्तचरित्र के अभाव की पूर्ति इन कवियों का उदात्त हृदय अवश्य करता है। छोटी छोटी कविताओं में 'प्रकृति चित्रणों अथवा लोक-गीतों में सामूहिक भावनाओं को व्यक्त करने वाले, कभी प्रेम में मग्न होते हुए, कभी रोगियों को उनकी लापरवाही पर डाटते हुए कभी मनोरंजक और दम्भियों का परिहास करते हुए, कभी अपने अतीत स्वप्नों में उड़ते हुए कभी विदेशी दस्युओं पर आक्रमण करते हुए और कभी अपने मत का समभान हुए इन कवियों की चेतना छवि उदात्त गरिमा को लेकर जब पाठकों के सम्मुख अवतरित होती है तब रीतिकालीन कवियों की शुष्कता से सर्वथा भिन्न एक अभिनव उदात्तता का अभ्युदय होता प्रतीत होता है।'[2] इसके अतिरिक्त आगामी काव्य—द्विवेदी युगीन छायावादी, प्रगतिवादी प्रयोगवादी आदि—के बीज भी इस काव्य में विद्यमान हैं उनके बीज वपन का श्रेय भी तत्कालीन कवियों को है। किन्तु यह सब होते हुए भी इस काव्य के कलापक्ष की अपरिपक्वता की भी उपेक्षा नहीं की जा सकती कलात्मकता अभिव्यक्तिक क्षमता तथा शैली शिल्पगत भव्यता के अभाव में उसे उत्कृष्ट काव्य की संज्ञा नहीं दी जा सकती, उसका अभाव उसमें सदैव खटकता रहेगा। काव्य में कलात्मकता को महत्त्व देने वाले आलोचक इसे प्रचारात्मक भोंडी प्रवृत्ति का काव्य कहेंगे। अतः प्रश्न है कि काव्य का मूल्यांकन जीवन तथा कला में से किस मापदण्ड के आधार पर किया जाए? किन्तु समस्या ऐसी नहीं है कि समाधित ही न हो सके। काव्य में केवल जीवन चित्रण को महत्त्व देने वाले तथा उसे जीवन का पद्यबद्ध चित्रण मात्र मानने वाले आलोचक भले ही उसकी मधुकर वृत्ति से प्रशंसा करें अपने उत्तरदायित्व की गुरु गम्भीरता को समझने वाला हंस वृत्ति का आलोचक उनके स्वर में स्वर नहीं मिला सकता। ऐसा करके वह अपने कर्तव्य-कर्म का निर्वाह नहीं कर सकता, कला एवं शैली शिल्पगत सौन्दर्य के अभाव में वह उसे उत्कृष्ट कोटि का काव्य नहीं मान सकता, निम्न श्रेणी के काव्य में ही स्थान देगा। काव्य में भाव एवं कला का मणि कांचन संयोग उत्कृष्ट काव्य की विशेषता है, दोनों में से किसी की भी उपेक्षा नहीं की जा सकती।

भारतेन्दु *युगीन काव्य* की दूसरी प्रमुख *तथाकथित समस्या* तत्कालीन कवियों की ब्रिटिश राज्य भक्ति एवं देश भक्ति की विरोधी प्रवृत्तियां हैं।

———

१ बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमघन', जीर्णजनपद।

२ डा० विश्वम्भरनाथ उपाध्याय, आधुनिक हिन्दी कविता पृ० ११०।

किन्तु सूक्ष्म दृष्टि से देखने से विदित होता है कि तत्कालीन भारत की स्थिति उस देश की सी थी जो किसी अत्याचारी विदेशी शासक के पजे से मुक्त करके किसी सुविचारी शासक के अधीन कर दिया गया हो कठोर कारावास के भोगी अभियुक्त को यदि उसके स्थान पर उच्चतम श्रेणी क सुख सुविधा सम्पन्न कारावास का दड दिया जाय तो स्वभावत ही उसे किंचित् सतोष हागा। यही बात तत्कालीन भारत तथा उसके कवियो के विषय मे कही जा सकती है। ईस्ट इ डिया कम्पनी के अत्याचारो से पीडित भारतीय जन समुदाय जब ब्रिटिश शासन के अधीन कर दिया गया तो स्वभावत ही उसने किंचित् सतोष की सास ली।[1] कि तु साथ ही वह यह भी कहना न भूला —

अ गरेज राज सुख साज सबै अति भारी ।
पै धन विदेस चलि जात यहै अति ख्वारी ।[2]

इसके अतिरिक्त तत्कालीन कवियो म से अनक न भारत मे अ गरजी शासन की कटु आलोचना भी की है। आग्ल महाप्रभुओं के शासन से देश की जो दुदशा हुई, उसस विह्वल हो कर वे त्राहि त्राहि कर उठे। श्री राधाचरण गोस्वामी की निम्नांकित पक्तिया इसी वस्तुस्थिति की परिचायिका हैं —

"मैं हाय हाय दे धाय पुकारौं कोई।
भारत की डूबी नाव उबारो कोई।
उड गये वेग के बादवान अति भारे।
अपिजन रस्सा नहिं रहे खैंचने हारे।
यामैं चिन्तामणि सदृश रत्न की ढेरी।
यामैं अमृत सम औषधीन की फेरी।
बल चली सकल यूरोप हाय मति सोई।
भारत की डूबी नाव उबारो कोई।"

तथा

'भारत गारत ह्वै रह्यौ अति आरत कलिकाल में।"[3]

स्वय भारतेन्दु के हृदय म भी विदेशी महाप्रभुओ की साम्राज्यवादी नीति के प्रति घोर असतोष है। उनके कूटनीतिक छद्म रूप का रहस्योद्घाटन करते हुए वे कहते हैं— 'भीतर भीतर सब रस चूसै।
बाहर से तन मन धन मूसै।

---

१ परम मोक्ष फल राजपद परसत जीवन माहि।
ब्रिटन देवता राजसुत पद परसहु चित चाहि।
—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र।

२ भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, भारत-दुर्दशा (स० जोशी) प्र०स० पृ० ४।

३ भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, भारत-दुर्दशा (स० जोशी), प्र० स०, पृ० ४।

जाहिर बातन म अति तेज
क्यों सखि साजन, नहिं अँगरेज ।[1]

अत स्पष्ट है कि तत्कालीन कवि औचित्य क समथक तथा हस के समान क्षीर नीर के पृथक्कर्ता थे । उनकी देश भक्ति मे किसी प्रकार का सन्देह नही । ब्रिटिश सम्राज्ञी विक्टोरिया क प्रति उनकी कृतज्ञता तथा उसकी मृत्यु पर उनका समवेदना प्रकाश उनके हृदय की कृतज्ञतादि सात्विक वत्तियो का परिचायक है । उनके मन मस्तिष्क एव हृदय के कपाट समान रूप से खुले थे । अपने देश की दुदशा से विह्वल किन्तु ब्रिटिश शासन क प्रति उदार इन कवियों की वाणी मानव हृदय की विरोधी अविरोधी वत्तियो की वह सम्मेलन-स्थली है जो जीवन मे प्राय कम देखने मे आती है । कहने की आवश्यकता नहीं कि उनकी राज भक्ति देश भक्ति का ही एक अग है और यदि ध्यानपूवक देखें तो विदित होगा कि देश भक्ति का पलडा राज भक्ति से कही भारी है । भारतीय सस्कृति के अतीतकालीन महत्त्व पौराणिक ऐतिहासिक पात्रो तथा देश के गौरव-प्रतीको का सामगान सामयिक जीवन की विभिन्न समस्याओ क चित्रण एव उनके परोक्ष—कान्तासम्मित—समाधान देश की दुदशा स पीडित विह्वल होकर विश्व नियन्ता की पुकार[2] एव अवतार धारण के लिए उनकी मनुहार[3] आंग्ल जाति एव आंग्ल भाषा पर व्यग्य तथा उनकी निन्दा आदि इन कवियो के वाणी-व्यापार तत्कालीन जीवन-व्यापारों के प्रतिबिम्ब हैं ।

इस युग क काव्य की तीसरी प्रमुख समस्या नूतन भाषा भवन क निर्माणक इन कवियो क समुचित महत्व निर्धारण की है । ब्रजभाषा का जो भ य भवन पूववर्ती कवियो द्वारा प्रतिष्ठित किया गया उसकी शोभा वृद्धि का काय उतना गुरुतर न था जितना खडी बोली के नव्य भाषा भवन के नियोजन निर्माण एव शोभा-वद्धन का था । भारतेन्दु आदि कवियो ने जहा एक ओर परम्परागत ब्रजभाषा काव्य की सृष्टि म योग दिया वहा दूसरी ओर उन्होने खडी बोली का स्वरूप निर्माण तथा उसके साहित्य की सृष्टि भी की । अत नव्य भाषा एव साहित्य निर्माणक की दृष्टि स उनका महत्व सदव अक्षुण्ण रहेगा ।

———

१ भारतेन्दु ग्रन्थावली भाग पृ० ८११ ।

२ भारतेन्दु हरिश्चन्द्र भारतेन्दु सुधा (ब्रजरत्नदास प्र स ), पृ ३८ पद ८ ।

३ प्रभु हो पुनि भूतल अवतरिए ।
अपनो या प्यार भारत क पुनि दुख दारिद हरिए ।
—राधाकृष्णदास ।

द्विवेदीयुगीन काव्य की प्रमुख समस्या काव्य में शृंगाराधिक्य के समयको एव विरोधियों की विरोधी विचारधाराएं हैं। इस विषय में यदि एक ओर एक वर्ग के आलोचक शृंगारी काव्य को असामयिक अनिष्टकारी एव अवांछित बताते हैं—

(क) 'प्यारी की विरह-व्यथा वर्णन का अब समय नहीं है। पिछले कवि उक्त विषय मे जो कुछ कर गये हैं, वह कम नहीं है। इस समय के कवि उनकी नकल करके नाम नहीं पा सकते। [१]

(ख) शृंगार रस की धारा ने भी हमारा अल्प उपकार नहीं किया है उसने भी हम कामिनी-कुलशृंगार का लोलुप बना कर समुन्नति के समुच्च शृंग से अवनति के विशाल गर्त म गिरा दिया।' [२]

(ग) एक दिन साहित्य संसार शृंगार रस से आप्लावित था, उसी की आनन्द भेरी जहां देखो वहां निनादित थी। समय-प्रवाह ने अब रुचि को बदल दिया है, लोगो के नेत्र अब खुल गये हैं, कविगण अपना कर्तव्य अब समझ गय हैं।" [३]

(घ) "सकडों वर्षों से शृंगारी कविता ने हिंदुओं मे आलस्य बेकारी कायरता कुरुचि और चरित्रहीनता का विष फला रखा है। पुराने शृंगारी कवियों ने जो कुछ कहा है वह कला की दृष्टि से चाहे जसा उत्कृष्ट हो पर उपयोगिता की दृष्टि स वह समय क अनुकूल नहीं है।" [४]

(ड) 'सोचो हमारे अर्थ है यह बात कैसे शोक की—
श्रीकृष्ण की हम आड लेकर हानि करते लोक की।
भगवान को साक्षी बनाकर यह अनर्गोपासना
है धन्य ऐसे कविवरों को धन्य उनकी वासना।' [५]

तो दूसरी ओर शृंगार रस के प्रेमी आलोचक शृंगार-विहीन अथवा मर्यादित शृंगारी काव्य का शुष्क, नीरस एव इतिवृत्तात्मक कहकर उसका अवमूल्यन एव तिरस्कार करते हैं —

महावीरप्रसाद द्विवेदी के प्रभाव से इस युग की काव्यधारा नतिकता के कठोर बन्धनों मे जकड-सी गई है। भारतेन्दु युग म नवीन भावनाओं के समावेश के साथ ही प्राचीन शृंगार की धारा भी प्रवाहित हो रही थी किन्तु द्विवेदी-युग में रीतिकालीन शृंगाररस की धारा के विरुद्ध प्रतिक्रिया हुई, यहाँ तक कि शृंगार रस

---

१ बालमुकुन्द गुप्त, बालमुकुन्द गुप्त स्मारक ग्रन्थ, स० २००७ वि० पृ० १२०।
२ हरिऔध सन्दर्भ सर्वस्व पृ० १४४।
३ वही, सरस्वती, फरवरी १६२६ पृ० १०१।
४ रामनरेश त्रिपाठी स्वप्नों के चित्र अपनी कहानी, प० १।
५ मैथिलीशरण गुप्त भारत-भारती, पृ० १६१।

गत रूढियों के स्थूल समावेश के अभाव म उ हें एकाथ काव्य अथवा केवल प्रब ध काव्य की अभिधा प्रदान करते हैं । अत आलोचकों के इन विरोधी वर्गों के विचारों के औचित्यानौचित्य विवेचन तथा उक्त का य ग्रन्थों के स्वरूप निर्धारण के लिए उनका पथक सविस्तर विवेचन आवश्यक है। कि तु स्थानाभाव के कारण हम यहा केवल प्रिय प्रवास' के स्वरूप निर्धारण तक ही अपने को सीमित रखेंगे।

प्रिय प्रवास आधुनिक हि दी साहित्य का गौरव-ग्रन्थ है यह निर्विवाद रूप से प्राय सभी आलोचको को मा य है कि तु वह प्रब धकाव्य की किस कोटि म आता है इस विषय मे आलोचको मे पर्याप्त मत व मि य है। उसके महाकाव्यत्व के विषय में जहा एक ओर श्री भुवनेश्वरनाथ मिश्र लिखत हैं —

"श्रीमद्भागवत के दशम स्क ध तथा सूरसागर के समस्त गीतो का एक साथ ही आन द लेने की जिसे लालसा हो वह प्रियप्रवास के परम मधुर रस म डूबे। खडी बोली का एकमात्र महाका य प्रियप्रवास जिस प्रकार अपनी सुकुमारता कोमलता तथा माधुय म अन य है उ ही प्रकार हरिऔध जी भी काव्य-साम्राज्य के एक मात्र चक्रवर्ती नरेश हैं।"[1]

वहा दूसरी ओर आचाय रामच द्र शुक्ल अपनी भिन्न विचारधारा प्रस्तुत करते हैं—

'जब पडित महावीरप्रसाद द्विवेदी के प्रभाव से खडी बोली ने सस्कृत छ द और सस्कृत की समस्त पदावली का सहारा लिया तब उपाध्याय जी—जो गद्य म अपनी भाषा सम्ब धी पटुता को दो हद पर पहुँचा चुके थे—उस शली की ओर भी बढे और सवत् १९७१ म उ होने अपना 'प्रिय प्रवास' नामक बहुत बडा काव्य प्रकाशित किया।

खडी बोली मे इतना बडा काव्य अभी तक न हीं निकला है। बडी भारी विशेषता इस काव्य की यह है कि यह सारा सस्कृत के वर्णवृत्ता म है जिसमें अधिक परिमाण म रचना करना कठिन काम है। उपाध्याय जी कोमलका त पदावली को कविता का सब कुछ नही तो बहुत कुछ समझते हैं।

यह काव्य अधिकतर भावव्यजनात्मक और वर्णनात्मक है। कृष्ण के चले जाने पर व्रज की दशा का वर्णन बहुत अच्छा है जसा कि इसके नाम स प्रकट है, इसकी कथावस्तु एक महाका य क्या अ छे प्रब ध काव्य क लिए भी अपर्याप्त है। अत प्रब धकाव्य के सब अवयव इसमें कहां से आ सकते हैं।'[2]

---

१ महाकवि हरिऔध' माधुरी वर्ष ११, खण्ड १ स० ३।

२ आचाय रामचन्द्र शुक्ल, हि दी-साहित्य का इतिहास, तेरहवा पुनमुद्रण स० २०१८ वि० पृ० ५८१-५८२।

जहा एक ओर डा० धर्मेंद्र ब्रह्मचारी उसे महाकाव्य के परम्परागत काव्य शास्त्रीय लक्षणो की कसौटी पर सफल सिद्ध करके उसके महाकाव्यत्व एव तद्विषयक महत्त्व का समर्थन करते हैं—

'यह स्वीकार करना ही पडेगा कि महाकाव्य की दृष्टि से 'प्रियप्रवास' अपने जसा आप ही है।"[1]

वहा दूसरी ओर डा० शम्भूनाथसिंह उसके महाकाव्यत्व का निषेध करते हैं —

'प्रियप्रवास खडी बोली हिन्दी का सर्वप्रथम बडा प्रबन्ध काव्य है। हरिऔध जी ने इसे आधुनिक ढग का महाकाव्य बनाने का प्रयत्न किया है। आधुनिकता लाने के लिए उन्होंने महाकाव्य के अनेक शास्त्रीय लक्षणों को नहीं अपनाया है इस तरह यह काव्य प्रधानतया भावव्यजक और वर्णनात्मक है। उसमे काव्यात्मक उत्कृष्टता है किन्तु जीवन के केवल एक ही पक्ष और हृदय की एक ही भावना की प्रधानता होने से यह महाकाव्य की दृष्टि से एकागी है।

कवि ने जितनी शक्ति यशोदा, राधा तथा गोप-गोपियों के विरह-वर्णन में लगाई है उतनी कृष्ण के महान् चरित्र के चित्रण और उनके सन्त व्यक्तित्व के उद्घाटन मे नहीं। यही कारण है कि कस वध जैसी बडी घटना भी प्रिय प्रवास में महत् काय के रूप म नहीं चित्रित हुई है। घटना-विरलता और वर्णन-विस्तार के कारण इसमें कथानक बहुत सक्षिप्त है और उसमे वह प्रवाह तथा जीवन्तता नहीं जो महाकाव्य क कथानक म होनी चाहिए।'[2]

जहा एक ओर प० लोचनप्रसाद पाडेय डा० प्रतिपालसिंह, डा० गोविन्दराम शर्मा, डा० गोविन्द त्रिगुणायत डा० सुधीन्द्र डा० रवीन्द्रसहाय वर्मा तथा डा० द्वारिकाप्रसाद आदि आलोचक उसके महाकाव्यत्व का समर्थन करते हैं —

(क) 'यह महाकाव्य अनेक रसो का आवास विश्व प्रेम शिक्षा का विकास, ज्ञान वैराग्य भक्ति और प्रेम का प्रकाश एव भारतीय वीरता धीरता, गम्भीरता पूरित स्वधर्मोद्धार का पथ-प्रदर्शक काव्यामृतोच्छ्वास है।"[3]

(ख) प्रियप्रवास म भारतीय सस्कृति के महाप्रवाह का उद्घाटन भली प्रकार हुआ है तथा महच्चरित्र क विराट उत्कर्ष के प्रकटीकरण का यहा विराट् आयोजन किया गया है। इसी कारण यह काव्य महाकाव्यो की श्रेणी मे स्थान पाने का अधिकारी है।'[4]

---

१ धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी, महाकवि हरिऔध का प्रियप्रवास, पृ० १७
२ हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास द्वितीयावृत्ति, १९६२, पृ० ६६६-६८७
३ महाकवि हरिऔध, पृ० १०-११
४ बीसवी शती के महाकाव्य पृ० १००-१०१

(ग) 'संस्कृत साहित्य में आचार्यों ने महाकाव्य के जो लक्षण निर्धारित किये हैं, उनके आधार पर प्रियप्रवास एक सफल महाकाव्य सिद्ध होता है। महाकाव्य के परम्परागत लक्षणों के अनुसार प्रियप्रवास की रचना एक सर्गबद्ध काव्य के रूप में हुई है। धीरोदात्त नायक के गुणों से युक्त यदुवंशीय कृष्ण इसके नायक हैं। विप्रलम्भ शृंगार इसमें प्रधान रस है। करुण, वीर, शान्त, वात्सल्य आदि अन्य रस भी गौण रूप में इसमें वर्तमान हैं। कथानक भी लोक प्रसिद्ध कृष्ण चरित से सम्बन्धित है। अन्तिम सर्ग में धर्म की प्राप्ति है। पाँचों सन्धियाँ साधारण रूप में मिल सकती हैं। आरम्भ वस्तुनिर्देशात्मक मंगलाचरण से मान सकते हैं। पाठ से अधिक सत्रह सर्ग हैं। छन्दों के प्रयोग के सम्बन्ध में प्रियप्रवास में परम्परागत नियमों का अक्षरशः पालन नहीं हुआ है। सन्ध्या, रात्रि, सूर्योदय, संयोग, वियोग, नगर, नदी, वन, पर्वत आदि के विस्तृत वर्णन पाये जाते हैं। नामकरण भी काव्य के प्रतिपाद्य विषय के आधार पर किया गया है। इस प्रकार महाकाव्य के शास्त्रीय लक्षणों के अनुसार प्रियप्रवास एक सफल महाकाव्य सिद्ध होता है।

महाकाव्य में शास्त्रीय लक्षणों के निर्वाह के साथ साथ कतिपय अन्य विशेषताएँ भी होनी चाहिए। इन विशेषताओं में विषय की व्यापकता, कथानक की विविध घटनाओं के साथ अन्विति और मानव जीवन की गहनतम अनुभूतियों तथा उच्च आदर्शों की उद्भावना मुख्य हैं। इन तीन प्रमुख विशेषताओं में से केवल प्रथम विशेषता प्रियप्रवास में नहीं पाई जाती। प्रियप्रवास का विषय बहुत संकुचित है। अन्तिम दो विशेषताएं प्रियप्रवास में वर्तमान हैं। इसलिए कतिपय त्रुटियों के अस्तित्व में भी प्रियप्रवास को हम हिन्दी के वर्तमान महाकाव्यों का अग्रदूत स्वीकार करते हैं।'[1]

(घ) साकेत के सदृश प्रियप्रवास भी आधुनिक ढंग का एक सुन्दर महाकाव्य है। उसमें शास्त्रीय लक्षणों की प्रतिष्ठा के साथ साथ नूतन दृष्टिकोण का भी स्थान दिया गया है। साकेत और प्रियप्रवास दोनों में ही नायक की अपेक्षा नायिका के चरित्र चित्रण को प्रधानता दी गई है। राष्ट्रीय चेतना दोनों ही महाकाव्यों में मुखरित है।'[2]

(च) द्विवेदी काल की इससे भी बड़ी देन है प्रियप्रवास और 'साकेत' महाकाव्यों की सृष्टि। इन प्रबन्धकाव्यों में 'हरिऔध' और गुप्तजी ने प्रबन्धकाव्य

---

१ डा० गोविन्दराम शर्मा हिन्दी के आधुनिक महाकाव्य, प्र० सं० '५६ पृ० १३३-१३५।

२ डा० गोविन्द त्रिगुणायत शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त द्वि० भा० १९७६, पृ० ६२।

की टूटी हुई परम्परा को पुनः स्थापित किया और उसे उच्चता तक पहुँचाया भी। 'प्रियप्रवास' में नई दिशा थी, आज भी उसका अनुकरण न हो सका। उसमें मानववाद और मानव प्रेम की उत्थान चिन्ताधारा का पूर्ण प्रभाव है श्रीकृष्ण और राधिका के लोक सग्रही रूप में और उनके प्रेम के उन्नयन में।''[1]

(ख) 'द्विवेदी युग में लिखे गए महाकाव्य भारत के प्राचीन महाकाव्यों की परम्परा से कुछ दूर हो जाते हैं। 'प्रिय प्रवास' और 'साकेत' महाकाव्य अपनी विशेषताओं में 'महाभारत', 'रामायण', 'पृथ्वीराज रासो', 'पदमावत', 'रामचरित मानस', 'रामचन्द्रिका' इत्यादि संस्कृत और हिन्दी महाकाव्यों से भिन्न हैं। हिन्दी काव्य के रूप परिवर्तन का मुख्य कारण पाश्चात्य प्रभाव है। 'प्रियप्रवास' के लिखने में उपाध्याय जी ने अतुकान्त छन्द का प्रयोग किया है। यद्यपि संस्कृत में भी अतुकान्त छंद का प्रयोग होता था किन्तु इसकी प्रेरणा उन्हें अंग्रेजी महाकाव्यों से ही मिली। मंगलाचरण, वस्तुनिर्देश इत्यादि का बहिष्कार भी इन महाकाव्यों में पाश्चात्य प्रभाव के कारण ही हुआ। इसके अतिरिक्त 'प्रिय प्रवास' और 'साकेत' दोनों ही महाकाव्य अपनी रचना और भावभूमि में नये हैं। इन दोनों पर मिल्टन एवं अन्य पाश्चात्य महाकवियों का प्रभाव माइकेल मधुसूदन दत्त की कवियों के माध्यम से पड़ा है गुप्त जी तथा उपाध्याय जी दोनों ही पाश्चात्य प्रभाव ग्रहण करने वाले बंगला कवि मधुसूदन दत्त से प्रभावित थे। अतएव यह स्वाभाविक ही है कि उन पर इसी बंगला कवि के माध्यम द्वारा प्रभाव पड़ा हो।''[2]

वहीं दूसरा ओर बाबू गुलाबराय[3] डा० रामअवध द्विवेदी[4], क्षेमचन्द्र सुमन[5] तथा योगेन्द्र मल्लिक उसके महाकाव्यत्व को प्रश्नचिह्न के साथ

---

१ डा० सुधीन्द्र, आधुनिक हिन्दी कविता की विभिन्न धाराएं साहित्य-समीक्षांजलि, द्वि० स० १९५९ पृ० १२६

२ डा० रवीन्द्रसहाय वर्मा हिन्दी-काव्य पर आंग्ल प्रभाव, प्र० स० स० वि० २०११ पृ० १२४-१२५।

३ अतुकान्त संस्कृत छन्दों में लिखे हुए प्रियप्रवास का महाकाव्य के रूप में स्वागत किया गया। प्रिय-प्रवास में यद्यपि महाकाव्य के बहुत से लक्षणों का निर्वाह हो जाता है तथापि उसका मूल ध्येय विरह-निवेदन होने के कारण उसे महाकाव्य की पंक्ति में प्रश्नचिह्न के साथ ही रखा जायगा।

—गुलाबराय काव्य के रूप च० स० १९५८, पृ० ९८-९९।

४ डा० रामअवध द्विवेदी साहित्य रूप प्र० स० २०१८ वि०, पृ० २१९-२२०।

५-६ क्षेमचन्द्र सुमन तथा योगेन्द्रकुमार मल्लिक, साहित्य विवेचन द्वि० स० १९५५ पृ० ८५-८६।

एक ही ढग रहेगा, यह मानना या कहना हास्यास्पद होगा। प्राचीन भारतीय और आधुनिक कहानी कहने अथवा लिखने की एक ही ऐतिहासिक प्रणाली थी, किन्तु आज उसकी अनेक शलिया प्रचलित हैं। पत्र, दैनिकी सवाद अथवा आत्मचरितात्मक सभी शलियो का समान महत्त्व है। यही नहीं, सवाद अथवा ऐतिहासिक शैलियो की अपेक्षा पत्र, दनिकी एव आत्मचरितात्मक शलिया मे लिखी गई कहानियो—उसम वर्णित कथावस्तु—का कही अधिक प्रभाव पडता है, पाठक अथवा श्रोता के मन–मस्तिष्क पर जितनी इस प्रकार की शलियो में लिखी कहानियों की कथा वस्तु छा जाती है उतनी अन्य शलिया मे व्यजित विषय-वस्तु नहीं। पुन कहानिया, नाटका एव उपन्यासो की विषय-वस्तु कभी कभी स्मृति रूप म भी वर्णित होती है। कतिपय सस्मरणात्मक घटनाओं की योजना तो इन साहित्यिक विधाओ मे प्रायेण उपलब्ध हो जाती है। यही नहीं, महाकाव्यो म भी यदा-कदा घटनाओं का वणन स्मृति रूप में रहता है। वतमान पट कथाओं मे तो प्राय अनेक घटनाए सस्मरणात्मक रूप मे वर्णित की जाती हैं। यही नहीं, कभी कभी तो सम्पूर्ण पट कथा ही स्मृति रूप म प्रदर्शित की जाती है। जीवन म भी हम देखत हैं कि यदा-कदा घटनाओं का वणन स्मृति रूप म किया जाता है। अत जीवन तथा उसके प्रतिरूप साहित्य में घटनाओ का सस्मरणात्मक रूप म वणन न तो आश्चय का विषय होना चाहिए और न उपेक्षा का। प्रिय प्रवास' की स्मृति रूप म वर्णित घटनाओ के विषय में भी यही कहा जा सकता है।

इसके अतिरिक्त कवि निरकुश होता है—निरकुशा कवय। समाज उस पर अनावश्यक प्रतिबन्ध नहीं लगा सकता। ऐसा करना उसके परों म बेडिया डालना होगा और फिर उसका व ी मन मस्तिस्क समाज को कुछ भी मौलिक, नूतन दे सकने मे असमथ सिद्ध होगा। अत प्रिय प्रवास' का शीषक भले ही उसकी कथा-न नु की क्षीणता अथवा घटनाओ के अभाव का परिचायक हो महाकवि हरिऔध की महती काव्य प्रतिभा तथा कल्पना शक्ति के कारण उसके शीषक से होने वाले कथा सकोच क दोष का पर्याप्त परिहार हो गया है। अत यह कथन कि उसम घटनाओं का अभाव है अथवा कथा वस्तु क्षीण है, सवथा उचित नहीं कहा जा सकता। कथा तथा घटनाए उसमें हैं और उनम अभीष्ट विस्तार भी है परम्परा की लीक पीटने वाला को भले ही व दृष्टिगोचर न हों क्योंकि उनके वणन की शली अभिनव है, निराली है। उनके शिल्पविधान एव वणनों में कल्पना का भी समुचित सयोग है। उसके घटना क्रम के विषय मे बाबू गुलाबराय लिखते हैं—

'प्रिय प्रवास का भाव पक्ष पर्याप्त रूप म पुष्ट है। वतमान युग की कर्त्तव्य परायणता की माँग के साथ वयक्तिक विरह-वेदना का जितना सामञ्जस्य मिल सकता है उसका उसमें पूर्णातिपूर्ण विस्तार है। वात्सल्य की भी पावन झाँकी उसमे दिखाई देती है। घटना क्रम का अभाव तो नहीं है किन्तु, भगवान् कृष्ण क ... अम्बा दत्त

प्राचीना की सुदुख सुन के बात सारी मुरारी ।
दोनो आँखें सजल करके प्यार के साथ बोले ।
मैं आऊँगा कुछ दिन गये बाल होगा न बाँका ।
क्यों माता तू विकल इतना आज या हो रही है ।
+ + + +
आज्ञा पाके निज जनक की, मान अक्रूर बातें ।
जेठे भ्राता सहित जननी पास गोपाल आये ।
छू माता के कमल पग को धीरता साथ बोले ।
जो आज्ञा हो जननि अब तो यान पै बैठ जाऊँ ।
+ + + +
ले के माता चरण रज को श्याम औ राम दोनो ।
आये विप्रों निकट उन के पाँव की वन्दना की ।
भाई बन्दों सहित मिल के हाथ जोड़ा बड़ों को ।
पीछे बैठे विशद रथ में बोध दे के सबों को ।[1]

अत न तो यह कथन कि 'प्रिय प्रवास' के रंगमंच पर भगवान् स्वयं नहीं आए उचित है और न यही कि उसमें घटनाओं अथवा कथानक की अल्पता है। फिर भी यह सत्य है कि ग्रन्थ के दोनों ही दोषक—पूर्वनिर्धारित व्रजाङ्गना-विलाप तथा वर्तमान 'प्रिय प्रवास'—ऐसे हैं जिनके कारण कथानक में कई दोष आ गए हैं। उसमें विस्तार अवश्य है, घटनाएं एवं तत्कालीन युग-जीवन का चित्रण भी एक प्रकार से पर्याप्त है किन्तु उसके कथानक में औत्सुक्य एवं कौतूहल को जाग्रत बनाए रखने के लिए अभीष्ट उपकरणों का अभाव है। कथानक में धारावाहिकता का अभाव भी खटकता है। भगवान् कृष्ण के जीवन की पूर्व घटनाओं का स्मृति अथवा भाषण रूप में वर्णन, चलचित्रों के रंगमंच पर तो अवश्य भावपूर्ण एवं रसोत्पादक प्रतीत होगा किन्तु महाकाव्य में स्मृति-रूप में वर्णित घटनाओं से पाठक का जी ऊब जाता है और रस निष्पत्ति के लिए भी अवकाश प्रायः कम रहता है। 'प्रिय प्रवास' के कथानक में करुणाजन्य विषाद की जो धारा प्रवहमान हुई है उसके सम्पूर्ण ग्रन्थ में वर्तमान रहने के कारण कथानक के वैविध्य को भी आघात पहुंचा है और साथ ही रस निष्पत्ति में भी व्यवधान पड़ा है। उसके महाकाव्यत्व के लिए आवश्यक था कि उसके नायक कृष्ण की स्मृति-रूप में वर्णित इन जीवन-घटनाओं का रूप कुछ संक्षिप्त होता और यदि ऐसा न भी होता तो भी अपने व्यापक उद्देश्य की पूर्ति के लिए कवि को नायक के परवर्ती जीवन के विश्व प्रेमी रूप एवं तज्जन्य कार्य व्यापारों का व्यापक चित्रण करना चाहिए था। कृष्ण के परवर्ती जीवन में इस प्रकार के कार्य-व्यापारों का अभाव नहीं था। कंस वध जरासंध के अत्याचार का निवारण, निरीह प्रजा की रक्षा एवं देश में सुख शांति

[1] प्रिय प्रवास, पंचमावृत्ति पंचम सर्ग पृ० ४८-५० ।

की व्यवस्था सृष्टि विध्वंसकारी असुरों एवं नर राक्षस राजाओं के लिए समुचित दण्ड विधान, सुख शांति व्यवस्थार्थ अपने अहं एवं स्वाभिमान का परित्याग एवं द्वारिका गमन, आततायी जरासंध के वध की योजना का सफलतापूर्वक क्रियान्वयन, दुष्ट शिशुपाल का वध, महाभारत युद्ध में उनकी महत्वपूर्ण भूमिका—युद्ध निवारण के प्रयत्न एवं अंत में न्याय का पक्ष ग्रहण तथा उसकी विजय में योगदान—प्रभास तीर्थ में ब्रजजनों से उनकी भेंट आदि उनके जीवन के विभिन्न रूपों के चित्रण से कथानक में वैविध्य का भी अभाव न रहता, पाठक की उत्सुकता एवं कुतूहलवृत्ति भी सर्वत्र जाग्रत रहती रमात्मकता में भी कोई व्याघात न उत्पन्न होता कथानक में अभीष्ट मोड़ों का भी समावेश हो जाता और चार कोस पर रहने वाले प्रेमी प्रेमिकाओं के द्वारा न मिल सकने की अस्वाभाविकता का भी निराकरण हो जाता। अपने पालक माता पिता, सहचर ग्वाल-बाल, प्रेयसी राधा तथा सहचरी गोपियों के वियोग से व्यथित-विह्वल होकर भी कार्यभार के कारण चार कोस की ब्रज-यात्रा का समय न पाना आज के बुद्धिवादी युग में तर्क-संगत प्रतीत नहीं होता। महापुरुष की महत्ता इसी बात में है कि वह अधिकाधिक व्यस्त होते हुए भी, कार्यभार से लदा हुआ होने पर भी प्रत्येक आवश्यक कार्य के लिए समय निकाल सकता है। कहने की आवश्यकता नहीं कि 'रागी बहुजनोपकार निरता' अनन्य प्रेमिका राधा सरल एवं सात्विक हृदय गोपमंडली तथा वात्सल्य-मूर्ति नंद एवं यशोदादि से उनका पुनः कभी न मिलना उनके हृदय की निष्ठुरता का द्योतक है। उनके प्रति भी उनका कुछ कर्त्तव्य था बुद्धिवादी कवि को इसका भी ध्यान रखना चाहिए था। उनका उनसे मिलन चाहे क्षणिक ही क्यों न होता, किन्तु वह एक अनिवार्य आवश्यकता थी, इस बात की ओर कवि ने ध्यान नहीं दिया। ऐसा करके उसने सूरदास आदि कृष्ण भक्त कवियों की परम्परा का पालन तो किया है, किन्तु औचित्य के जिस रूप की रक्षा के लिए उसने इस महाकाव्य की कथावस्तु में युगान्तरकारी कल्पना की उसका सम्यक् निर्वाह वह नहीं कर सका इसमें सन्देह नहीं। यों यह सत्य है कि 'प्रिय प्रवास' के शीर्षक के कारण उसमें बहुत सी घटनाओं का समावेश सम्भव नहीं था। इसके अतिरिक्त कवि का उद्देश्य भी इस काव्य में दाम्पत्य प्रेम के संकुचित वृत्त से ऊपर उठाकर नायक नायिका को विश्व प्रेम की भाव भूमि पर अधिष्ठित करना तथा उनके वियोग विह्वल जीवन में करुणा की अजस्रधारा प्रवहमान करना था अतः कवि को उनका पुनर्मिलन अभीष्ट न था। किन्तु साथ ही यह भी सत्य है कि कथानक की अस्वाभाविकता के निवारणार्थ यह एक अनिवार्य आवश्यकता थी, जिसकी उपेक्षा करके कवि ने कथानक को हास्यास्पद बना दिया है। इसके अतिरिक्त यह देखकर तो आश्चर्य हुए बिना नहीं रहता कि सामान्य असुरों के वध आदि की कथाएं तो 'हरिऔध' ने विस्तार से वर्णित की हैं, किन्तु 'कंस-वध' जैसी महान् घटना का एक प्रकार से उसमें कोई अस्तित्व ही प्रतीत नहीं होता। पुनः

जरासंध के आक्रमणों से अपार बल विक्रम की राशि महापुरुष कृष्ण का द्वारिका प्रयाण भी उनके जैसे महापुरुष के लिए अनुचित एवं अशोभनीय है। यद्यपि यह सत्य है कि कृष्ण ने मथुरा-त्याग कर द्वारिका गमन किया था और इस ऐतिहासिक अथवा पौराणिक सत्य की रक्षा भी अभीष्ट थी तथापि नायक के (इस कार्य के मूल में जो कारण थे, उनका सविस्तार उल्लेख कवि का कर्त्तव्य था। हरिऔध' जी ने इस विषय में किंचित् प्रयास अवश्य किया है, किन्तु वह अपर्याप्त है और उनकी कल्पना शक्ति की असमर्थता का द्योतक है। उनके इस संक्षिप्त कथन से पाठक की तृप्ति नहीं हो सकती —

> थोड़े थोड़े दिवस ब्रज में एक सम्वाद आया।
> कंसारी को दलित करने की महा-कामना से।
> नाना ग्रामों विविध पुर को फूंकता भू कँपाता।
> ले के सेना विपुल मथुरा है जरासंध आता॥
>
> \+ \+ \+ \+
>
> सारी सैना निहत अरि की हो गई श्याम हाथों।
> प्राणों को ले मगध अवनी-नाथ उद्विग्न भागा॥
> बारी बारी ब्रज-अवनि को कम्पमाना बना के।
> वातें धावा-मगध-पति की सत्तरा-बार फैलीं।
>
> \+ \+ \+ \+
>
> उत्पातों से मगध-पति के श्याम ने व्यग्र हो के।
> त्यागा प्यारा नगर मथुरा जा बसे द्वारिका में॥[1]

महाकाव्य के लेखक में निर्बाध कल्पना शक्ति का होना परमावश्यक है। 'हरिऔध' की यह कल्पना महत्त्वपूर्ण होते हुए भी कतिपय दृष्टियों से किंचित् असमर्थ प्रतीत होती है। कथानक की महत्त्वपूर्ण एवं व्यापक घटनाओं के वर्णन में रसात्मकता का अभाव प्रायः खटकता है। महाकाव्य के लिए जो शीर्षक उन्होंने चुना है, वह यद्यपि किसी महाकाव्य का शीर्षक होने के उपयुक्त नहीं है ऐसा नहीं कहा जा सकता तथापि उसमें महाकाव्योचित विराट कथानक तथा उसके भावों की न्यूनता खटकती है जिसका निराकरण कवि अपनी कल्पना शक्ति के आधार पर कर सकता था। इसके अतिरिक्त शीर्षक में अभीष्ट परिवर्तन भी 'प्रिय प्रवास' के महाकाव्यत्व की रक्षा करने में अधिक समर्थ होता ऐसा मानने में भी कोई अनौचित्य नहीं।

प्रिय-प्रवास के कथानक में त्रुटियों की खोज भले ही कर ली जाए, उसमें उनकी समुचित योजना भले ही मान ली जाए पर उसमें नायक कृष्ण के जीवन

---

1 हरिऔध प्रिय प्रवास पंचम संस्करण सप्तदश सर्ग पृ० २४६-२५०।

की घटनाओं का जो चित्रण है उससे युग जीवन का समग्र चित्र हमारे समक्ष प्रस्तुत नहीं होता—उसकी व्यापकता का अभाव खटकता है। तत्कालीन भारतीय संस्कृति का उसमें जो चित्रण है, वह भी एक प्रकार से व्यापक अथवा विशद नहीं कहा जा सकता। यद्यपि यह कहना उचित नहीं कि 'गोपियों की पुराण सगत परम्परागत रास-लीला मूलक वियोग-गाथा की नींव पर आदर्शवाद और बुद्धिवाद की बिल्डिंग हो ही नहीं सकती'[1] तथापि यह निश्चित है कि इस बिल्डिंग के लिए व्यापक कल्पना-शक्ति एवं महान् चरित्र-सृजनकर्त्री प्रतिभा की अपेक्षा है जिसके अभाव में महाकाव्य की सृष्टि सम्भव नहीं। 'हरिऔध' जी ने इस प्रसंग में जिस मौलिक एवं उर्वर उद्भावना-शक्ति का परिचय दिया है वह अभिनन्दनीय ही नहीं वन्दनीय है। किन्तु समुचित दीपक के अभाव में युग जीवन एवं तत्कालीन संस्कृति के व्यापक चित्रण तथा कथानक के व्यापक विस्तार, रसवत्ता एवं औत्सुक्य-विधान विषयक उनकी त्रुटियों से प्रिय प्रवास' के महाकाव्यत्व की सफलता के साथ एक प्रश्नचिह्न सा जुड़ गया है। कहने की आवश्यकता नहीं कि व्यापक कथानक युगीन संस्कृति का व्यापक चित्रण तथा अगाध रसवत्ता महाकाव्य के अन्तरंग लक्षणों में से हैं और उनके अभाव में कोई काव्य-ग्रन्थ महाकाव्य पद का अधिकारी भले ही हो जाये सफल महाकाव्य कहलाने का अधिकारी नहीं हो सकता। प्रिय प्रवास' के विषय में भी यही कथन लागू होता है।

अब प्रश्न यह है कि महाकाव्य के उक्त अन्तरंग लक्षणों की कसौटी पर पूरा पूरा खरा न उतरने पर भी प्रियप्रवास' को महाकाव्य कहा ही क्यों जाये? उत्तर स्पष्ट है। महाकाव्य होना और बात है सफल महाकाव्य होना और। महाकाव्य विषयक मान्यताएं युग-जीवन के साथ परिवर्तित होती रहती हैं और एक प्रकार से देश-काल सापेक्ष हैं। किन्तु उसके अन्तरंग लक्षण उसका अन्तरंग स्वरूप एवं बाह्य रूप कैसा होना चाहिए इस विषय का समुचित निर्णय किया जा सकता है। अंत यह कहना अनुचित न होगा कि महाकाव्य सब देशों में एक जैसा होता है। वह चाहे पूर्व का हो अथवा पश्चिम का, उत्तर का हो अथवा दक्षिण का, उसकी आत्मा और प्रकृति सर्वत्र एक जैसी होती है। सच्चा महाकाव्य चाहे कहीं भी निर्मित हो, एक प्रबन्धनात्मक काव्य होता है, उसकी रचना सुसंगठित होती है उसका सम्बन्ध महान् चरित्रों और उनके महान् कार्यों से रहता है उसकी शैली उसके विषय की गरिमा के अनुकूल होती है उसमें चरित्रों और उनके कार्य-कलाप को आदर्श रूप देने का प्रयास होता है और उपाख्यानों तथा वर्णन विस्तार से उसके कथानक की रक्षा तथा समृद्धि होती है।"[2]

---

१ धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी, महाकवि हरिऔध का प्रिय प्रवास पृ० ६३

२ 'Yet heroic poetry is one whether of East or West North or South its blood and temper are the sam-

जहाँ तक प्रिय प्रवास का प्रश्न है वह न तो खण्ड काव्य है और न एकार्थ काव्य । खण्ड काव्य में काव्य के किसी एक अंग, जीवन के किसी एक अंग, किसी एक घटना अथवा किसी एक कथा का वर्णन होता है महाकाव्योचित आकार प्रकार, वर्णन विस्तार तथा महाकाव्य के अन्य लक्षण उसमें नहीं होते । अतः स्मृति रूप में ही सही, महापुरुष कृष्ण के जीवन की विभिन्न घटनाओं को प्रस्तुत करने तथा वर्णन विस्तार एवं महाकाव्योचित आकार प्रकार के साथ अन्य साहित्य शास्त्रीय एवं शाश्वत लक्षणों के अस्तित्व में प्रिय प्रवास को खण्ड-काव्य नहीं कहा जा सकता । उसके संकुचित वृत्त से वह बहुत ऊपर उठा हुआ है । इसके अतिरिक्त पंचसंधियों की योजना कथानकगत मोड़ों तथा अन्य महाकाव्योचित लक्षणों के अस्तित्व में उसे एकार्थ काव्य की भी संज्ञा नहीं दी जा सकती । एकार्थ काव्य एक कथा का निरूपक होने के कारण एकांपक काव्य कहलाता है । पंच संधियों की योजना महाकाव्य के लक्षण कथानक के मोड़ तथा घटनाओं का वैविध्य उसमें नहीं होता । प्रिय प्रवास में कथानक के अप्रत्याशित मोड़ अवश्य कम हैं पर उसमें अन्य लक्षण प्रायः सभी विद्यमान हैं । अतः उसे खण्ड-काव्य अथवा एकार्थ काव्य नहीं माना जा सकता ।

प्रिय प्रवास में महाकाव्य के परम्परागत साहित्यशास्त्रीय लक्षण प्रायः सभी विद्यमान हैं । यद्यपि यह सत्य है कि महाकाव्य की वास्तविक कसौटी उसकी सर्ग-संख्या नहीं, मंगलाचरण, खल निन्दा अथवा सज्जन-प्रशंसा नहीं वस्तु-वर्णन एवं छन्दादि विषयक नियमों का परिपालन नहीं पंच संधियों की योजना नहीं तथापि इसके साथ ही यह भी सत्य है कि ये सभी उसके बाह्य निर्धारक हैं और इनमें से एक दो के निर्वाह के अभाव में भले ही किसी प्रबन्ध काव्य का महाकाव्यत्व अक्षुण्ण रहे किन्तु यह निश्चित है कि इन सब के अभाव में उसमें महाकाव्यत्व का अस्तित्व नहीं माना जा सकता क्योंकि बाह्य होने पर भी ये सभी उसके किन्हीं अंतरंग मूल तत्वों के द्योतक हैं । उदाहरणार्थ उसकी सर्ग-बद्धता को लिया जा सकता है । सर्गों की संख्या के न्यूनाधिक्य तथा उनके अति अथवा अनति विस्तृत होने का निषेध इस बात का द्योतक है कि उसकी कथा व्यापक हो और उसमें युग जीवन

---

and the true epic, wherever created will be a narrative poem organic in structure dealing with great actions and great characters in a style commensurate with the lordliness of its theme, which tends to idealise these characters and actions and to sustain embellish its subject by means of episode and amplifications '

—M Dixon English Epic and Heroic Poetry P 24

का समग्र चित्रण हो क्योंकि व्यापक कथा का एक या दो सर्गों मे वर्णन सम्भव नहीं, उसका कई सर्गों मे विभाजन आवश्यक है। साथ ही सर्गों के समुचित विस्तार का निर्देश भी इस बात का द्योतक है कि महाकाव्य को न तो विराट्काय होना चाहिए और न लघुकाय। इसके साथ ही यहां यह भी कहा जा सकता है कि सर्गों म विभाजन का आशय मात्र विभाजन से है, यह आवश्यक नहीं कि सभी महाकाव्यों का विभाजन सर्गों में ही हो क्योंकि यह मात्र बाह्य लक्षण है। विभाजित अ शा का नाम सग खण्ड आश्वास समय प्रकाश स्कन्ध कुडवक, अवस्कन्धक सधि आदि कुछ भी हो सकता है, इससे किसी ग्रन्थ क महाकाव्यत्व म कोई अन्तर नहीं पडता। इसी प्रकार पच सधियो क समावेश का उद्देश्य भी कथानक को समुचित विस्तार देकर व्यवस्थित रूप में प्रस्तुत करना तथा उसके विभिन्न मोडों को प्रदर्शित करना है, उनकी विभिन्न कार्यावस्थाओं के निदशन की आवश्यकता पर बल देना है। अत एक प्रकार स प्राचीन साहित्यशास्त्रियों द्वारा निर्धारित इन लक्षणो का समावेश कम से कम यह सिद्ध तो कर ही देता है कि कोई कृति महाकाव्य है या नहीं, भले ही वह सफल या असफल हो। कहने की आवश्यकता नहीं कि प्रिय-प्रवास म महाकाव्य के प्राय ये सभी लक्षण न्यूनाधिक रूप म विद्यमान हैं। अष्टाधिक सत्रह सग, व्यापक प्रकृति-चित्रण प्रतिपाद्य विषयानुसार शीर्षक, उद्देश्य एव लक्ष्य की महत्ता, कथानक की प्रसिद्धि पच-सधियां का समावेश, शृगार (और विशेषकर विप्रलम्भ) रस का प्राधान्य तथा अन्य रसो की यथास्थान समुचित योजना सर्ग-विभाजन एव धीरोदात्त नायक महापुरुष कृष्ण सभी इस तथ्य के व्यजक हैं कि इन लक्षणो द्वारा निर्धारित बाह्य रूपाकार एव अन्तरग स्वरूप की दृष्टि से प्रिय-प्रवास' कतिपय अनावश्यक लक्षणो के अभाव में भी एक महाकाव्य है।

जहाँ तक अनिवार्य शाश्वत लक्षणो का सम्बन्ध है वे भी एक प्रकार से न्यूनाधिक रूप म उसमे प्राय वर्तमान हैं। उनमें से कतिपय के अभाव म हम उसे किंचित् असफल अवश्य कह सकते हैं उसम कतिपय त्रुटियां का अस्तित्व अवश्य मान सकते हैं पर उसे महाकाव्य के पद स वचित नहीं कर सकते, ठीक उसी प्रकार जस अभावो असमर्थताओं एव त्रुटियो के होते हुए भी बाह्य रूपाकार एव अन्य गुणों की अवस्थिति में हम किसी मनुष्य को मानव-पद से वचित नहीं कर सकते। त्रुटियां मनुष्य से ही होती हैं पूर्णता का दावा मनुष्य क्या देवता भी नहीं कर सकते। यही नहीं, पूर्ण सत्ता क सर्वाधिक अधिकारी परमात्मा भी आरोपों का प्राय लक्ष्य बनता है अत वह भी सर्वथापूर्ण नहीं कहा जा सकता। किन्तु महाकाव्य के शाश्वत लक्षणों में से किन किन की कसौटी पर प्रिय-प्रवास खरा उतरता है और किन किन की कसौटी पर नहीं इसके अभाव में यह विवेचन तर्कसगत नहीं माना जा सकता, अधूरा ही रहेगा। अत इस विषय पर भी किंचित् दृष्टिपात आवश्यक है। महाकाव्य के देशकाल निरपेक्ष शाश्वत लक्षण निम्नांकित हैं —

से ऐतिहासिक भी है। साथ ही यह युगाराध्य कृष्ण जसे सज्जन एव महापुरुष के आश्रित है। कवि की उवर-कल्पना शक्ति ने युग की बुद्धिवादी प्रवृत्ति के अनुरूप उसमे परिवतन भी यथेष्ट कर दिया और इस प्रकार उसे तक-सगत, स्वाभाविक एव महत्तर बना दिया है। इसके अतिरिक्त उसमे गुरुता एव गम्भीरता भी पर्याप्त मात्रा मे है।

## (४) महान् उद्देश्य एव महत् प्रेरणा

प्रियप्रवासकार का उद्देश्य महान् है। विश्वकल्याण, लोक सेवा एव सवभूतहित रक्षण से बढ़ कर उसकी दृष्टि म कोई आदश नही कोई धम नहीं। उसका कथन है —

उस कलेजे को कलेजा क्यों कहू,
हो नहीं जिसमें कि हितधारें बहीं।
माव सेवा हो सके तब जान क्या
कर सके जब लोक की सेवा नहीं।

तथा

'भू मे सदा यदपि है जन मान पाता,
राज्याधिकार अथवा धन द्रव्य द्वारा।
होता परन्तु वह पूजित विश्व में है,
निस्वाथ भूत हित औ कर लोक-सेवा"[1]

श्री कृष्ण एव राधिका के सकुचित दाम्पत्य प्रेम को लोक मगल की व्यापक भाव भूमि की ओर उन्मुख करके धम के सर्वोच्च सोपान पर पहुँचाना तथा उनके विश्वमगल विधायक रूप द्वारा ससार का पथ प्रदशन कर कत्तव्य भाव जाग्रत करना कवि का उद्देश्य है क्योंकि व्यापक कतव्यपालन ही धम का सर्वोच्च रूप हैं और धम के इस सोपान पर अवस्थित प्राणी मोक्ष का स्वत विधान कर लेता है धम बल से मोक्ष को भी अनायास ही प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार इस महाकाव्य का उद्देश्य यदि एक ओर व्यक्ति एव विश्व का भौतिक कल्याण है तो दूसरी ओर पारमार्थिक। भक्ति के जो रूप धम के जो आदश रूढ़ एव अमान्य हो गये थे उनके नवीन रूप की प्रतिष्ठा तथा उनकी नव्य व्याख्या करके प्रियप्रवासकार ने विश्व-समाज की उनमें आस्था उत्पन्न की और उनकी महत्ता पर बल देकर ससार को मगलोन्मुख किया —

'विश्वात्मा जो परम-प्रभु है रूप तो हैं उसी के।
सारे-प्राणी सरि-गिरि-लता बेलिया वृक्ष-नाना।
रक्षा पूजा उचित उनका यत्न सम्मान सेवा।
भावों सिक्ता परम-प्रभु की भक्ति-सर्वोत्तमा है।'[2]

---

१ प्रियप्रवास १२।६०।
२ 'हरिऔध' प्रियप्रवास, षोडश सग पवमावत्ति छन्द ११७।

बौद्धिकता के इस युग में अलौकिक पात्रों के अलौकिक अथवा आदर्श कृत्यों का प्रभाव समाज पर पड़ने की उतनी सम्भावना नहीं थी जितनी कि आदर्श अथवा महान् पुरुष के लोकमंगलकारी आदर्श कार्यों का प्रभाव पड़ने की। यही कारण है कि मानव-जीवन को उन्नत एवं उत्कृष्ट बनाने तथा संसार को कर्तव्य पथ पर अग्रसर करने के लिए समुत्सुक 'हरिऔध' जी ने उसे मानवता के वास्तविक रूप से परिचित कराने के उद्देश्य से 'प्रिय-प्रवास' की रचना की और अपने नायक कृष्ण एवं नायिका राधिका के लोकमंगलकारी कृत्यों के सौंदर्य का विधान करके उसे मंगलोन्मुख किया। विश्व-मंगल की उनकी यह भावना निस्संदेह वन्दनीय है और इसी में प्रिय-प्रवास तथा प्रिय-प्रवासकार की सर्वाधिक महत्ता है।

## (५) चरित्र चित्रण क्षमता तथा नायक-नायिकादि की महत्ता

महाकाव्यकार की सर्वाधिक सफलता अपने पात्रों की कल्पना तथा उनके स्वरूप निर्धारण एवं चरित्र चित्रण-क्षमता में है[1]। महाकवि 'हरिऔध' ने इस क्षेत्र में जो अभिनंदनीय कार्य किया है, वह अपना सानी नहीं रखता। युग-युग से चले आते हुए राधा-कृष्ण के रूप का परिवर्तन उनकी महती कल्पना शक्ति एवं अप्रतिम काव्य प्रतिभा की ही विशेषता है। यद्यपि इसमें सन्देह नहीं कि भागवत तथा कृष्ण भक्त कवियों के कृष्ण एवं राधा महान् हैं—ब्रह्म एवं उनकी शक्ति के प्रतीक हैं—तथापि उनका परम्परागत रूप विधान एवं बुद्धिवाद के इस युग में उतना मान्य एवं स्पृहणीय नहीं रहा, जितना कि उसे वस्तुतः होना चाहिये था। कारण सामान्य जनता का भागवत आचार्य वल्लभ अथवा कृष्ण भक्ति काव्य के दार्शनिक सिद्धान्तों को न समझना है। अतः भारतीय जनता के इस नायक की महत्ता के उद्घाटन तथा नायिका राधिका के लोक-सेवी, विश्व प्रेमी एवं विभिन्न आदर्शों एवं गुणों के आलय तथा महान् देवी-रूप की प्रतिष्ठा के लिए 'हरिऔध' जी ने उनके युगाराध्य रूप की कल्पना की। कहने की आवश्यकता नहीं कि इस क्षेत्र में उन्हें जो सफलता मिली है, वह निस्सन्देह स्तुत्य है भी वही एक प्रकार से 'प्रिय प्रवास' की महत्ता का मूलाधार है। उनके, कृष्ण शोभा एवं सौंदर्य के आगार, गोप मण्डली एवं धेनुवत्स के जीवनाधार, व्रज मण्डल के वास्तविक नेता एवं आदर्श महापुरुष हैं। उनके प्रति व्रज मण्डलवासियों का प्रेम श्रद्धा एवं भक्ति उनकी कुलीनता, ऐश्वर्य वैभव-सम्पन्नता अथवा किसी प्रकार के आतंक से उद्भूत न होकर उनके लोक सेवी विश्व प्रेमी स्वजाति उद्धारक, कर्त्तव्य-परायण, शक्ति शील एवं सौन्दर्य के मूर्तिमान् रूप तथा कठिन पथ के पांथ' व्यक्तित्व की महत्ता की देन हैं। यहां उनका परब्रह्म रूप नहीं महापुरुष रूप, उसके देवोपम गुण उसके महान् लोक-मंगलकारी कार्य कलाप, मानवता का पुजारी रूप स्वदेश स्वजाति एवं विश्वपरित्राणकारी शक्तियां सांसारिक ऐश्वर्य-वैभव के प्रति विरक्ति एवं वैयक्तिक प्रेम के संकुचित

---

1 "The success of an epic poetry depends on the author's power of imagining and representing characters"
—W P Ker Epic and

क्षेत्र से ऊपर उठ कर सृष्टि के प्राणि मात्र के प्रति प्रेम के व्यापक क्षेत्र की भाव भूमि में विचरण करने वाला रूप ही उनकी महत्ता का आधार-स्तम्भ है। इसी प्रकार ब्रजेश्वरी राधा के देवी तुल्य रूप की कल्पना एवं प्रतिष्ठा भी 'हरिऔध' जी की महती काव्य-प्रतिभा की देन है। रूप-वाटिका की विकासमान कलिका राकेश मुखी, करुणार्द्र हृदया, मृदुल हास्य परिहासमयी, सौन्दर्य-समुद्र की बहुमूल्य मणि माधुर्य की साक्षात् प्रतिमूर्ति, नेत्रोन्मेषकारिणी शारीरिक कान्ति सम्पन्ना श्यामल कुंचित एवं मानसोन्मादिनी अलकों वाली तथा अन्य अनेक बाह्य एवं आन्तरिक गुणों की आगार बाह्य एवं आन्तरिक सौन्दर्य की साक्षात प्रतिमा प्रारम्भ से ही 'रोगी वृद्ध जनोपकारनिरता, सच्छास्त्र चिन्तापरा' तथा 'स्त्री जाति रत्नोपमा' प्रणय की मधुर मूर्ति एवं कृष्ण की अनन्य आराधिका यह किशोरी अपने जीवन के मध्याह्न में प्रिय कृष्ण के सन्देश से उत्प्रेरित हो दाम्पत्य प्रेम के संकुचित क्षेत्र से ऊपर उठकर लोकसेवा एवं विश्व प्रेम की कितनी व्यापक एवं उच्च भावभूमि पर अधिष्ठित हो जाती है यह कहने की आवश्यकता नहीं। भारतीय नारी का वह दिव्य पावन रूप ही है, जो उन्हें क्रमश प्रजाराध्या एवं विश्वाराध्या ही नहीं, युगाराध्या भी बना देता है। इसके अतिरिक्त नन्द, यशोदा एवं उद्धव के चरित्र चित्रण में भी हरिऔध' जी की क्षमता द्रष्टव्य है। वात्सल्य, ममत्व एवं करुणा की साकार प्रतिमा, पुत्र वियुक्ता सतप्त-हृदया एवं आशामयी जननी, उदारमना देवी एवं '*मातृत्व की विमल विभूति' यशोदा, आशकाओं से व्यथित विह्वल किन्तु* आशावादी पिता, कर्त्तव्य-परायण पति एवं ब्रजमडली के श्रद्धापात्र नेता नन्द तथा कृष्ण के समवयस्क एवं समान रूप वाले बुद्धि निधान, सवेदनशील, उपदेशक, उद्‌बोधक एवं सन्देशवाहक उद्धव की चरित्र निमाणकर्त्री हरिऔध' की कल्पना कितनी *स्पृहणीय एवं समर्थ है, यह कहने का नहीं, सहृदय काव्य ममज्ञों को अनुभूति एवं* चिन्तना का विषय है।

### (६) महती काव्य प्रतिभा एवं अनवरुद्ध रस-प्रवाह

हरिऔध जी की महती काव्य प्रतिभा 'प्रिय प्रवास में जितनी व्यक्त हुई है, उतनी कदाचित उनके अन्य किसी ग्रन्थ में नहीं। एक प्रकार से उनके प्रस्तुत ग्रन्थ की यह महती काव्य प्रतिभा ही है जिसने उसके यश सौरभ का सर्वत्र प्रसार किया है और जो अन्य निर्धारकों के साथ ही उसके महाकाव्यत्व के निर्धारकों में से एक है। उसमें बाह्य एवं आन्तरिक, शरीर एवं आत्मा तथा कला एवं भाव पक्ष का अद्‌भुत सयोग है यह कहने में कोई अत्युक्ति नहीं। उसका मूलाधार यद्यपि विप्रलम्भ एवं अन्ततोगत्वा सकरुण विप्रलम्भ है तथापि उसमें अन्य रसों की भी यथास्थान समुचित योजना है। उनके विप्रलम्भ शृंगार की मूल भित्ति (सयोगचर्या) यद्यपि बहुत क्षीण है जिसके कारण वह आलोचकों को शून्य भीति पर चित्र रचना के समान प्रतीत होता है तथापि कई कारणों से यह क्षम्य है। जहा तक उसके कलापक्ष *का सम्बन्ध है, उसका उसमें समुचित विधान है। उसकी भाषा शब्द चयन वर्ण मैत्री,*

नाद सौंदर्य एवं अर्थ ध्वनन क्षमता लोकोक्तियों एवं मुहावरों का सुष्ठु प्रयोग, चित्र विधानक्षमता, शब्द-शक्तिगत वशिष्ट्य-लक्षणा एवं व्यंजना शक्तियों का समुचित उपयोग—ओज, प्रसाद, माधुर्य एवं कान्ति आदि गुणों का उचित सन्निवेश, वदर्भी गौडी, पांचाली, लाटी आदि रीतियों तथा उपनागरिका, कोमला एवं परुषा आदि वत्तियों का समावेश वर्णविन्यास, पदपूर्वार्द्ध पदपरार्द्ध, वाक्य, प्रकरण तथा प्रबन्ध वक्रतागत उसका महत्त्व रूप वर्ण, गुण आकार एवं प्रभाव-साम्य के आधार पर चुने गये उसके विविध उपमान तथा उनके मूर्त अमूर्त, जड चेतन अथवा मानव प्रकृति एवं वस्तुगत विविध रूप, छन्द विधान तथा प्रबन्ध, गुण अलंकार रस लिंग एवं नामगत औचित्य एवं शैली वविध्यगत महत्ता प्रिय प्रवास के महाकाव्योचित महत्व का आधार है। फिर भी यह कहना अनुचित न होगा कि वर्णनों की एकरूपता के कारण उसकी रमणीयता में पर्याप्त व्याघात उत्पन्न हुआ है और वर्णन यत्र तत्र उबाने वाले हो गए हैं।

## (७) मार्मिक प्रसंगों की सृष्टि

महाकाव्य की महत्ता का रहस्य उसके मार्मिक प्रसंगों के चयन में है। सहृदय कवि 'हरिऔध' जी ने इस बात का सर्वत्र ध्यान रखा है। उनके 'प्रिय प्रवास' में ऐसे अनेक प्रसंग हैं जिनका मार्मिक एवं हृदय-स्पर्शी चित्रण कवि की कुशल तूलिका से हुआ है। प्रारम्भिक सर्गों में ब्रजाराध्य कृष्ण की प्रयाण वेला तथा उसके पूर्व रजनी की वात्सल्य मूर्ति जननी यशोदा की मर्मान्तक व्यथा, अनन्य हृदया कृष्ण प्रेयसी राधिका की आशंकोद्भूत विह्वलता एवं प्रलाप, प्रिय प्रयाण के करुण प्रसंग नन्द का मथुरा से आगमन एवं यशोदा का मर्मभेदी करुण क्रन्दन, सरला राधा की वियोग व्यथा एवं पवनदूती प्रसंग गोप मण्डली द्वारा ब्रजाराध्य कृष्ण के पूर्व जीवन वृत्त का स्मरण एवं उल्लेख, उद्धव का आगमन एवं श्री संदेश कथन, राधा की मर्मान्तिक पीड़ा वियोगजन्य विरक्ति हृदय परिवर्तन विश्वप्रेम का स्फुरण एवं सेवावृत्ति के उदय आदि प्रसंगों का महाकाव्योचित भावुकतापूर्ण मार्मिक वर्णन भावुक, कल्पनाप्रवण एवं उर्वर कवि-हृदय की विशेषता है।

## (८) गुरुत्व गाम्भीर्य एवं औदात्य

गुरुत्व, गाम्भीर्य एवं औदात्य से तात्पर्य कवि के विचारों की गुरुता महत्ता गम्भीरता एवं उदात्तता से है। प्रियप्रवासकार ने कृष्णकथा के परम्परागत रूप का परित्याग तथा नवीन रूप की उद्भावना करके जहां एक ओर उसकी कथा को गुरु, गम्भीर एवं उदात्त रूप प्रदान किया है वहां दूसरी ओर नायक नायिकादि को दाम्पत्य प्रेम की संकुचित चहारदीवारी से ऊपर उठाकर व्यापक विश्वप्रेम की पीठिका पर प्रतिष्ठित करके विश्वमंगलोन्मुख किया है। यदि एक ओर उनके बाह्य रूप सौन्दर्य की व्यंजना में अपेक्षित गुरुत्व गाम्भीर्य एवं उदात्तता है तो दूसरी ओर उनके आन्तरिक सौन्दर्य-कर्म कलाप आदर्श सिद्धान्तों एवं विचारधारा में। यदि एक

भोर उसमे भावपक्षात्मक एव महदुद्देश्यगत गुरुत्व, गाम्भीर्य एव उदात्तता है तो दूसरी ओर आभिव्यक्तिक उपकरणों की।

### (९) सर्ग रचना तथा छन्दोबद्धता

सर्ग रचना तथा छन्दोबद्धता जैसा कि कहा गया है महाकाव्य का बाह्य लक्षण होते हुए भी उसके आन्तरिक स्वरूप का निर्देशक है। सर्गों की अष्टाधिक संख्या तथा उनका समुचित विस्तार इस तथ्य का द्योतक है कि महाकाव्य का विषय जहाँ एक ओर व्यापक हो वहाँ दूसरी ओर उसके विस्तार में समुचित सतुलन रखा जाये। वह न तो वामन के समान विराटकाय हो और न उनके पूर्व रूप के समान लघुकाय। कहने की आवश्यकता नहीं कि प्रिय प्रवास में इस लक्षण के परम्परागत साहित्यशास्त्रीय रूप का परिपालन न होते हुए भी इसकी आत्मा सर्वत्र सुरक्षित है—उसका शाश्वत रूप अक्षुण्ण है। इसी प्रकार छन्दोबद्धता विषयक लक्षण भी भले ही वह उसके विरोधियों को अनावश्यक प्रतीत हो महाकाव्यत्व के लिए परम अपेक्षित है और प्रिय प्रवास में उसकी आत्मा की सर्वत्र रक्षा हुई है।

### (१०) व्यापक प्रकृतिचित्रण एव अभीष्ट वस्तु वर्णन

प्रकृति मानव की सहचरी ही नहीं उसकी पालिका-पोषिका एव निर्मात्री भी है। उसके शरीरावयव, उसकी प्राण वायु, उसका हृदय स्पन्दन सभी एक प्रकार से प्रकृति की देन हैं—उसका उद्भव प्रकृति अथवा उसके उपकरणों से होता है और अन्ततोगत्वा उसका तिरोभाव, उसके अग प्रत्यगों के मूलाधार तत्वों तथा उसकी प्राणवायु का विलीनीकरण भी उसी में होता है। उसके अभाव में मानव का अस्तित्व सभव नहीं। अत महाकाव्य में भी व्यापक प्रकृति चित्रण के अभाव में मानव जीवन का चित्रण किसी भी प्रकार पूर्ण नहीं माना जा सकता। वह उसका एक अनिवार्य अग है। उसकी उपेक्षा सभव नहीं। यही कारण है कि साहित्यशास्त्रियों ने मानव जीवन के पूर्ण चित्र के लिए महाकाव्य में उसका अकन चित्रण आवश्यक माना है और वह महाकाव्य का परम्परागत ही नहीं शाश्वत लक्षण है, वैज्ञानिक आवश्यकता है क्योंकि मानव जीवन का कोई भी चित्र उसके अभाव में पूर्ण नहीं और पूर्ण जीवन दर्शन का इच्छुक पाठक उसके अभाव में किसी महाकाव्य को स्वाभाविक एव सरस नहीं मान सकता, उसके अभाव में उससे उसकी तृप्ति सभव नहीं। प्रियप्रवासकार इस तथ्य से भली भाँति परिचित था। यही कारण है कि प्रियप्रवास में प्रकृति के विभिन्न रूप अपने रम्यानिरम्य रूपों में दृष्टिगोचर होते हैं। उसमें उसके आलम्बन, उद्दीपन, पृष्ठभौमिक वातावरण निर्माणक आलकारिक उपदेशक प्रतीकात्मक रहस्याभिव्यजक सवेदनात्मक तथा परमतत्व सकेतक आदि अनेक रूप हरिऔध जी के सवेदनशील हृदय एव कुशल कलम-कूचिका की देन हैं और इस दृष्टि से प्रियप्रवास अपने काल का एक मील स्तम्भ है।

## (११) सौंदय सृष्टि

सौन्दय साहित्य का प्राण है और साहित्यकार सौंदय सृष्टि का रचयिता प्रजापति। महाकाव्य भी स्वत पूर्ण सौंदर्य-सृष्टि है। उसमे मानव, प्रकृति एव वस्तुगत सौंदय के आन्तरिक एव बाह्य विभिन्न रूपों की जो दिव्य छटा विकीर्ण की जाती है वह सहृदय पाठक श्रोताओं को मत्रमुग्ध किये बिना नहीं रहती। प्रिय प्रवास इस दृष्टि से पर्याप्त सफल है। उसमे मानव एव प्रकृति के आन्तरिक एवं बाह्य सौंदय का पर्याप्त अकन-चित्रण है। उसमे यदि एक ओर सरला राधा एव लोक-नायक कृष्ण के अनिन्द्य बाह्य सौंदर्य की सृष्टि है तो दूसरी ओर उनके अप्रतिम आदर्शों, गुणों एव तज्जन्य कर्मों के सौन्दय की, यदि एक ओर उसम प्रकृति क बाह्य सौंदय की मोहक झाकियाँ है ता दूसरी ओर उसके आन्तरिक सौंदय का पावन, शोभन एव निश्छल रूप, यदि एक ओर उसके आन्तरिक एव बाह्य मानव सौ दय को पृष्ठभूमिक प्रकृति-सौंदय ने द्विगुणित कर दिया है ता दूसरी ओर मानवीय सौंदय के विविध रूपों ने प्रकृति सौन्दय को, यदि एक ओर उसमें वस्तुगत सौंदय के मोहक चित्र हैं तो दूसरी ओर मानवीय एव प्रकृति सौन्दय के। उसमे यद्यपि बाह्य एव आन्तरिक वस्तु सौंदय की अल्पता किंचित खटकने वाली है तथापि मानव एव प्रकृति के आन्तरिक एव बाह्य सौंदय की प्रचुरता एव मणि काचन सयोग से उसकी पर्याप्त पूर्ति हो गई है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि वस्तु तत्व तथा उसके अप्रत्याशित मोडो की किंचित अल्पता, रसात्मक एकरूपता एव तज्जन्य नीरसता तथा मुख्य घटना की उपेक्षा आदि कतिपय त्रुटियों के हाते हुए भी भले ही वे कितनी ही भयकर क्यों न हो परम्परा गत साहित्यशास्त्रीय एव शाश्वत तत्वो की अधिकांश कसौटियो पर खरा उतरने के कारण प्रियप्रवास महाकाव्य पद का अधिकारी है, उससे उसे वंचित नही किया जा सकता। उत्कृष्टता अनुत्कृष्टता तथा पूर्णता अपूर्णता का प्रश्न सापेक्ष है। अत जिस प्रकार अभावों अथवा असमथताओं के अस्तित्व मे भी मनुष्य को उसकी मानव सज्ञा से ही अभिहित किया जाता है उसी प्रकार प्रिय-प्रवास को भी कतिपय त्रुटियो के अस्तित्व मे भी महाकाव्य सज्ञा से ही अभिहित करना होगा।

—

# साकेत का महाकाव्यत्व :

## समस्या एव समाधान

प्रिय प्रवास, वदेही वनवास तथा कृष्णायन आदि अ य आधुनिक महाकाव्यो के समान ही साकेत का महाकाव्यत्व भी हिन्दी आलोचना जगत् की एक समस्या है। इस विषय म विद्वानों के तीन वग हैं—प्रथम, वह जो उसके महाकाव्यत्व का निषेध करता है द्वितीय, वह जो उसके महाकाव्यत्व के विषय मे सदिग्ध है और तृतीय, वह जो उसे महाकाव्य के गौरवपूर्ण पद से वचित करना उचित नही समझता। अत आवश्यक है कि उसके महाकाव्यत्व के विषय म कोई निष्कष निकालने स पूव उक्त तीनो वर्गो के विद्वानों के निष्कर्षों का सार प्रस्तुत किया जाए।

प्रथम वग के आलोचकों म आचाय रामचन्द्र शुक्ल डॉ० शम्भूनाथसिंह डा० सरनामसिंह शर्मा, आचाय विश्वनाथप्रसाद मिश्र तथा डा० दशरथ ओझा प्रभृति उल्लेखनीय हैं। इनमे आचाय रामचन्द्र शुक्ल इस विषय में एक प्रकार से मौन हैं। उन्होंने इस विषय मे केवल इतना ही कहा है— साकेत और यशोधरा' इनके बडे प्रब ध हैं। दोनो में उनके काव्यत्व का तो पूरा विकास दिखाई पडता है पर प्रबन्धत्व की कमी है। बात यह है कि इनकी रचना उस समय हुई जब गुप्त जी की प्रवत्ति गीत काव्य या नए ढग के प्रगीत मुक्तकों की ओर हो चुकी थी। 'साकेत की रचना तो मुख्यत इस उद्देश्य से हुई कि उर्मिला काव्य की उपेक्षिता न रह जाय।'[1] डा० शम्भूनाथसिंह ने आल्हखण्ड' तथा 'कामायनी' को तो महाकाव्य माना है किन्तु साकेत तथा प्रिय प्रवास' के महाकाव्यत्व का निषेध किया है। साकेत के महाकाव्यत्व का निषेध करते हुए वे लिखते हैं —

'प्रिय प्रवास की तरह इसमें भी महाकाव्यात्मक उद्देश्य (एपिक इण्टेंशन) का अभाव दिखाई पडता है। प्रिय प्रवास का उद्देश्य यदि श्रीमद्भागवत की कथा का बौद्धिकीकरण और कृष्ण राधा आदि के चरित्रो का उदात्तीकरण है तो साकेत का उद्देश्य राम-कथा के उपेक्षित पात्रों को प्रकाश म लाना तथा उसके देवत्व गुणयुक्त पात्रों को मानव रूप में उपस्थित करना है। निष्कष यह कि महच्चरित्र के अभाव के कारण साकेत का महाकाव्यत्व अत्यन्त सदिग्ध है। व्यापार योजना अथवा वस्तु विन्यास की दृष्टि से भी साकेत महाकाव्य की श्रेणी म नहीं रखा जा

---

1 आचाय रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी साहित्य का इतिहास तेरहवाँ स० पृ० ५८७।

सकता । इसमें रामायण के विस्मृत, उपेक्षित तथा त्यक्त प्रसगो, पात्रों और व्यापारो पर ही अधिक प्रकाश डाला गया है जैसे लक्ष्मण और उर्मिला का प्रेम प्रसग और मधुरालाप, उर्मिला की चौदह वर्षों की काल यापन विधि और विविध विरह दशाए, भरत की तपस्या और दिनचर्या, वन मे सीता की दिन-चर्या कैकेयी के चरित्र का विकास आदि । इन प्रसगो और व्यापारों के कारण यद्यपि राम-कथा म नवीनता और माधुर्निकता आई है किन्तु इनकी अधिकता से रामायण की कथा में जो महान् काय व्यापार है साकेत में उसकी समुचित योजना नहीं हो पाई है । इस तरह महती घटनाओं और महत् काय की योजना उचित ढग से न होने से उसकी प्रबन्धात्मकता में बहुत बाधा पड़ती है । वाजपेयी जी न साकेत को महाकाव्य सिद्ध करने के लिए जो तक दिये हैं वे महाकाव्य के शाश्वत लक्षण नहीं हैं । यदि शाश्वत लक्षणो के आधार पर साकेत महाकाव्य सिद्ध नहीं होता तो इससे न तो इसका गौरव कम हो जाता है, न इसके ऐतिहासिक महत्त्व म ही कोई कमी आती है । महाकाव्य न होते हुए भी उसकी जो लोकप्रियता और महत्ता है, वह अपनी जगह बनी रहेगी ।[1]

डा० सरनामसिंह शर्मा अपनी कृति 'साहित्य सिद्धान्त और समीक्षा" के 'क्या साकेत महाकाव्य है ?" शीर्षक निबन्ध म लिखते हैं —

'साकेत के अध्ययन म यह बडी गम्भीरतापूर्वक विचार करने योग्य है क्योकि कितने ही समालोचक साकेत को महाकाव्य मानते आये हैं । भारतीय अथवा अभारतीय किसी भी सिद्धान्त निकष पर परीक्षण किया जाए, महाकाव्य के लिए तीन तत्वों की उपेक्षा नहीं की जा सकती और वे हैं—वस्तु नेता और रस । यदि वस्तु के निकष पर साकेत के महाकाव्यत्व की परीक्षा करें तो अनेक स्थल ऐसे मिलते हैं जहा वस्तु-सूत्र शिथिल या विच्छिन्न सा दीख पडता है । सुन्दर कल्पनाओं के होते हुए भी अनेक स्थलो पर निबन्धन का अभाव प्रस्तुत हो गया है । सकेतो द्वारा प्रकट होने से भी कुछ घटनाओं की सजीवता क्षीण हो गई है तथा कथाबोध की सुकरता सस्कारों के लिए छोड दी गई प्रतीत होती है । साकेत का कवि उर्मिला को विरहिणी दिखा सका है विषण्ण दिखा सका है किन्तु वह उसे कृतिशील नहीं दिखा सका है । उर्मिला के चरित्र म व्यापार का अभाव है । अन्त म रामराज्य स पूर्व ही उसे सयोग म जिस 'काम' फल की प्राप्ति हुई है, उसमे उसके सक्रिय प्रयत्न का कोई योग नहीं है । रामराज्य की स्थापना मे ही आर्य सभ्यता की प्रतिष्ठा पूर्ण होती दिखाई देती है और यही राम को धर्म-फल की प्राप्ति है जिसके लिए रावण-वध का होना अत्यावश्यक है । रस की कसौटी पर भी साकेत बहुत सफल नहीं उतरता ।

———

१ डा० शम्भूनाथसिंह हिन्दी-महाकाव्य का स्वरूप विकास (द्वि० स० १९६२ ई०) पृ० ६९७–७००।

इसके आदि और अन्त में संयोग की दो अवस्थाएं दीख पड़ती हैं। उन्हीं के बीच में विप्रलम्भ की गहरी खाई बनी हुई है। यही वियोग काल अन्य रसों की झाँकी भी देता है और ऐसा लगता है कि वीर और शान्त स्वयं स्वतन्त्र हो गये हैं। प्रबन्ध की रसमदिरा की अनेक धाराओं के कारण मूल रस का निर्वाह बिगड़ गया है। संवादों ने भी प्रायः अधिक विस्तार ले लिया है। इसमें सन्देह नहीं है कि संवाद बहुत रोचक हैं किन्तु वे रस धारा को या तो अन्तःसलिला बना देते हैं या अवरुद्ध कर देते हैं। यह विवेचन हमें इस निष्कर्ष पर ले पहुँचता है कि वस्तु निबन्धन, सम्बन्ध निर्वाह, वर्णन सन्तुलन, प्रमुखपात्र प्रतिष्ठा और रस निर्वाह की कसौटी पर साकेत पूरा नहीं उतरता है। पंडित रामचन्द्र शुक्ल ने भी उसे एक बड़ा प्रबन्ध काव्य ही कहा है महाकाव्य नहीं कहा है। इसमें सन्देह नहीं कि मंगलाचरण के उपरान्त अन्त तक कवि ने उन सब उपकरणों का संकलन करने की चेष्टा की है जो भारतीय दृष्टिकोण से किसी भी महाकाव्य के लिए अनिवार्य हैं किन्तु उनके उपयोग से भावना की प्रधानता रहने से सन्तुलन और निर्वाह बिगड़ गया है। संवादों के अतिरेक ने सन्दर्भगति दुरूह कर दी है। प्रधान पात्र का पद एक समस्या के गर्भ में पड़ गया है। कुछ विद्वानों ने साकेत को एकार्थ काव्य भी कहा है और मेरी समझ में भी महाकाव्य की अपेक्षा यह नाम अधिक उपयुक्त होता किन्तु प्रबन्ध सफलता का प्रश्न तो वहाँ भी है।[1]

आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र तथा डा० दशरथ ओझा साकेत का महाकाव्य न मान कर एकार्थ काव्य मानते हैं —

(क) 'महाकाव्य में कथा-प्रवाह विविध भंगिमाओं के साथ मोड़ लेता आगे बढ़ता है किन्तु एकार्थ-काव्य में कथा प्रवाह के मोड़ कम होते हैं। अधिकतर वर्णनों या व्यंजनाओं पर ही कवि की दृष्टि रहती है। नगावतरण प्रिय-प्रवास साकेत कामायनी आदि वस्तुतः एकार्थ-काव्य ही हैं।[2]

(ग) 'हिन्दी में कुछ ऐसी भी रचनाएं हुई हैं जिनमें जीवन-वृत्त तो पूर्ण लिया गया है पर महाकाव्य की भाँति वस्तु का विस्तार नहीं दिखाई देता। ऐसी रचनाओं में जीवन का कोई एक ही पक्ष विस्तार से प्रदर्शित किया जाता है। इन्हें 'एकार्थ-काव्य' कहना उपयुक्त होगा।[3] प्रिय-प्रवास साकेत वैदेही-वनवास, कामायनी आदि इसी प्रकार की रचनाएं हैं।[4]

———

१ डा० सरनामसिंह शर्मा, साहित्य सिद्धान्त और समीक्षा, पृ० २८८–३०३।

२ आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र वाङ्मय विमर्श पृ० ४५।

३ भाषा विभाषा नियमात् काव्य सर्ग समुत्थितम्।
एकार्थ प्रवणैः पद्यैः संधिसामग्र्य वर्जितम्। ( सा० दर्पण )

४ डा० दशरथ ओझा समीक्षाशास्त्र पृ० ४५।

द्वितीय वर्ग उन विद्वानों का है जिनका इसके महाकाव्यत्व के विषय में कोई स्पष्ट अभिमत नहीं है। इस वर्ग के विद्वानों में बाबू गुलाबराय का नाम लिया जा सकता है। उनका झुकाव यद्यपि साकेत के महाकाव्यत्व की ओर अधिक है तथापि इस विषय में उन्होंने अपना कोई स्पष्ट अभिमत प्रकट नहीं किया है। इस विषय में वे लिखते हैं —

'साकेत की प्रबन्धात्मकता के सम्बन्ध में कुछ विद्वानों को सन्देह है। यह बात माननी पड़ेगी कि उर्मिला के अत्यधिक विरह-वर्णन के कारण साकेत का घटना प्रवाह कुछ कुण्ठित-सा हो गया है। प्रिय प्रवास की भांति 'साकेत' में भी बहुत सा घटना क्रम स्मृति के रूप में आया है किन्तु घटनाओं का प्रत्यक्ष वर्णन भी प्रिय प्रवास' की अपेक्षा इसमें अधिक है। कथा के प्रवाह, वर्णना के सौष्ठव और सांस्कृतिक पक्ष की प्रबलता के कारण 'साकेत' प्रबन्ध-काव्य के अधिक निकट आता है।[1]

कहने की आवश्यकता नहीं कि स्पष्ट रूप से 'साकेत' के महाकाव्यत्व का समर्थन न करने पर भी गुलाबरायजी उसे महाकाव्य ही मानते हैं। यही कारण है कि उन्होंने आगे चलकर उसके विषय में किए जाने वाले आक्षेपों का उत्तर देते हुए कहा है — "वैयक्तिकता के प्राधान्य के कारण यह युग मुक्तक गीतों का है। इनका प्रभाव साकेत' पर भी पड़ा। उसमें यत्र-तत्र जैसे — निज सौध सदन में उटज पिता ने छाया मेरी कुटिया में राज भवन मन भाया' (पृष्ठ १५७) — आदि बड़े सुन्दर गीत भी आए हैं किन्तु उर्मिला के ये विरहोद्गार प्रबन्ध के विशाल प्रासाद में नगीने से जड़े हुए हैं।

गुप्तजी पर दूसरा आक्षेप यह है कि प्रथम सर्ग में उर्मिला-लक्ष्मण का प्रेमालाप अश्लीलता के वज्यतट को स्पर्श कर गया है। इस सम्बन्ध में इतना ही कहना आवश्यक है कि उर्मिला के त्याग और विरह वेदना की विषमता दिखाने के लिए तुलना में संयोग का सुख दिखाना वांछनीय था। यदि लक्ष्मण प्रारम्भ से ही व्रती और उदासीन होते तो न उनके और न उर्मिला के त्याग का महत्व होता। तुलसीदासजी की-सी मर्यादा का तो गुप्तजी राम के चित्रण में नहीं पालन कर सके किन्तु राम को मनुष्य रूप में दिखाकर उन्होंने उनके लोकोत्तर चरित्रों को हमारे लिए भी शक्य और सम्भव बना दिया है।"[2]

इसके अतिरिक्त डा० रामअवध द्विवेदी ने भी 'साकेत' के महाकाव्यत्व के विषय में दो प्रकार की बातें की हैं। वे जहां एक ओर उसे महाकाव्य की श्रेणी में रखते हैं वहां दूसरी ओर एकार्थ काव्य की श्रेणी में भी उसे स्थान देने में कोई संकोच नहीं करते —

———

१ काव्य के रूप (चतुर्थ सं०, १९५८), पृ० १०४।
२ वही वही।

(च) "हिन्दी-कविता के बाह्य स्वरूप पर भी अंग्रेजी का प्रतिक्रियात्मक प्रभाव पड़ा है। द्विवेदी-युग में लिखे गये महाकाव्य भारत के प्राचीन महाकाव्यों की परम्परा से कुछ दूर हो जाते हैं। 'प्रिय प्रवास' और साकेत' महाकाव्य अपनी विशेषताओं में महाभारत, 'रामायण' 'पृथ्वीराज रासो', पद्मावत' 'रामचरितमानस, रामचन्द्रिका' इत्यादि संस्कृत और हिन्दी महाकाव्यों से भिन्न हैं। हिन्दी काव्य के इस रूप परिवर्तन का मुख्य कारण पाश्चात्य प्रभाव है। इसके अतिरिक्त 'प्रिय-प्रवास और साकेत दोनों ही महाकाव्य अपनी रचना एवं भावभूमि में नए हैं।'[1]

(छ) साकेत गुप्त जी की समस्त कृतियों में शिल्प विधान की दृष्टि से सर्वोत्तम ग्रन्थ है और मानस के बाद इससे बढ़कर कोई रामकाव्य नहीं है। गुप्त जी की कृतियों में यह मात्र महाकाव्य है जबकि परिमाण की दृष्टि से इनसे अधिक काव्य पुस्तकें आधुनिक युग के किसी एक कवि ने नहीं लिखी हैं। यों जयभारत भी महाकाव्य की कोटि में परिगणित होता है पर उसमें शिल्प विधानात्मक थोड़ी विशेषताओं के अतिरिक्त महाकाव्यात्मक गरिमा बहुत कम अंशों में दीख पड़ती है।'[2]

(ज) 'साकेत" नवयुग का महाकाव्य है। यह महाकाव्य की नई परम्परा का प्रवर्तक है और नवयुग की साहित्यिक तथा सामाजिक क्रान्ति का प्रतिनिधि काव्य। उसमें काव्य रूढ़ियों से मुक्ति पाने का स्वच्छन्दतामूलक सुप्रयास भी है।

साकेत साहित्यिक महाकाव्य (Literary Epic) है, पर उसका प्रामाणिक महाकाव्य (Authentic Epic) से कोई तात्त्विक भेद नहीं है। उसे विकसनशील महाकाव्य से पृथक करने के लिए कलात्मक महाकाव्य भी कह सकते हैं। पर वह कामायनी की भांति रूपकात्मक महाकाव्य नहीं है वरन् सांस्कृतिक महाकाव्य है। विकसनशील महाकाव्यों जैसी नानावृत्तमयी जटिल वस्तु योजना उसमें नहीं है। उसका साहित्य पर व्यापक प्रभाव भी पड़ा। आधुनिक युग के काव्य विकास की तीन स्थितियां इन महाकाव्यों में सुस्पष्ट होती हैं। प्रिय प्रवास अविकसित आधुनिकता और जातीय भावना का काव्य है साकेत सांस्कृतिक भावना और अर्द्ध विकसित आधुनिकता का काव्य तथा कामायनी मनोवैज्ञानिकता दार्शनिकता और विराट कल्पना का काव्य। साकेत भारतीय जीवन का महाकाव्य है और यह विशेषता न प्रिय प्रवास में है और न कामायनी में।'[3]

(झ) साकेत' में प्रबन्ध गुण की दृष्टि से जो आंशिक शिथिलता उत्पन्न हुई है वह उर्मिला के ही प्रसंग को लेकर है, और कवि काव्य को महाकाव्य

---

१ डा० रवीन्द्रसहाय वर्मा हिन्दी-काव्य पर आंग्ल प्रभाव प्र०सं०,पृ० १२४-१२५।
२ डा० श्यामनन्दन किशोर, हिन्दी महाकाव्यों का शिल्पविधान प्र०सं० पृ० १३०।
३ डा० कमलाकान्त पाठक मैथिलीशरण गुप्त व्यक्ति और काव्य, प्र सं०, पृ० ५१६-५२०।

बनाने मे सफल हो सका है—उसका कारण राम कथा के प्रति श्रद्धा और उसे अपनाने का आग्रह ही है। महाकाव्य के उपयुक्त विषय केवल कोमल और मधुर करुण और मसृण नहीं हो सकते, उसके कलेवर म जीवन के विराट् और भव्य पक्ष का होना अनिवार्य है। कवि के मन मे ग्रहण और त्याग की इसी द्विधा ने प्रबन्ध निर्वाह को किंचित् बाधित किया है। उसका हृदय उर्मिला और राम के बीच म निश्चय नही कर पाता, किन्तु इस नगण्य सी त्रुटि को लक्ष्य करके साकेत' के प्रब धत्व पर कोई महत्वपूर्ण दोषारोपण नही किया जा सकता, और न ही उसे महाकाव्य के गौरव स वचित किया जा सकता है।[१]

(ट) "इस महाकाव्य मे महाकाव्य के शास्त्रीय लक्षणो की प्रतिष्ठा के साथ साथ नवीन चेतना क भी दशन होते हैं। यह नवीन चेतना त्रयोमुखी है—साहित्यिक, सास्कृतिक और कलात्मक। इस त्रयोमुखी अभिनव चेतना ने उसे वतमान युग के नवीन ढग के श्रेष्ठ महाकाव्य का पद प्रदान कर दिया है।[२]

(ठ) 'साकेत' आदि महाकाव्य प्राचीन महाकाव्यो के कथानकों के आधार पर ही प्रतिष्ठित हैं। उनम नसर्गिकता अथवा मौलिकता का अभाव है और कल्पना की प्रधानता है। वे अपने समकालीन मानव-समाज के आदर्शों और परिस्थितियो से प्रभावित होत हैं। उनम किसी महान् आदश की उपस्थिति नहीं होती। तथापि प्रब ध काव्य के लक्षणो और सास्कृतिक महत्ता की दृष्टि से 'साकेत' हिन्दी के उत्कृष्ट महाकाव्यो में गिना जा सकता है।'[३]

(ड) 'यों तो महाकाव्य की व्यापकता और महत्त्व के द्योतक कोई सुनिश्चित प्रतिमान नही हो सकते और अनन्त इस सम्बन्ध का निणय मतभेद से रहित नहीं हो सकता किन्तु साकेत' काव्य का साहित्यिक जगत् मे जो है सम्मान है हिन्दी के ऐतिहासिक विकास मे उसकी जो देन है, युग चेतना क जो नवोन्मेष उसमे अपनी सुन्दर आभा बिखेर रहे हैं उन्हे देखते हुए साकेत' को महाकाव्य न कहना अन्याय होगा। साकेत' महाकाव्य ही नही आधुनिक हिन्दी का युग प्रवतक महाकाव्य है। समस्त हिन्दी जगत् को इसका गर्व और गौरव है।"[४]

(ढ) 'किन्तु यदि विचारपूवक देखा जाय, तो साकेत' मे करुण रस का प्राधान्य नही है विप्रलम्भ श्रृंगार ही इस महाकाव्य का अगी रस है। 'माधुरी के किसी समय समालोचक महोदय ने साकेत' नाम को अनुपयुक्त बतलाते हुए लिखा था कि यदि इस महाकाव्य का नाम उर्मिला उत्ताप होता तो अच्छा रहता। यहा पर साकेत के नामकरण की साथकता या असाधारता पर विचार नहीं करना है इस प्रसग के उल्लेख करने का अभिप्राय केवल यही है कि सारतकार ने अपने महाकाव्य

---

१ डॉ० निर्मला जैन आधुनिक हिन्दी काव्य में रूप विधाए प्र०स० पृ० ११६।
२ डॉ० गोविन्द त्रिगुणायन शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त द्वि०भा०,प्र०सं० पृ० ६२
३ क्षेमचन्द्र 'सुमन तथा योगेन्द्र मल्लिक, साहित्य विवेचन द्वि०स०,पृ० ८४।
४ आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी, साकेत, आधुनिक साहित्य, द्वि० स०, पृ० १०८।

म आदि कवि महर्षि वाल्मीकि और गोस्वामी तुलसीदास जी द्वारा उपेक्षिता उर्मिला को कितना महत्व दिया है, जिसके कारण समालोचकों की दृष्टि में उर्मिला के नाम पर ही इस महाकाव्य का नामकरण संस्कार किया जाना उपयुक्त जान पड़ता' है।"[1]

इस प्रकार उक्त मत वैमिन्य से स्पष्ट है कि साकेत का महाकाव्यत्व आधुनिक हिन्दी काव्य की एक जटिल समस्या है। सामान्य पाठक इन विरोधी मत मतान्तरों के झाड़ झंखाड़ मे ऐसा उलझ जाता है कि सामान्यतया उसमे से निकलने का उसे कोई साधन नजर नही आता। अत आवश्यक है कि इस समस्या का यथोचित समाधान प्रस्तुत किया जाय।

महाकाव्यों की रचना प्राय सभी भाषाओं मे साहित्यिक सृष्टि के प्रारम्भिक काल से होती आई है और हो रही है। साथ ही उनके काव्यशास्त्रीय लक्षणों का निर्धारण भी प्राय सभी भाषाओं में कुछ न कुछ होता रहा है। किन्तु उनके किसी एक भाषा अथवा साहित्य के एक काल के लक्षणों का आरोप अन्य भाषा अथवा कालो मे रचित महाकाव्यो पर करना कहा तक उचित है, यह प्रश्न विचारणीय है। यह निश्चित है कि समय तथा परिस्थिति के प्रभाव से जिस प्रकार जीवन के स्वरूप मे पर्याप्त अन्तर आ जाता है उसी प्रकार जीवन के प्रतिरूप साहित्य अथवा महाकाव्य आदि उसकी विभिन्न विधाओं के स्वरूप मे भी। पुन लक्षण ग्रन्थो का निर्माण लक्ष्य ग्रन्थों के उपरान्त होता है यह तथ्य भी इस सत्य का द्योतक है कि किसी एक देश काल के महाकाव्य को अन्य देशकाल अथवा साहित्य के महाकाव्यो के लक्षणों की कसौटी पर कसा नही जा सकता। उसके लक्षण, उसकी कसौटियां तत्कालीन परिस्थितियो एव साहित्य के अनुरूप होगी, जिनके अभाव मे उसके साथ न्याय नही किया जा सकता। अत प्रश्न है कि साकेत को महाकाव्य के किन लक्षणो की कसौटी पर कसा जाये?

साहित्य जीवन से उद्भूत होता है जीवन से ही वह प्राण वायु हृदय स्पन्दन अस्थि कंकाल रक्त मास एव त्वचादि ग्रहण करता है और जीवन से ही लालित पालित एव पुष्ट होता है। महाकाव्य साहित्य की महत्वपूर्ण विधा है महाकवियों का कीर्तिकेतु अथवा उनके यश का मूल आधार है। कहा भी है —प्रबन्धेषु कवीन्द्राणां कीर्तिकन्देषु किं पुन।[2] इसके अतिरिक्त वामन का यह कथन कि 'क्रमसिद्धिस्तयो स्रगुत्तंसवत्' अर्थात् मुक्तक और प्रबन्ध में वही सम्बन्ध है जो माला और उत्तंस म —जिस प्रकार माला गुम्फन की कला में पारंगत होने के उपरान्त ही उत्तंस गुम्फन में सिद्धि प्राप्त होती है उसी प्रकार मुक्तक रचना की सिद्धि के उपरान्त ही कवि प्रबन्ध रचना में सिद्धि-लाभ करता है। अत जीवन से उद्भूत साहित्य की यह महत्वपूर्ण विधा जीवन के साथ ही साथ परिवर्तित होती रहती है—

---

१ डा० कन्हैयालाल सहल साकेत म प्रधान रस, आलोचना के पथ पर स० २००४ वि०, पृ० २२५ २२६।

२ कुन्तक, वक्रोक्ति जीवितम्, ४।२६ का अन्तर्श्लोक।

रहते हैं यही नहीं, एक ही समय के कवियों के का य ग्र यों म भी पर्याप्त अ तर आ जाता है। धार्मिक प्रवत्ति का कवि जहां अपने महाकाव्य के प्रारम्भ म मगलाचरण का अस्तित्व अनिवार्य मानता है, वहा धम एव ईश्वर के अस्तित्व म विश्वास न रखन वाला कवि उसकी कोई आवश्यकता नही समझता। परम्परा पालन एव रूढियों का विश्वासी कवि जहा आशीर्वचन, नमस्क्रिया एव सज्जन-दुर्जन-प्रशसा-नि दा को महाकाव्य के लिये आवश्यक मानता है वहाँ उनका विरोधी कवि उन्हें उपहासास्पद समझता है। अष्टाधिक सग-सख्या के अस्तित्व का आशय कवल इतना ही है कि महाकाव्य को लघुकाय न होकर महाकाय अथवा वृहदाकार वाला होना चाहिए। इसके अभाव म उसमे जीवन का व्यापक चित्राङ्कन सम्भव नही। अत यह कहना या मानना कि सात काण्डों अथवा सर्गों का कोई भी काव्य ग्र थ महाकाव्य नही माना जा सकता, बुद्धि को तिलाजलि देना है। सग सख्या ३०-४० होने पर भी अ य तत्वों एवम् विशेषताओं के अभाव मे कोई का य ग्र थ महाका य कहलाने का अधिकारी नही हो सकता और सग सख्या आठ से कम होने पर भी अ य तत्वो एवम् विशेषताओं के कारण बहुत से का य ग्रथ महाका य सज्ञा के अधिकारी हो सकते हैं। सात काण्डों के 'रामचरितमानस' को कौन महाका य नही मानता ? इसी प्रकार कथानक का लोक प्रसिद्ध अथवा ऐतिहासिक होना भी महाका य के लिए अनिवार्य नही माना जा सकता। कथानक जहा ऐतिहासिक एवम् लोक-प्रसिद्ध हो सकता है, वहा उसके काल्पनिक होने पर भी कोई प्रतिब ध नही लगाया जा सकता। यद्यपि यह सत्य है कि ऐतिहासिक एवम् लोक-प्रसिद्ध कथानक से साधारणीकरण एव रस-निष्पत्ति-प्रक्रिया मे सकुरता रहती है तथापि ऐसा करना कवि-प्रतिभा में स देह करना अथवा उस पर प्रतिब ध लगाना है। महान् कवि अपनी काव्य-सृष्टि के लिए ऐतिहासिक अथवा लोक-प्रसिद्ध कथानक पर निभर नही रहता उसकी दृष्टि परमुखापेक्षिणी नहीं होती। उसकी उवर कल्पना-शक्ति के लिए किसी महाका योचित कथानक की सृष्टि असम्भव नहीं। यही नहीं प्रत्युत इसी म उसकी महत्ता है। अत महाकाव्य क कथानक क लिए ऐतिहासिक अथवा लोक-प्रसिद्ध होने की शत अनिवार्य नही मानी जा सकती। ऐसे भी महाका य हो सकते हैं और हैं जिनका कथानक ऐतिहासिक अथवा लोक-प्रसिद्ध न होकर काल्पनिक अथवा अद्ध काल्पनिक है। महाकाव्य क प्रारम्भ म वस्तु-निर्देश तथा सर्गा न म भावी सग की कथा का निर्देश भी कोई सावकालिक एव सावभौमिक लक्षण नहीं माना जा सकता। एक सग की कथा का एक ही छन्द म होना भी इसी प्रकार कोई सावभौमिक शाश्वत अथवा अनिवाय लक्षण नहीं है। साहित्यदपणकार विश्वनाथ का यह कथन इसी तथ्य का द्योतक है —

'एकवृत्तमयै पद्यैरवसानेऽन्यवृत्तकै ।

+ + + + +

नानावृत्तमय क्वापि सर्ग कश्चन दृश्यते।'[1]

फिर भी इस कथन का आशय यह नहीं कि महाकाव्य को छन्दों की प्रदर्शनी अथवा उनका अजायबघर बना दिया जाये। उसके किसी एक सर्ग में छन्द उतने ही होने चाहिये जिनसे कि उसकी कथा के प्रवाह में कोई व्याघात उपस्थित न हो 'रामचन्द्रिका' जैसा छन्दों का प्रदर्शन महाकाव्यत्व के लिए साधक न होकर बाधक है

महाकाव्य में सर्गों का नामकरण भी अनिवार्य नहीं माना जा सकता। बिना नामकरण के भी उसके केवल सर्गबद्ध कथानक से काम चल सकता है। अतः नामकरण महाकाव्य की अनिवार्य आवश्यकता नहीं है उसके अभाव में भी महाकाव्य महाकाव्य बना रह सकता है। कुलीनता, क्षत्रियत्व एवं राजसिंहासन भी महाकाव्य के नायक के लिए अनिवार्य नहीं। कुल एवं क्षत्रियत्व का महत्त्व वहीं तक है जहाँ तक कि वह नायक के गुणों का संकेतक है, गुणों के अभाव में उनका कोई महत्त्व नहीं। वर्तमान सभ्यता में कुलीनता और क्षत्रियत्व का वह महत्त्व नहीं रहा जो प्राचीन काल में था। अब न शूद्र कुलोद्भूत होने से कोई त्याग वैराग्य एवं तपस्यादि से वंचित किया जा सकता है और न उच्चकुलोद्भूत होने से किसी विशेष सम्मान का अधिकारी ही माना जा सकता है, न तो केवल उच्च जात्युद्भूत होकर कोई स्थान अथवा पद प्राप्त कर सकता है और न ही निम्न जात्युद्भूत होने से किसी पद अथवा स्थान से वंचित किया जा सकता है। अब शूद्र-तपस्या से रामराज्य में किसी प्रकार की अव्यवस्था होने की आशंका नहीं ब्राह्मण-तपस्या से भले ही मान ली जाये। आशय यह कि इस प्रकार का भेद भाव किसी प्रकार के शाश्वत जीवन-मूल्यों पर आधारित न होकर विशिष्ट देश-काल एवं परिस्थितियों की देन है अतः महाकाव्य के शाश्वत लक्षणों में इसे स्थान नहीं दिया जा सकता। सद्वंश क्षत्रिय वंश तथा राजवंशों की महत्त्व-परम्परा का स्थान अब निम्न वर्गीय वंश-परम्परा ने ले लिया है। त्याग, तप करुणा क्षमा एवं परोपकारादि वृत्तियाँ अब किसी वर्ग विशेष की बपौती नहीं। जल वायु एवं आकाश के समान इन पर अब सभी का समान अधिकार है। अतः महाकाव्य का नायक भी अब केवल उच्चकुलोद्भूत व्यक्ति क्षत्रिय राजा अथवा राजकुमार ही नहीं, कोई भी महावीर, सात्विकशील अथवा उदात्त वृत्ति व्यक्ति हो सकता है क्योंकि महाकाव्य का यह लक्षण शाश्वत न होकर अस्थिर एवं देश-काल सापेक्ष है।

महाकाव्य में नाटक की सभी संधियों का समावेश भी उसकी कोई अनिवार्य शर्त नहीं कही जा सकती। सुसंगठित जीवन्त कथानक महाकाव्य की अनिवार्य विशेषता अवश्य है, पर उसके कथानक में सभी नाटक संधियों की योजना अनिवार्य नहीं। उनकी योजना यदि किसी महाकाव्य में स्वभावतः ही हो जाय तो इसमें कोई अनौचित्य नहीं पर उसे महाकाव्य का अनिवार्य शाश्वत लक्षण मानना महाका-

पर अनावश्यक प्रतिबंध लगाना है उसके पैरों में बेड़ियाँ डालना है। पाश्चात्य साहित्यशास्त्र में इसीलिए उनका कोई उल्लेख नहीं किया गया। हाँ, कार्यावस्थाओं का आभास अवश्य महाकाव्य के कथानक में स्पष्ट रूप से मिलना चाहिए क्योंकि उनसे उसके कथानक के संतुलन में योग मिलता है।

जीवन में शृंगार, वीर और शान्त रसों का महत्त्व अपरिमेय है। शृंगार अपने इसी महान् गुण के कारण रसराज कहा जाता है। वीर एवं शान्त रसों का महत्त्व भी इसी प्रकार कम नहीं। फिर भी इसका आशय यह नहीं कि अन्य रसों का कोई महत्त्व नहीं है। जीवन में जिस प्रकार अन्य वृत्तियों का स्थान है, उसके प्रतिरूप साहित्य में भी उसी प्रकार उनका अस्तित्व एवं समुचित महत्त्व है। अतः यह कहना उचित न होगा कि महाकाव्य में केवल शान्त, वीर और शृंगार रसों में से ही कोई प्रधान अथवा अंगी रस होना चाहिए अन्य रस उसमें गौण रूप में आने चाहिए। यों जैसा कि कहा जा चुका है, शृंगार वीर एवं शान्त का अपना विशिष्ट महत्त्व है किन्तु अन्य रसों का भी अपना महत्त्व है, इस तथ्य को भी अस्वीकार नहीं किया जा सकता। उदाहरणार्थ करुण रस को ही लिया जा सकता है। भवभूति ने उसे एक मात्र रस कहा है किन्तु यदि ऐसा न भी स्वीकार किया जाय तो भी इतना तो कहा ही जा सकता है कि महाकाव्य में उसे प्रधान अथवा अंगी रस बनाने पर किसी प्रकार का अंकुश नहीं लगाया जा सकता। करुण रस प्रधान महाकाव्य किसी भी देश काल अथवा स्थिति में नहीं हो सकते, ऐसा कहना बुद्धि की अवहेलना करना होगा। अतः महाकाव्य का यह रस विषयक लक्षण शाश्वत नहीं माना जा सकता, अस्थिर एवं देश काल सापेक्ष ही कहा जायेगा।

अलौकिक एवं अति प्राकृत तत्त्वों की योजना भी इसी प्रकार महाकाव्य का शाश्वत लक्षण नहीं है। आज के वैज्ञानिक एवं बुद्धिवादी युग में इस मान्यता के लिए कोई स्थान दिखाई नहीं देता। सभ्यता के आदिकाल में पिछड़ी अल्प-बुद्धि जातियों में इस प्रकार के विश्वासों एवं मान्यताओं के लिए अधिक स्थान रहता है किन्तु विज्ञान के शीर्ष काल में शिक्षा एवं सभ्यता के उत्कर्ष-युग में इस प्रकार के विश्वास सभी महाकाव्यकारों के लिए अनिवार्य नहीं माने जा सकते। यद्यपि कतिपय महाकाव्यकारों में उनके प्रति विश्वास एवं आस्था अब भी संभव है तथापि सभी उनमें समान रूप से विश्वास करते हुए उन्हें अपने महाकाव्यों में स्थान दें ऐसा नियम नहीं बनाया जा सकता विशेषकर जब कि साहित्यकार निरंकुश प्राणी है उसके साहित्य शास्त्र के नियम उसकी कृतियों के आधार पर बनते हैं उनका आरोप उसके साहित्य पर बाहर से नहीं किया जा सकता। अतः उक्त तत्त्वों में से कोई भी महाकाव्य का शाश्वत तत्त्व नहीं माना जा सकता। अस्तु।

महाकाव्य के अनिवार्य सार्वभौमिक शाश्वत लक्षण निम्नांकित हैं —

(१) विषय की व्यापकता।
(२) प्रबन्ध कौशल।
(३) युग जीवन एवं जातीय संस्कृति का व्यापक चित्रण।
(४) कथानक की महत्ता।
(५) महान उद्देश्य एवं महत् प्रेरणा।
(६) चरित्र चित्रण क्षमता तथा नायक-नायिकादि की महत्ता।
(७) महती काव्य प्रतिभा एवं अनवरुद्ध रस प्रवाह।
(८) मार्मिक प्रसंगों की सृष्टि।
(९) गुरुत्व गाम्भीर्य एवं औदात्य।
(१०) सर्ग रचना तथा छन्दोबद्धता।
(११) व्यापक प्रकृति चित्रण एवं अभीष्ट वस्तु-वर्णन।
(१२) सौन्दर्य-सृष्टि।

अत 'साकेत' के महाकाव्यत्व के निर्धारण के लिए अब हमें उसे महाकाव्य के उक्त शाश्वत लक्षणों की कसौटी पर कसना होगा।

## (१) विषय की व्यापकता

महाकाव्य की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण विशेषता उसके विषय की व्यापकता तथा आकार की दीर्घता है। साहित्य जीवन का प्रतिरूप है और महाकाव्य साहित्य की महत्त्वपूर्ण विधा। अत महाकाव्य में जीवन के व्यापक रूप का चित्रण आवश्यक है, उसके अभाव में उसका महाकाव्यत्व अक्षुण्ण नहीं रह सकता। महाकाव्य के विषय की व्यापकता एक प्रकार से जीवन के व्यापक चित्रण का ही पर्याय है। अत विषय की व्यापकता उसकी एक अनिवार्य आवश्यकता है। जिस काव्य-ग्रन्थ में विषय का व्यापक एवं सांगोपांग चित्रण न हो वह महाकाव्य पद का अधिकारी नहीं हो सकता।

'साकेत' का विषय व्यापक है इसमें सन्देह नहीं। उसमें पतिप्राणा नायिका उर्मिला के शैशव-काल से उसके पाणि ग्रहण संस्कार के १४ वर्ष उपरान्त तक के जीवन के विभिन्न पक्षों का मार्मिक उद्घाटन है। उसमें यद्यपि उसके विवाह-पूर्व जीवन का वर्णन स्मृति रूप में है तथापि उससे उसकी प्रभावोत्पादकता में अन्तर नहीं आता। यही नहीं, इससे उसका आकर्षण और भी अधिक बन जाता है। दृश्य काव्य में भी इस प्रकार की वर्णन शैली देखने में आती है। आधुनिक पट कथाओं में तो इस प्रकार की वर्णन-पद्धति विशेष रूप से अपनाई जाती है और इससे उसकी प्रभावोत्पादकता में वृद्धि ही होती है। यद्यपि यह सत्य है कि इस प्रकार के स्मृति परक वर्णनों का अतिरेक उचित नहीं तथापि चाहे महाकाव्य हो या रूपक उसकी कथा का कुछ अंश तो इस रूप में प्रस्तुत किया ही जा सकता है। जीवन में भी स्मृति का महत्त्वपूर्ण स्थान है उससे विरहित होना उसके लिए सम्भव नहीं। अत

महाकाव्य में वर्णित जीवन भी स्वाभाविक तभी होगा जबकि वह अपने समग्र वास्तविक रूप में प्रस्तुत किया जाए। अपने किसी अंग से रहित होकर उत्तम भाग वाला जीवन खंडित होने के कारण अयथार्थ प्रतीत हो सकता है, पर 'साकेत' में चित्रित उर्मिला का जीवन यथार्थ एवं स्वाभाविक होने के कारण आकर्षक एवं प्रभावोत्पादक है। उसके वियुक्त जीवन के १४ वर्षों की दीर्घ अवधि का वर्णन कवि ने विविध प्रकार से किया है। राम-लक्ष्मण एवं सीता के वन प्रयाण, दशरथ-मरण चित्रकूट-सभा, हनुमान् आगमन तथा अयोध्यावासियों की रण सज्जा के प्रसंगों में उसके विविध रूप पाठकों को मर्माहत कर आत्मविभोर कर देते हैं। उसके व्यक्तित्व के निम्नांकित रूप कितने आकर्षक हैं, इसे सहृदय पाठक स्वयं देख सकते हैं —

(क) कहा ऊर्मिला ने— हे मन ! तू प्रिय पथ का विघ्न न बन।
आज स्वार्थ है त्याग भरा ! हे अनुराग विराग भरा !
तू विकार से पूर्ण न हो शोक भार से चूर्ण न हो।
भ्रातृ स्नेह सुधा बरसे भू पर स्वर्ग भाव सरसे।[1]

(ख) "मा, कहा गये वे पूज्य पिता ?" करके पुकार यों शोक सिता
उर्मिला सभी सुध बुध त्याग जा गिरी कैकयी के आगे।[2]

(ग) जाकर परन्तु जो वहां उन्होंने देखा
तो दीख पडी कोणस्थ उर्मिला रेखा।
यह काया है या शेष उसीकी छाया
क्षण भर उनकी कुछ नहीं समझ में आया।
मेरे उपवन के हरिण आज वनचारी
मैं बांध न लूंगी तुम्हें तजो भय भारी।'
गिर पड़े दौड़ सौमित्रि प्रिया पद तल में
वह भीग उठी प्रिय चरण धरे दृग जल में।

+ + +

हा स्वामी ! कहना था क्या क्या
कह न सकी, कर्मों का दोष।
पर जिसमें संतोष तुम्हें हो
मुझे उसी में है संतोष।[3]

---

१ साकेत, चतुर्थ सर्ग, पृ० ७६।
२ वही पष्ठ सर्ग, पृ० १२३।
३ वही अष्टम सर्ग, पृ० १६२–१६३।

(घ) बल हो तो सिन्दूर बिन्दु यह-यह हर नेत्र निहारो।
रूप दर्प कन्दर्प, तुम्ह तो मेरे पति पर वारो,
लो यह मेरी चरण धूलि उस रति के सिर पर धारो।[1]

(ङ) मेरे चपल यौवन-बाल
अचल अंचल म पड़ा सो, मचल कर मत साल।[2]

(च) "नहीं, नहीं"—सुन चौंक पड़े शत्रुघ्न और सब,
ऊषा सी आगई उर्मिला उसी ठौर तब।
वीणागुलि मम सती उतरती-सी चढ़ धाई
तालपूर्ति सी सग सखी भी खिचती आई।
आ शत्रुघ्न समीप रुकी लक्ष्मण की रानी,
प्रकट हुई ज्यों कार्तिकेय के निकट भवानी।
जटा जाल से बाल विलम्बित छूट पड़े थे
आनन पर सौ अरुण, घटा मे फूट पड़े थे।
माथे का सिन्दूर सजग अगार सदृश था
प्रथमातप सा पुण्य गात्र, यद्यपि वह कृश था।
गरज उठी वह—'नहीं, नहीं पापी का सोना,
यहा न लाना भले सिन्धु मे वही डुबोना।

+ + +

पावें तुमसे आज शत्रु भी ऐसी शिक्षा,
जिसका अथ हो दण्ड और इति दया तितिक्षा।
देखो निकली पूर्व दिशा से अपनी ऊषा,
यही हमारी प्रकृत पताका, भव की भूषा।
ठहरो, यह मैं चलूं कीर्ति सी आगे आगे।
भोगें अपने विषम कर्म फल अधम अभागे।'[3]

इसी प्रकार 'साकेत' मे उसके सयुक्त जीवन के विभिन्न पक्षो का ऐसा उपयुक्त एव मार्मिक चित्रण है जो उसके वियुक्त जीवन के विभिन्न पक्षो को न केवल बल देता है प्रत्युत उन्हें स्वाभाविक सरस एव कलात्मक भी बनाता है। नायक लक्ष्मण के जीवन के अनेक पक्ष एक प्रकार से उसी के जीवन से सम्बद्ध हैं। यही नहीं रघुकुल की वधू होने के कारण उसके जीवन के साथ रामकथा के सभी महत्त्व पूर्ण पक्ष भी सम्बद्ध हैं और उनका उद्घाटन एव रसात्मक चित्रण भी कवि ने

---

१ साकेत, नवम सर्ग, पृ० २२७।
२ वही, वही, पृ० २३७।
३ वही, द्वादश सर्ग, पृ० ३१३ ३१५।

यथासम्भव किया है। किन्तु महत्वपूर्ण होते हुए भी रामकथा का वर्णन इसमें अग रूप मे ही हुआ है, अगी रूप म नहीं। प्रधान कथा वस्तुत यहा उर्मिला लक्ष्मण की अनन्य त्यागमयी प्रेम कहानी ही है और उसका उद्देश्य भी यहा रामकथा के अन्य ग्रन्थो से भिन्न है। राम सीता की महत्ता को अक्षुण्ण रखते हुए भी कवि ने यहा नायिका उर्मिला तथा नायक लक्ष्मण के अप्रतिम महत्त्व का उद्घाटन किया है और राम सीता ने यहा अपने नायक नायिकात्व की बाग डोर लक्ष्मण उर्मिला के हाथो मे सौंपदी है। अत महत्त्वपूर्ण होते हुए भी वे यहाँ मात्र पात्र रह गए हैं। इस प्रकार साकेत का कथानक लगभग उतना ही व्यापक है जितना कि 'रामचरित मानस' का। उसमे उर्मिला-लक्ष्मण की अनन्य त्याग एव गौरवमयी जीवन-गाथा के साथ ही उनके सन्दर्भ मे रघुकुल की भी कीर्तिगाथा का पर्याप्त चित्रण है। कहने की आवश्यकता नही कि नायिका उर्मिला एव नायक लक्ष्मण के महत्त्वोद्घाटन के लिए अभीष्ट रामकथा के लगभग सभी प्रसग एव अवान्तर कथायें उसमे यथास्थान समायोजित हैं।

२ प्रबन्ध कौशल

'मुण्डे मुण्डे मतिर्भिन्ना' के अनुसार साकेत के प्रबन्ध कौशल के विषय मे भी विद्वानो के भिन्न विचार हैं। किन्तु इस विषय म साकेतकार के उद्देश्य को समझने की बहुत कम चेष्टा की गई है। ऐसा करने पर इस विषय की तथाकथित अक्षमता का स्वत ही बहुत कुछ निराकरण हो जाता है। नवम सर्ग का उर्मिला का विरह-वर्णन ऐसी स्थिति म बाधक न बनकर साधक हो जाता है। स्पष्ट है कि ग्रन्थ का शीर्षक यहा 'साकेत' है 'रामचरितमानस' अथवा 'रामायण' नही। उसका उद्देश्य उपेक्षिता उर्मिला के व्यक्तित्व की महत्ता का उद्घाटन है, रामकथा के नायक राम की महत्ता की व्यजना नहीं। उसमें राम सीता का महत्त्वाभिव्यजन प्रासगिक रूप मे है प्रधान रूप मे नहीं। फिर भी कई कारणो से कथानक के प्रवाह म जो व्याघात पड़ता है, उससे साकेत के महाकाव्यत्व म सन्देह होता है। कवि चाहता तो इसके निराकरण का प्रयत्न कर सकता था। उर्मिला की चौदह वर्षों की वियोगावधि की व्यजना के लिए वह कुछ ऐसे प्रसगों की कल्पना कर सकता था जिनसे कथानक का प्रवाह भी अविच्छिन्न रहता उर्मिला के त्यागमय जीवन की भाकिया भी अधिक प्रभविष्णु हो जातीं और उसके जीवन म अभीष्ट सक्रियता भी आ जाती। किन्तु इस विषय म जो आक्षेप किये जाते हैं, उनके कर्ता शायद यह भूल जाते हैं कि उर्मिला आधुनिक स्वतन्त्रता सग्राम की नारी से भिन्न प्रकृति की महिला है। राजकुल की वधू होने के कारण उसकी अपनी कुछ सीमाएं हैं और साथ ही कुछ विशेषताएं जिनका त्याग उसके लिए सम्भव नहीं। कवि ने इस बात का ध्यान रखा है और यही कारण है कि उसमें आधुनिक नारी की सी सक्रियता नहीं आ सकी। प्रिय प्रवास की राधा उससे इसीलिए भिन्न है। किन्तु जहा तक स्वाभाविकता

का सम्बन्ध है देशकाल एव वातावरण चित्रण की दृष्टि से उर्मिला का चरित्र अधिक स्वाभाविक है।

वियोग वर्णन की पारम्परीण परिपाटी के आग्रह के कारण भी साकेत क प्रबन्धत्व को आघात पहुचा है। नवम सर्ग का वियोग वर्णन यदि किंचित् नवीनता के साथ विविध प्रसगो के आधार पर होता तो यह दोष न रहता।

निष्कर्ष यह कि प्रबन्ध-कौशल की दृष्टि से "साकेत' म जो त्रुटियाँ हैं, व कृतिकार के उद्देश्य विशेष के कारण हैं। अत इस दृष्टि से साकेत को सर्वथा सफल महाकाव्य न मानते हुए भी उसे महाकाव्य पद से वचित नही किया जा सकता।

## ३—युग-जीवन एव जातीय सस्कृति का व्यापक चित्रण

युग जीवन एव जातीय सस्कृति का व्यापक चित्रण महाकाव्य की तृतीय महत्वपूर्ण विशेषता है। उसके अभाव में महाकाव्यकार अपने उद्देश्य मे सफल नही माना जा सकता। अत साकेत के महाकाव्यत्व की सिद्धि के लिए आवश्यक है कि उसे इस कसौटी पर सफल सिद्ध किया जाए।

साकेत मे युग-जीवन एव जातीय सस्कृति का पर्याप्त चित्रण हुआ है। युग-जीवन के दो रूप हो सकते हैं—कथानक म वर्णित पात्रों का युग जीवन और ग्रथकार के समय का युग-जीवन। साकेत में उसके दोनो ही रूप उपलब्ध हैं। उसम यदि एक ओर उसके कथानक म वर्णित पात्रों के युग-जीवन का चित्रण है तो दूसरी ओर उसके कर्ता श्री मथिलीशरण गुप्त के युग जीवन के सकेत हैं। यदि एक ओर उसमें उर्मिला के इस कथन द्वारा रामायणकालीन भारत की सपन्नता की व्यजना की गई है —

गरज उठी वह—'नहीं नही पापी का सोना
यहा न लाना, भले सिन्धु में वहीं डुबोना।
धीरो धन को आज ध्यान म भी मत लाओ
जाते हो तो मान—हेतु ही तुम सब जाओ।
सावधान! वह अधम-धान्य-सा धन मत छूना
तुम्हे तुम्हारी मातृभूमि ही देगी दूना।
किस धन से हैं रिक्त कहो मुनिकेतु हमारे?
उपवन फल-सम्पन्न, अन्नमय खेत हमारे।
जय पयस्य-परिपूर्ण सुघोषित घोष हमारे,
अगणित आकर सदा स्वर्ण मणि-कोष हमारे।
देव-दुर्लभा भूमि हमारी प्रमुख, पुनीता,
उसी भूमि की सुता पुण्य की प्रतिमा सीता।
मातृभूमि का मान ध्यान म रहे तुम्हारे,
सौ सौ लक्ष भी एक लक्ष रक्खो तुम सारे।
हैं निज पार्थिव—सिद्धि—रूपिणी सीता रानी,

और दिव्य – फल – रूप राम राजा बल – दानी ।
वरे न कौणप – गंध कलंकित मलय पवन को,
लगे न कोई कुटिल कीट अपने उपवन को ।
विन्ध्य – हिमालय-भाल, भला ! झुक जाय न धीरो,
चन्द्र-सूर्य-कुल-कीर्ति-कला रुक जाय न वीरो ![1]

तो दूसरी ओर उसमे ऱ्यजित राजनीतिक विचारो मे आधुनिक युग की छाप भी दृष्टिगोचर होती है —

(क) 'राजा हमने राम, तुम्हीको है चुना
करो न तुम यों हाय ! लोकमत अनसुना ।
जाओ, यदि जा सको रौंद हमको यहां ।
यों कह पथ म लेट गये बहु जन वहां ।[2]

यदि एक ओर उसमे आदर्श राम राज्य की महत्ता के कारण उसकी प्रशसा एव स्पहा की गई है तो दूसरी ओर सामान्य राजाओ एव राज-पदों के विनाश की कामना —

किन्तु राजे रामराज्य नितान्त —
विश्व के विद्रोह करके शान्त ।[3]

तया " " "

राज-पद ही क्यों न अब हट जाय ?
लोभ-मद का मूल ही कट जाय ।
कर सके कोई न दर्प न दम्भ,
सब जगत में हो नया आरम्भ ।
विगत हों नर-पति, रहें नर मात्र ।
और जो जिस कार्य के हो पात्र —
वे रहें उस पर समान नियुक्त
सब जियें ज्यों एक ही कुल भुक्त ।"[४]

इसी प्रकार उसमें पारिवारिक, सामाजिक, धार्मिक, जातीय तथा राष्ट्रीय युग जीवन एव सस्कृति की भी अभीष्ट अभिव्यक्ति हुई है । राजा दशरथ का परिवार प्रत्येक प्रकार से आदर्श एव अनुकरणीय है । दशरथ आदर्श पिता हैं कौशल्या

———

१ साकेत द्वादश सर्ग, पृ० ३१३-३१४ ।
२—वही पचम सर्ग पृ० ८६ ।
३—वही, सप्तम सर्ग, पृ० १४१ ।
४—वही, वही, वही ।

कैकेयी एव सुमित्रा आदर्श पत्नियां एव माताएं, राम लक्ष्मण भरत एव शत्रुघ्न आदर्श पुत्र, आदर्श भ्राता एव आदर्श राजकुमार, सीता, उर्मिला, माण्डवी एव श्रुतिकीर्ति आदर्श वधुए कौशल्यादि तीनों रानियां आदर्श सासें और राम लक्ष्मण आदि आदर्श पति। उनके परिवार के ये आदर्श उनकी समस्त प्रजा के समक्ष रहते हैं। अत वह भी उनके दिव्य आदर्शों से प्रभावित होकर आदर्श पारिवारिक जीवन का सुख भोगती है —

दशों दिग्पालों के गुण-केन्द्र,
धन्य हैं दशरथ मही-महेन्द्र।
त्रिवेणी - तुल्य रानियां तीन,
बहाती सुख - प्रवाह नवीन।[1]

तथा

राम – सीता, धन्य धीराम्बर – इला,
शौर्य-सह सम्पत्ति लक्ष्मण-उर्मिला।
भरत कर्त्ता, माण्डवी उनकी क्रिया,
कीर्ति सी श्रुतिकीर्ति शत्रुघ्न प्रिया।
ब्रह्म की हैं चार जैसी स्फूर्तियां,
ठीक वैसी चार माया – मूर्तियां।
धन्य दशरथ – जनक – पुण्योत्कर्ष है,
धन्य भगवद्भूमि – भारतवर्ष है।[2]

एव

नहीं कहीं गृह-कलह प्रजा में, हैं सन्तुष्ट तथा सब शान्त,
उनके आगे सदा उपस्थित दिव्य राज – कुल का दृष्टान्त
अन्न-वृद्धि से तप्त तथा बहु कला-सिद्धि से सहज प्रसन्न
अपना ग्राम ग्राम है मानों एक स्वतन्त्र देश सम्पन्न।[3]

मानव स्वभाव से ही आत्म प्रशंसा का इच्छुक रहता है। यही कारण है कि वह स्वय भले ही पर छिद्रान्वेषक हो, पर दूसरों द्वारा अपनी बुराई सुनकर वह उनसे चिढ़ता है। अत व्यवहार-पटु व्यक्ति "सत्य ब्रूयात् प्रिय ब्रूयात् मा ब्रूयात् सत्यमप्रियम्" के सिद्धान्त पर चलकर मिष्ट भाषण द्वारा अपने चतुर्दिक प्रसन्नता का प्रसार करता चलता है। पारिवारिक जीवन की सुख शान्ति के लिए भी मिष्ट भाषण की नितान्त आवश्यकता है। दशरथ का परिवार ऐसा ही है। यही नहीं, उसके सदस्यों में कुटुम्ब के लिए अपेक्षित त्याग सेवा एवं ममत्व आदि भी इतना

---

१—साकेत, द्वितीय सर्ग स० वि० २००५, पृ० ३२।
२—वही प्रथम सर्ग वही, पृ० १२।
३—वही, एकादश सर्ग, वही पृ० २७५-२७६।

मर गया, अमर अधीन हमारे कर्मों के हैं,
साक्षी जो मन बुद्धि और इन मर्मों के हैं।[1]

जप तप, पूजा-पाठ, व्रत नियम तथा यज्ञादि धार्मिक संस्कारों की भी साकेत मे यथोचित अभिव्यक्ति हुई है। वेद विहित कर्मों तथा अन्य धार्मिक संस्कारों की महत्त्व प्रतिष्ठा साकेतकार की सबसे बडी कामना है —

होते हैं निर्विघ्न यज्ञ अब जप समाधि-तप-पूजा पाठ,
यश गाती हैं मुनि-कन्यायें कर व्रत-पर्वोत्सव के ठाठ।[2]

तथा

उच्चारित होती चले वेद की वाणी,
गूँजे गिरि-कानन सिंधु पार कल्याणी।
अम्बर में पावन होम धूप घहरावे।
वसुधा का हरा दुकूल भरा लहरावे।
तत्त्वों का चिंतन करें स्वस्थ हो ज्ञानी,
निर्विघ्न ध्यान में निरत रहें सब ध्यानी।
आहुतियाँ पडती रहें अग्नि में क्रम से,
उस तपस्त्याग की विजय-वृद्धि हो हम से।[3]

पात्रों के स्वरूप एवं कर्मादि चित्रण द्वारा भी धार्मिक परिस्थिति एवं धर्म-कर्म के महत्त्व प्रतिष्ठापन का यथोचित प्रयत्न किया गया है। राम-लक्ष्मण, भरत,शत्रुघ्न, सीता-उर्मिला माण्डवी-श्रुतिकीर्ति, कौशल्या सुमित्रा, हनुमान् विभीषण सभी के व्यक्तित्वों एवं कर्म कलापादि द्वारा विभिन्न मंगलकारी धर्मों की प्रतिष्ठा की गई है। लक्ष्मण द्वारा मेघनाद-यज्ञ विध्वंस तथा उसके वध द्वारा धर्मों के विकृत रूप की अनावश्यकता पर बल देते हुए उसकी भर्त्सना की गई है —

"कौन धर्म यह—पशु खड़े हुंकार रहे हैं—
तेरे आयुध यहाँ दीन पशु मार रहे हैं।'
"करता हूँ मैं वैरि विजय का ही यह साधन।"
'तब तेरा है कपट मात्र यह देवाराधन।
ठहर, ठहर बस व्यर्थ वंचना न कर मनन की
कर केवल कर्तव्य छोड़ दे चिंता फल की।"[4]

---

१ साकेत, द्वादश सर्ग सं० वि० २००७, पृ० ३१२।
२ वही एकादश सर्ग वही, पृ० २७९।
३ वही, अष्टम सर्ग वही पृ० १९८।
४ वही, द्वादश सर्ग, वही वही, पृ० ३२३।

४ कथानक की महत्ता।

साकेत की कथावस्तु परम्परागत राम-कथा से सम्बद्ध होते हुए भी मुख्यतया उर्मिला एव लक्ष्मण के त्यागमय प्रेम तथा विरह एव मिलन की कथा है। राम-कथा यहा उपेक्षित न होकर भी प्रासगिक सम्बद्ध कथा के रूप में ही आई है। कवि राम का भक्त है, अत राम के प्रति अपनी भक्ति भावना के कारण उसने उनके महत्व को यद्यपि प्रत्येक प्रकार से अक्षुण्ण रखने का प्रयत्न किया है तथापि उसने ऊर्मिला एव लक्ष्मण के त्यागमय प्रेम विरह एव मिलन के कथानक को ही अपना लक्ष्य बनाया है और इसके लिए परम्परागत राम कथा मे अनेक मौलिक उद्भावनाए करके उसे लक्ष्मण एव उर्मिला की प्रेम कहानी का रूप दिया है। जसा कि कहा जा चुका है राम-कथा इसमें प्रासगिक है अत स्वभावत ही इसमें उसके केवल बहुत आवश्यक अगो को ही लिया गया है।

इस प्रकार साकेत का कथानक उर्मिला लक्ष्मण के महत्व की कहानी है, अत उसी के महत्व पर आधृत है। आधुनिक युग युग युग से उपेक्षिता नारी की महत्व प्रतिष्ठा का युग है। यद्यपि यह सत्य है कि प्राचीन काल में नारी को पर्याप्त महत्व प्राप्त था—"यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता" की उक्ति इसी सत्य की ओर इगित करती है—तथापि नारी को जो महत्व आधुनिक काल में प्राप्त हुआ है वह सम्भवत उसे अन्य किसी काल मे प्राप्त नहीं हुआ। पति प्राणा सती शिरोमणि सीता का मर्यादापुरुषोत्तम राम द्वारा निर्वासन नारी के प्रति पुरुष के जिस अन्याय एव अत्याचार का द्योतक है, वह शायद बहुत स्पष्ट है। फिर भी वाल्मीकि तथा तुलसी ने पति प्राणा साध्वी नारियो का पर्याप्त श्रद्धा एव भक्ति भाव से देखा और उन्हें पर्याप्त महत्त्व दिया यद्यपि अन्य बहुत सी नारियो के प्रति उन्होंने किसी प्रकार भी न्याय नहीं किया। यही नहीं, सामान्य प्रसगों म भी उन्होंने नारी जाति की निन्दा करके उनके प्रति अन्याय किया है। भातृ भक्त लक्ष्मण की उपेक्षिता पत्नी उर्मिला के महत्व की ओर वाल्मीकि तथा तुलसी की जो उपेक्षा वृत्ति रही, उसके कलक मार्जन की ओर सव प्रथम विश्व-कवि श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर का ध्यान आकृष्ट हुआ और उन्होने इस सदभ में एक निबन्ध लिखा। पुन उसी निबन्ध से प्रेरित होकर आचाय महावीरप्रसाद द्विवेदी ने "कवियों की उर्मिला विषयक उदासीनता' शीर्षक निबन्ध लिखकर लोगों का ध्यान इस ओर आकृष्ट किया। फलत गुप्त जी ने उर्मिला के महत्व का अनुमान करके उसके महामहिम व्यक्तित्व का निर्माण किया और उसे नायिका-पद पर प्रतिष्ठित करके अपने गौरव ग्रन्थ 'साकेत" की रचना की।

किन्तु उर्मिला का यह महत्व साहित्य जगत् को गुप्त जी की देन होकर भी ऐतिहासिक एवम् पौराणिक सत्य है। लक्ष्मण निर्गुण ब्रह्म के सगुण अवतार भगवान् राम के परम भक्त मनुज तथा शेष नाग के अवतार हैं। उनका अनन्य

भ्रातृ प्रेम, त्याग, तपस्या एवम् साधनामय जीवन तथा अपार बल-विक्रम एवम् ओजपूर्ण व्यक्तित्व समग्र संसार की स्पृहा का विषय है। उर्मिला का पति प्राणा साध्वी रूप तथा उसका साधनामय अनन्य प्रेम संसार में अपना सानी नहीं रखता। अतः उसके महामहिम व्यक्तित्व एवम् साधनामय अनुपमेय प्रेम पर आधारित कथानक कितना महत्त्वपूर्ण होगा, इसका सहज ही अनुमान किया जा सकता है। नारी-जीवन के महत्त्व-गान के इस युग मे ऐसी सती शिरोमणि नायिका की जीवन-गाथा निश्चित रूप से समग्र विश्व के लिये स्पृहणीय है। अत साकेत का कथानक ऐतिहासिक पौराणिक ही नही, जीवन्त एवम् महत्त्वशाली भी है इसमें सन्देह नहीं।

### ५ महान् उद्देश्य एवम् महत् प्रेरणा

जसा कि कहा जा चुका है आधुनिक युग नारी महिमानुभव तथा उसके महत्त्व के सामगान का युग है। नारी महिमागान की इसी भावना के कारण काव्य की उपेक्षिता नारियों की ओर विश्व कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर का ध्यान आकृष्ट हुआ और उसी से प्रेरित होकर आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने "कवियो की उर्मिला विषयक उदासीनता" शीर्षक निबन्ध लिखा तथा उसी ने गुप्त जी को अपने गौरव-ग्रन्थ "साकेत" के प्रणयन की प्रेरणा दी।

महान् व्यक्तित्व का चित्रण, निर्माण एवम् उसकी कल्पना महाकाव्य की सबसे बड़ी आवश्यकता है। इसके अभाव मे महाकाव्य के विराट प्रासाद का निर्माण सम्भव नहीं। साकेतकार का प्रमुख उद्देश्य उपेक्षिता उर्मिला' के महान् व्यक्तित्व का अनुमान-निर्माण एवम् उसकी 'कल्पना करके उसे प्रकाश मे लाना तथा उसके विभिन्न आदर्शों को नारी समाज के समक्ष रखकर उसे उनसे प्रभावित करना है। उसके उत्कट प्रेम, विरह की एक-दो वर्षों की नहीं, चौदह वर्षों की दीर्घ अवधि की निरन्तर प्रतीक्षा वियोग जन्य असह्य उत्ताप एवम् अधीरता उद्वेग, प्रलाप एवम् उन्माद आदि वियोग की एकादश दशाओ तथा सहिष्णुता, त्याग एवम् साधनामय जीवन एवम् पति प्राणा साध्वी रूप का चित्रण उनका प्रमुख लक्ष्य है। साथ ही गौणत नायक-नायिकादि के जीवन के विभिन्न आदर्शों एवं कार्य व्यापारा, राम-कथा के विभिन्न पात्रों के व्यक्तित्व चरित्र आदर्शों एव विश्व मगल विधायक वृत्ति-व्यापारों तथा आधुनिक धार्मिक राजनीतिक एव सामाजिक जीवनादर्शों के चित्रण द्वारा विश्व समाज को मगलोन्मुख करना भी कवि का उद्देश्य है।

कवि का यह दृढ़ विश्वास है कि कविता अपूर्ण को पूर्ण बनाती है आदर्शों की स्थापना करती है और विश्व कल्याण म विभिन्न प्रकार से योग देती है। साकेत" म उसने स्पष्ट कहा है —

> यह तुम्हारी भावना की स्फूर्ति है,
> जो अपूर्ण कला उसी की पूर्ति है।

हो रहा है जो जहाँ, सो हो रहा,
यदि वही हमने कहा तो क्या कहा ?
किन्तु होना चाहिए कब, क्या, कहाँ
व्यक्त करती है कला ही यह यहाँ।
मानते हैं जो कला के अर्थ ही,
स्वामिनी करते कला को व्यर्थ ही।[1]

साकेत का उद्देश्य व्यापक विश्व धर्म की प्रतिष्ठा है। धर्म के विभिन्न आदर्शों का निर्माण तथा उनके द्वारा अध्येताओं को विश्व मंगलोन्मुख करना साकेतकार का उद्देश्य है। उर्मिला त्याग, सेवा, करुणा, प्रेम एवं महत्त्व की प्रतिमूर्ति है, पति के मार्ग में वह बाधक बनना नहीं चाहती, उसके सन्तोष के लिए वह अपने सुख-दुःख की चिन्ता नहीं करती। उसके जीवन की करुण कहानी का यही कारण है —

कहा उर्मिला ने—'हे मन ! तू प्रिय-पथ का विघ्न न बन।
आज स्वार्थ है त्याग भरा। है अनुराग विराग भरा।
तू विकार से पूर्ण न हो, शोक भार से चूर्ण न हो।
भ्रातृ-स्नेह-सुधा बरसे, भू पर स्वर्ग-भाव सरसे।[2]

तथा

"हा स्वामी ! कहना था क्या क्या
कह न सकी, कर्मों का दोष !
पर जिसमें सन्तोष तुम्हें हो
मुझे उसी में है सन्तोष।"[3]

उसके इसी महान् रूप द्वारा गुप्त जी ने नारी समाज के समक्ष विभिन्न आदर्शों को प्रस्तुत किया है। लक्ष्मण राम भरत, शत्रुघ्न आदि प्रायः सभी पात्र अपने विभिन्न आदर्शों एवं वृत्ति-व्यापारों द्वारा लोक मंगल में योग देते हैं। यही नहीं विभीषण जैसे पात्र भी किसी न किसी आदर्श को प्रस्तुत करते दिखाये गये हैं। देश प्रेम एवं देश के लिए सर्वस्व न्योछावर करना विश्व-कल्याण की दृष्टि से एक प्रकार से परमावश्यक है किन्तु आदर्श देश प्रेमी अपने देश द्वारा दूसरे देश पर अन्याय किया जाना सहन नहीं कर सकता। अपने देश की महिमा में किसी प्रकार का कलंक उसके लिए सह्य नहीं —

उधर विभीषण ने रावण को पुनः प्रेम-वश-समझाया।
पर उस साधु पुरुष ने उलटा देशद्रोही पद पाया।

१—साकेत, प्रथम सर्ग, पृ० २७।
२—वही, चतुर्थ सर्ग, पृ० ७९।
३ वही, अष्टम सर्ग, पृ० १९३।

तात, देश की रक्षा का ही कहता हू मैं उचित उपाय,
पर वह मेरा देश नही जो करे दूसरो पर अन्याय ।
किसी एक सीमा मे बध कर रह सकते हैं क्या ये प्राण ?
एक देश क्या अखिल विश्व का तात, चाहता हूँ मैं त्राण ?[१]

इसी प्रकार कमण्यता, उदारता त्याग तप बलिदान आदि गुणा तथा पत्नी रक्षा स्वाभिमान रक्षा धम रक्षा, अन्याय निवारण आदि व्यापारों के विभिन्न मगलमय आदर्शों के उपदेश रत्न भी 'साकेत' मे भरे पडे हैं जो सभी धम के महत्वपूण अग हैं, अत धम के स्थापक तथा मोक्ष विधायक हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि इस प्रकार साकेतकार का उद्देश्य धम अथ एव मोक्ष तीनो का ही विधान करके विश्व मगल मे योग देना है।

## ५—चरित्र चित्रण क्षमता तथा नायक नायिकादि की महत्ता

महाकाव्य की सफलता उसके रचयिता की पात्र-कल्पनाकर्त्री प्रतिभा तथा उनके प्रस्तुतीकरण की क्षमता पर निभर है।[1] इसके अभाव मे महाकाव्य की सृष्टि सम्भव नही। जिस प्रकार किसी उप यासकार के पात्रो के विषय में यह कहा जा सकता है कि उन्हें हमारे जसा रक्त मास एव चम का होना चाहिए उसी प्रकार महा काव्य तथा अन्य साहित्यिक विधाओ के पात्रो के विषय मे भी। पात्रो का प्रभाव अध्यताओ पर तभी पडता है जबकि उनमे यह विशेषता अपनी पूणता मे विद्यमान होती है, जबकि वे लेखक के सकेत पर न चलकर स्वय चलते हैं और जबकि लखक उनकी इच्छा एव आवश्यकतानुसार चलता है।[२] महाकाव्यकार की विशेषता इसी बात म है। उसके पात्रो के व्यक्तित्व—उनकी मुखाकृतिया, शारीरिक सरचनाएँ वण वशिष्ट्य वेश भूषाएँ मुद्राए एवचेष्टाए तथा वृत्ति-व्यापार उसकी कृति म स्पष्ट परिलक्षित होने चाहिए।

---

१ साकेत, एक दश सग, पृ० २८८

1 The success of an Epic poem depends upon the author's power of imagining & representing characters

—W P Ker Epic And Romance P 17

2 They lay hold of us by virtue of their substantial quality of life, we know & believe in them as thoroughly we sympathise with them as deeply, we love and hate them as cordially, as though they belonged to the world of flesh and blood

—W H Hudson An Introduction To The Study of Literature, II Edition (1919), P 190

गुप्त जी के पात्र उक्त सभी विशेषताओं को लिए हुए दृष्टिगोचर होते हैं। उनके 'साकेत' के प्राय सभी पात्र अपने विशिष्ट व्यक्तित्व में सजीव तथा प्रभावोत्पादक हैं। व आदर्श के चित्रकार हैं किन्तु साथ ही उन्होंने मनोवैज्ञानिक सत्यों की भी उपेक्षा नहीं की। उनकी कैकयी की दुर्बलता सपत्नी पद पर प्रतिष्ठित नारी-मन की सहज-स्वाभाविक विशेषता है। उसके हृदय में राम के प्रति किसी प्रकार का द्वेष अथवा वैमनस्य नहीं था। यही नहीं वह उन्हें भरत के समान ही प्रिय समझती थी १। किन्तु वह वात्सल्यमयी जननी अपने प्रिय पुत्र भरत की अनुपस्थिति में राम के राज्याभिषेक के अवसर पर भरत जैसे साधु प्रकृति के व्यक्ति पर भी सन्देह करने की दासी द्वारा सुझाई गई बात से शंकालु हो उठती है और यद्यपि वह उसकी तुच्छतापूर्ण धारणाओं के लिए उसकी भर्त्सना करती है तथापि उसके चले जाने पर उसके हृदय में एक शंका घर कर जाती है —

> कहा उसने—'यह क्या उत्पात ?
> वचन क्यों कहती है तू वाम ?
> नहीं क्या मेरा बेटा राम ?'"
>
> \+ + +
>
> "दूर हो दूर अभी निर्बोध!
> सामने से हट, अधिक न बोल,
> द्विजिह्वे, रस में विष मत घोल।
> उड़ाती है तू घर में कीच
> नीच ही होते हैं बस नीच।
> हमारे आपस के व्यवहार
> कहाँ से समझे तू अनुदार ?
>
> \+ + +
>
> गई दासी, पर उसकी बात
> दे गई मानो कुछ आघात—
> भरत-से सुत पर भी सन्देह
> बुलाया तक न उन्हें जो गेह!
> पवन भी मानो उसी प्रकार
> शून्य में करने लगा पुकार—
> 'भरत से सुत पर भी सन्देह,
> बुलाया तक न उन्हें जो गेह!' २

१ साकेत द्वितीय सर्ग, पृ० ३३-३६।

२ 'लो कुहुकिनि, अपना कुहुक, राम यह जागा,
निज मँझली माँ का स्वप्न देख उठ भागा।'

—वही अष्टम सर्ग, पृ० १८२।

परिणामतः वह निःस्वार्थ एवं उन्मादकारिणी रोष एवं प्रतिशोध के झंझावात में बहती हुई अपने वास्तविक स्वरूप का विस्मरण करके, क्रूरता की साकार प्रतिमूर्ति बन कर, समग्र साकेत में भीषण दृश्य उपस्थित कर देती है —

नाथ, कपटी के कर वित्त
चोर कर देतो उसका चित्त।
स्वार्थ का यहां नहीं है संग,
बने हो एक तुम्हीं प्राणेश !
सदा थे तुम भी परमोदार,
हुआ क्यों सहसा आज विकार ?

\+ \+ \+

हाय ! तब तूने पर अदृष्ट
किया क्या जीजी को आकृष्ट ?
जान कर अबला, अपना जाल—
दिया है उस सरला पर डाल ?
किन्तु हा ! यह कैसा सारल्य ?
सालता है जो बनकर शल्य।
भरत-से सुत पर भी सन्देह,
बुलाया तक न उसे जो गेह !

\+ \+ \+

किन्तु चाहे जो कुछ हो जाय,
सहूँगी कभी न यह अन्याय।
करूँगी मैं इसका प्रतिकार,
पलट जावे चाहे संसार।[1]

उसका कठोर एवं विनाशकारी रूप तथा उसके चरित्र का उत्थान एवं पतन मनोवैज्ञानिक होने के कारण सहज स्वाभाविक है और उसके चित्रण में साकेतकार को सर्वाधिक सफल कहा जा सकता है क्योंकि आगे चलकर युग युग से कलंकिता इस नारी का पश्चात्ताप एवं ग्लानि से भरा हुआ जो निर्मल, निश्छल एवं भव्य वात्सल्यमय रूप साकेतकार ने प्रस्तुत किया है वह उसकी मौलिक सृजनकर्त्री प्रतिभा का परिचायक है। साथ ही अपने नव्य भव्य रूप में प्रस्तुत होने के कारण वह उसके चरित्र के उत्थान-पतन का अभिव्यंजक तथा उसके अन्तर्मन की उथल पुथल एवं

———

१ साकेत द्वितीय सर्ग, पृ० ३७-३९।

विभिन्न मन स्थितियों का भी दिग्दर्शक है —

यह सच है तो फिर लौट चलो घर भैया,
अपराधिन मैं हूं तात तुम्हारी मैया।
दुर्बलता का ही चिह्न विशेष शपथ है,
पर अबला जन के लिए कौन सा पथ है?
यदि मैं उकसाई गई, भरत से होऊं,
तो पति समान ही स्वयं पुत्र भी खोऊं।
ठहरो, मत रोको मुझे कहूं सो सुन लो,
पाओ यदि उसमें सार उसे सब चुन लो।
करके पहाड़-सा पाप मौन रह जाऊं?
राई भर भी अनुताप न करने पाऊं?

+ + +

क्या कर सकती थी, मरी मथरा दासी,
मेरा ही मन रह सका न निज विश्वासी।
जल पंजरगत अब अरे अधीर अभागे,
वे ज्वलित भाव थे स्वयं तुझी में जागे।

+ + +

'रघुकुल में भी थी एक अभागिन रानी।'
निज जन्म-जन्म में सुने जीव यह मेरा—
धिक्कार! उसे था महा स्वार्थ ने घेरा।'

+ + +

पटके मैंने पद पाणि मोह के नद में,
जन क्या क्या करते नहीं स्वप्न में, मद में?
हा! दण्ड कौन, क्या उसे डरूंगी अब भी?
मेरा विचार कुछ दयापूर्ण हो तब भी।
हा दया! हन्त वह घृणा! अहह वह करुणा।
वैतरणी-सी है आज जाह्नवी-वरुणा।
सह सकती हूं चिर नरक, सुनें सुविचारी
पर मुझे स्वर्ग की दया दण्ड से मारी।'[1]

उसके तर्कों के अन्तराल से उसका निर्मल-सात्विक अन्तःकरण स्पष्ट झाँकता प्रतीत होता है। पुत्र भरत से भी अधिक प्रिय पुत्र राम के भावी वियोग का अनुमान करके उसका मातृ हृदय अधीर हो उठता है —

मुझको यह प्यारा और इसे तुम प्यारे,
मेरे दुगुने प्रिय रहो न मुझसे न्यारे।

———

1. साकेत, अष्टम सर्ग पृ० १७८-१८१।

\+ \+ —

'मेरे तो एक अधीर हृदय है बेटा,
उसने फिर तुमको आज भुजा भर भेंटा।
देवों की ही चिरकाल नहीं चलती है।
दैत्यों की भी दुर्वृत्ति यहां फलती है'।

\+ \+ \+

'छल किया भाग्य ने मुझे अयश देने का,
बल दिया उसीने भूल मान लेने का।
अब कटे सभी वे पाश नाश के प्रेरे,
मैं वही कैकयी, वही राम तुम मेरे।
होने पर बहुधा अध रात्रि अँधेरी,
जीजी आकर करती पुकार थीं मेरी—
लो कुहुकिनि, अपना कुहुक, राम यह जागा,
निज मझली मां का स्वप्न देख उठ भागा।"
भ्रम हुआ भरत पर मुझे व्यर्थ संशय का,
प्रतिहिंसा ने ले लिया स्थान तब भय का।
तुम पर भी ऐसी भ्रान्ति भरत से पाती
तो उसे मनाने भी न यहां मैं आती।—
जीजी ही आती, किन्तु कौन मानेगा?
जो अन्तर्यामी, वही इसे जानेगा'[1]

अपने कर्तृव्य के अनौचित्य के कारण ही वह सिंहिनी सदृश क्षत्राणी जिसके जीवन में दैन्य के लिए कोई स्थान न था और जिसने पुत्रों के अनुशासन में कभी कोई शैथिल्य नहीं आने दिया, अपने मातृत्व का विस्मरण कर दीन हीन हो उठती है —

पर महा दीन हो गया आज मन मेरा
भावज्ञ सहेजो तुम्हीं भाव धन मेरा।
समुचित ही मुझको विश्व घृणा ने घेरा,
समझाता कौन सशान्ति मुझे भ्रम मेरा?
यों ही तुम वन को गये देव सुरपुर को,
मैं बैठी ही रह गई लिये इस उर को।

\+ \+ \+

हो तुम्हीं भरत के राज्य, स्वराज्य सम्हालो,
मैं पाल सकी न स्वधर्म उसे तुम पालो।

---

१ साकेत अष्टम सर्ग, पृ० १८१ १८२।

स्वामी को जीते जी न दे सकी सुख म,
मर कर तो उनको दिखा सकू यह मुख मैं।
\+ + +
अनुशासन ही था मुझे अभी तक आता,
करती है तुमसे विनय आज यह माता—।"
\+ + +
राघव तेरे ही योग्य कथन है तेरा
दृढ़ बाल-हठी तू वही राम है मेरा।
देखें हम तेरा अवधि मार्ग सब सह कर,
कौसल्या चुप हो गई आप यह कह कर।
ले एक सास रह गई सुमित्रा भोली,
कैकेयी ही फिर रामचन्द्र से बोली—
"पर मुझको तो परितोष नहीं है इससे
हा ! तब तक मैं क्या कहूं सुनूं गी किससे?"[1]

साकेतकार का प्रमुख उद्देश्य उपेक्षित पात्रों को अभिनव व्यक्तित्व देकर सहज स्वाभाविक रूप में प्रस्तुत करना है। साकेत चरित्र-प्रधान महाकाव्य है। उसमें उसके रचयिता के मानस-पटल पर उदित पात्रों के भव्य स्वरूप की प्रतिष्ठा है जिसके लिए कवि ने अभिनयात्मक एवं वर्णनात्मक शैलियों का प्रयोग किया है। पात्र प्राय सभी आदर्श हैं किन्तु लक्ष्मण तथा कैकयी के चरित्र मे यथार्थता एवं मनोवैज्ञानिकता का भी पर्याप्त समन्वय है। लक्ष्मण का क्रोध तथा कैकेयी का प्रतिशोध एवं प्रलयङ्कर रूप इस विषय में द्रष्टव्य है —

"अरे, मातृत्व तू अब भी जताती !
ठसक किसको भरत की है बताती ?
भरत को मार डालू और तुझको,
नरक मे भी न रक्खू ठौर तुझको !
युधाजित आततायी को न छोड़ू,
बहन के साथ भाई को न छोड़ू।
बुलाले सब सहायक शीघ्र अपने
कि जिनके देखती है व्यर्थ सपने।
सभी सौमित्रि का बल आज देखें
कुचक्री चक्र का फल आज देखें।
भरत को सानती है आप में क्यों ?
पड़े गे सूयवंशी पाप मे क्यों ?

---

[1]—साकेत अष्टम सर्ग पृ० १८३-१८५।

हुए ये साधु तेरे पुत्र ऐसे—
कि होता कीच से है कंज जैसे ।
भरत होकर यहाँ क्या आप करते,
स्वयं ही लाज से वे डूब मरते !
तुझे सुत मदिराणी सर्पिन समझता,
निशा को, मुंह छिपाते, दिन समझते ।[1]

तथा

चलो, सिंहासनस्थित हो सभा में,
वही हो जो कि समुचित हो सभा में ।
चलें वे भी कि जो हों विघ्नकारी,
कहो तो लौट दूं यह भूमि सारी ?
खड़ा है पार्श्व में लक्ष्मण तुम्हारे
मरें आ कर अभी अरिगण तुम्हारे ।[2]

एवं

खड़ी है मां बनी जो नागिनी यह,
अनार्या की जनी हतभागिनी यह,
अभी विषदन्त इसके तोड़ दूंगा,
न रोको तुम, तभी मैं शान्त हूंगा ।
बने इस दस्युजा के दास हैं जो,
इसी से दे रहे वनवास हैं जो,
पिता हैं वे हमारे या—कहूं क्या ?
कहो हे आर्य ! फिर भी चुप रहूं क्या ?"[3]

इसी प्रकार कैकेयी का प्रतिशोध एवं प्रलयंकर रूप भी पर्याप्त मनोवैज्ञानिक एवं यथार्थ है —

मानिनी कैकेयी का कोप
बुद्धि का करने लगा विलोप ।
और रह सकी न अब वह शान्त,
उठी आंधी सी होकर भ्रान्त ।
एडियों तक आ छूटे केश,
हुआ देवी का दुर्गा वेश ।
पड़ा तब जिस पदार्थ पर हस्त,

———

१—साकेत तृतीय सर्ग पृ० ५६ ।
२—वही वही पृ० ६० ।
३—वही, वही, पृ० ६१ ।

उसे कर डाला ग्रस्त-व्यस्त ।
तोड कर फेंके सब शृंगार,
ग्रश्रुमय से थे मुक्ता हार ।
मत्त करिणी-सी दल कर फूल
धूमने लगी आपको भूल ।
चूर कर डाले सुन्दर चित्र,
हो गये वे भी आज अमित्र ।
बताते थे आ आ कर श्वास,
हृदय का ईर्ष्या-वह्नि विकास ।
पतन का पाते हुए प्रहार
पात्र करते थे हाहाकार—[1]

सपत्नी कौसल्या का चित्र उसके मनश्चक्षुओं के समक्ष घूमने लगा और उसे ऐसा प्रतीत होने लगा मानों वे उसका उपहास कर रही हैं। फलत उसकी क्रोधाग्नि में घृत की आहुति पडने लगी और उसका रूप और अधिक विकराल हो उठा —

राजमाता हो कर प्रत्यक्ष,
उसे करके वे मानों लक्ष,
खडी हँसती हैं बारम्बार,
हँसी है या असि की वह धार ?
उठी तत्क्षण कैकेयी काँप,
अधर-दशन करके कर चाँप।
भूमि पर पटक-पटक कर पैर
लगी प्रकटित करने निज वैर।
अन्त में सारे अंग समेट,
गई वह वहीं भूमि पर लेट।
छोडती थी जब सब हुंकार,
छुटीली फणिनी-सी फुंकार।[2]

यही कारण है कि अपने माँगे हुए वरदानों तथा कुटिलता के वज्राघात से आहत अपने जीवन साथी महाराज दशरथ की मरणासन्नावस्था को देख कर भी वह टस से मस नहीं होती —

---

१ साकेत, द्वितीय सर्ग पृ० ४०-४१।
२ वही वही, पृ० ४१-४२।

वज्र-सा पड़ा अचानक टूट
गया उनका शरीर-सा छूट।
उन्हें यों हत ज्ञान सा देख,
ठोंकती-सी छाती पर मेख
पुन बोली वह भौंहें तान—
'मौन हो गये, कहो हाँ या न !"
भूप फिर भी न सके कुछ बोल
मूर्ति से बैठे रहे अडोल।
दृष्टि ही अपनी करुण-कठोर
उन्होंने डाली उसकी ओर।
कहा फिर उसने देकर क्लेश—
"सत्य-पालन है यही नरेश ?
उलट दो बस तुम अपनी बात,
मरूँ मैं करके अपना घात।"
कहा तब नृप ने किसी प्रकार—
"मरो तुम क्यों भोगो अधिकार।
मरूँगा तो मैं अगति समान,
मिलेंगे तुम्हें तीन वरदान।"[1]

उच्चादर्शों की महत्ता के कारण पात्र प्राय अति मानवीय प्रतीत होते है किन्तु इसका कारण राम-कथा का परम्परागत रूप तथा कवि की आदर्शों के प्रति अनुरक्ति है। यों लौकिक-अलौकिक की श्रेणियों में विभक्त करने पर केवल राम को ही अलौकिक पात्रों की कोटि में रखा जा सकेगा शेष सभी पात्र आदर्शों के समुच्च शृग पर प्रतिष्ठित होते हुए भी लौकिकता को लिए हुए हैं।

उपेक्षित पात्रों के अन्तर्गत उर्मिला, कैकेयी, सुमित्रा माण्डवी श्रुतिकीर्ति तथा शत्रुघ्न आते हैं। कवि ने इन सब की चारित्रिक विशेषताओं को यथाशक्ति स्पष्ट किया है यद्यपि वे सभी नायिका उर्मिला के चरित्र की केन्द्रस्थ धुरी के चतुर्दिक् घूमते हैं। कहने की आवश्यकता नहीं, कि समस्त पात्रों एव घटनाओं का सम्बन्ध किसी न किसी प्रकार से उर्मिला से जोड दिया गया है और यह सर्वथा उचित ही है क्योंकि कवि का उद्देश्य प्रमुखत उसी के चरित्र की महत्ता को प्रकट करना है।

महाकाव्य मे व्यक्तित्व निर्माण एव चरित्र सृजन-क्षमता का इतना महत्त्व है कि विश्व कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने महाकाव्य की परिभाषा करते समय महच्चरित्र

[1] साकेत, द्वितीय सर्ग, पृ० ८०

कल्पना को ही उसका एक मात्र आधार माना है। इस विषय में उनकी निम्नांकित पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं —

"मन में जब एक महत् व्यक्ति का उदय होता है, सहसा जब एक महापुरुष कवि के कल्पना राज्य पर अधिकार आ जमाता है, मनुष्य चरित्र का उदार महत्त्व मनश्चक्षुओं के सामने अधिष्ठित होता है, तब उसके उन्नत भावों से उद्दीप्त होकर उस परम पुरुष की प्रतिमा प्रतिष्ठित करने के लिए कवि भाषा का मंदिर निर्माण करते हैं। उस मंदिर की भित्ति पृथ्वी के गम्भीर अन्तर्देश में रहती है, और उसका शिखर मेघों को भेद कर आकाश में उड़ता है। उस मंदिर में जो प्रतिमा प्रतिष्ठित होती है, उसके देव भाव से मुग्ध और पुण्य किरणों से अभिभूत होकर, नाना दिग्देशों से आ-आकर, लोग उसे प्रणाम करते हैं। इसी को कहते हैं महाकाव्य।"[1]

कहने की आवश्यकता नहीं कि साकेतकार के मानस पटल पर उदित उपेक्षिता उर्मिला का भव्य चरित्र ही एक प्रकार से उसका आधार है और उसी के व्यक्तित्व एवं चरित्र की विशेषताओं की नींव पर साकेत के भव्य प्रासाद का निर्माण हुआ है। अन्य पात्र उसी की जीवन कथा अथवा चरित्र गाथा को गतिमान करने के लिए हैं। यही कारण है कि साकेत में राम-कथा का केवल उतना ही अंश आया है जितना नायिका उर्मिला के व्यक्तित्व एवं चरित्र विकास अथवा उसकी प्रोषितपतिकावस्था एवं अन्य अवस्थाओं में उसके पति लक्ष्मण के जीवन से विशेष रूप से सम्बद्ध है। रावण वध की महत्त्वपूर्ण घटना का उसमें इसीलिए सविस्तर वर्णन नहीं किया गया है। मेघनाद वध के उपरान्त कवि कहता है कि मेघनाद की मृत्यु से देवी सीता को राम के निकट ही समुपस्थित हुई समझिए क्योंकि 'मेघनाद क्या मरा मरा रावण ही मानो।'[2] इसके अनन्तर कवि राम रावण युद्ध का कोई वर्णन नहीं करता, केवल इतना ही कहकर काम चला लेता है —

> भुक्ति विभीषण और मुक्ति रावण को देकर,
> विजय सखी के संग शुद्ध सीता को लेकर—
> दाक्षिणात्य लंकेश अतिथि लाकर मन भाये,
> आतिथेय हो बने लक्ष्मणाग्रज पर आये।[3]

---

१ मेघनाद वध, मतामत पृ० १३७।

२ साकेत, द्वादश सर्ग, पृ० ३२६।

३ वही, वही, पृ० ३२८।

साकेतकार का उद्देश्य भिन्न है। उसका लक्ष्य विरहिणी उर्मिला तथा अनन्य भ्रातृ भक्त लक्ष्मण के व्यक्तित्व की महत्ता का प्रतिपादन है जिसके लिए रावण वध जसी घटनाओं के सविस्तर वर्णन की आवश्यकता नहीं। उर्मिला (नायिका) के विरही जीवन की सकरुण व्यजना के लिए उसके सयुक्त जीवन के हर्षोल्लास प्रेमालाप एव हास्य विनोद का चित्रण आवश्यक था क्योंकि उसके अभाव म उसके वियुक्त जीवन—उसके प्रोषितपतिका रूप—का चित्रण शून्य भीति पर चित्र रचना के समान होता। अत कवि ने नायक-नायिका के सयुक्त जीवन का चित्रण करके जहाँ एक ओर उनके चरित्र की विभिन्न विशेषताओं—उर्मिला के सौन्दर्य, कला प्रेम चित्र कला पटुता, वाग्वदग्ध्य, सुख-स तोषमय जीवन, हास्य परिहास-क्षमता एव अनन्य प्रेमिका रूप तथा लक्ष्मण के उत्कट प्रेमी रूप, हास्य विनोद प्रेम, वाकचातुर्य एव भ्रातृ भक्ति[1] आदि-की अभिव्यक्ति की है वहाँ दूसरी ओर आगे चलकर उनके चौदह वर्षों के विकट वियोग दु ख की व्यजना के लिए आधार फलक भी तैयार किया है। कहना न होगा कि लक्ष्मण एव उर्मिला के त्यागपूर्ण जीवन के महत्त्व मे इसस जो अभिवृद्धि हुई है वह अन्यथा सम्भव नहीं थी। आगे चलकर दोनों के चरित्र की रेखाओं को उभारने तथा अनुराग विरागमय जीवन के अकन चित्रण के लिए कवि ने अन्य पात्रों की, गति विधियों एव घटनाओं की योजना की है। कहने की आवश्यकता नही कि नवम तथा दशम सर्ग केवल उर्मिला के विरही जीवन के विभिन्न पक्षो पर प्रकाश डालते हैं जिससे उसके चरित्र मे अनेक महत्त्वपूर्ण विशेषताओं की योजना हुई। है दशम सर्ग मे यद्यपि उसने स्मृति रूप म अपने तथा अपनी अग्रजाओं के बाल्य काल, राम-लक्ष्मण के बाल्यजीवन विश्वामित्र की यज्ञ रक्षा ताडका-वध, धनुर्भग तथा चारो बहनों के पाणि ग्रहण सस्कार का उल्लेख किया है तथापि उसम उसके पतिप्राणा साध्वी एव विरह विह्वला नारी रूप का लोप नहीं हुआ है। अन्य सर्गो म भी कवि ने उसे यथा समय प्रस्तुत करके उसके चरित्र महत्ता की अभिवृद्धि की है और सभी घटनाओं, परिस्थितियों एव पात्रों स उसे सम्बद्ध करके उसके नायिका रूप की पुष्टि की है। यही नहीं, लक्ष्मण शक्ति के प्रसग में जब हनुमान् स सवाद पाकर साकेत की सेना लका प्रयाण के लिए प्रस्तुत होती है तब भी कवि उसके वीर क्षत्राणी एव सहानुभूतिशील नारी रूप की अभिव्यक्ति करके उसके व्यक्तित्व की महत्ता प्रदर्शित करता है—

---

१—भावनी मैं मार लूँ किस काम का ?
एक सैनिक मात्र लक्ष्मण राम का।
—साकेत, प्रथम सर्ग पृ० २८।

नहीं, नहीं—सुन चौंक पड़े शत्रुघ्न और सब
ऊषा सी आगई ऊर्मिला उसी ठौर तब ।
वीणांगुलि-सम सती उतरती-सी चढ़ धाई,
तालपूर्ति-सी संग सखी भी खिंचती आई ।
आ शत्रुघ्न-समीप रुकी लक्ष्मण की रानी,
प्रकट हुई ज्यों कार्तिकेय के निकट भवानी ।
जटा-जाल-से बाल विलम्बित छूट पड़े थे,
आनन पर सौ अरुण, घटा में फूट पड़े थे ।
माथे का सिन्दूर सजग अंगार-सदृश था,
प्रथमातप सा पुण्य गात्र, यद्यपि वह कृश था ।
बायां कर शत्रुघ्न पृष्ठ पर कण्ठ निकट था
दाएँ कर में स्थूल किरण सा शूल विकट था ।
गरज उठी वह—'नहीं, नहीं पापी का सोना
यहाँ न लाना, भले सिन्धु में वहीं डुबोना ।
+ + + + +
पावें तुमसे आज शत्रु भी ऐसी शिक्षा,
जिसका अथ हो दण्ड और इति दया तितिक्षा ।
देखो, निकली पूर्व दिशा से अपनी ऊषा,
यही हमारी प्रकृत पताका, भव की भूषा ।
ठहरो, यह मैं चलूँ कीर्ति सी आगे आगे ।
भोगें अपने विषम कर्म-फल अधम अभागे !
भाल भाग्य पर तने हुए थे तेवर उसके
'भाभी भाभी !' रुद्धकण्ठ थे देवर उसके ।[1]

तथा

वीरो, पर यह योग भला क्यों खोऊँगी मैं,
अपने हाथों घाव तुम्हारे धोऊँगी मैं ।
पानी दूँगी तुम्हें, न पल भर सोऊँगी मैं
गा अपनों की विजय, परों पर रोऊँगी मैं ।[2]

लक्ष्मण साकेत के नायक हैं। इस विषय में यद्यपि आलोचकों में मत-वैभिन्य है और "मुण्डे-मुण्डे मतिर्भिन्ना", Minds differ as rivers differ अथवा "भिन्न रुचिर्हि लोकः" के अनुसार कोई भरत को साकेत का नायक मानता

---

1— साकेत, द्वादश सर्ग, पृ० ३१३-३१५ ।
२— वही, वही, पृ० ३१५ ।

है और कोई राम को। लक्ष्मण के नायकत्व म सब से बड़ी बाधा यह मानी जाती है कि वे स्वभाव से उग्र एव क्रोधी प्रकृति के हैं किन्तु कतिपय आलोचक उनम कतिपय अन्य गुणों का भी अभाव पाते हैं। इस विषय में डा० द्वारिकाप्रसाद सक्सेना की ये पक्तियाँ द्रष्टव्य हैं —

'कथा–विधान की दृष्टि से उर्मिला नायिका है, तब उसके प्राणेश्वर लक्ष्मण इस काव्य में नायक हैं। कि तु शास्त्रीय दृष्टि से नायक म जिन उदात्त गुणा की आवश्यकता होती है, उनका सवथा अभाव लक्ष्मण म दिखाई देता है। इसके अतिरिक्त नायक में सम्पूर्ण पात्रो का नेतत्व करने की जो अपूव क्षमता होती है वह भी लक्ष्मण म दृष्टिगोचर नही होती। यहाँ लक्ष्मण राम के अनुज एव अनुयायी हैं और इसी कारण अपने स्वभाव, विचार, सकल्प एव धारणा के अनुसार काय नहीं करते अपितु राम जसी प्रेरणा देते हैं उसे प्रभु की आज्ञा मान कर शिरोधाय करते हैं, और तदनुकुल अपने जीवन का लक्ष्य बनाते हैं। सव प्रथम लक्ष्मण के दशन एक विलास–प्रिय एव विनोदी धीर ललित नायक के रूप म होते हैं। अपनी प्रियतमा उर्मिला के साथ विनोद वार्ता द्वारा हास परिहास करते हुए वे अन्य कार्यों के लक्ष्मण से सवथा भिन्न दिखाई देते हैं।"[1]

उक्त अवतरण में लक्ष्मण म उदात्त गुणों का सवथा अभाव बताया गया है किन्तु यह कथन युक्तियुक्त नहीं कहा जा सकता। कारण निम्नांकित हैं —

लक्ष्मण के व्यक्तित्व एव चरित्र की माप हम जिस मापदड से करते हैं वह राम के मर्यादा पुरुषोत्तम रूप का है। यद्यपि इसम सन्देह नही कि राम जितने शान्त एव गम्भीर हैं उतने लक्ष्मण नहीं हैं तथापि यह भी सत्य है कि राम का हृदय वज्र से भी कठोर और कुसुम से भी कोमल है' कुलिसहु चाहि कठोर अति कोमल कुसुमपि चाहि " । आवश्यकता पडने पर धम रक्षा तथा अत्याचार एव अन्याय निवारण के लिए व प्रलयकर रूप धारण कर सकते हैं—कुम्भकर्ण एव रावण-वध के प्रसग इस विषय के प्रमाण हैं। लक्ष्मण की उग्रता एव रोषाभिव्यक्ति के अवसर साकेत म केवल दो–तीन बार आये हैं—धनुभग–प्रसग राम–वन–गमन तथा चित्रकूट म भरत के आगमन के समय। इसके अतिरिक्त कतिपय अन्य स्थल भी हैं पर वहाँ उनका क्रोध दूषण न होकर भूषण हो गया है। धनुभग–प्रसग मे भी उनका रोष युक्तियुक्त ओजोत्साहपूर्ण एव वीरोचित होने के कारण स्पृहणीय माना जाता है। राम–वन–गमन के प्रसग म अवश्य उनका क्रोध औचित्य की सीमा का अतिक्रमण करता प्रतीत होता है किन्तु यदि विचार–

---

१—माडन में काव्य सस्कृति और दशन, प्र० स० पृ १४३–१४४।

पूवक देखा जाये तो वहां भी उसमे पर्याप्त औचित्य प्रतीत हो गा। राम शील, सदाचार एव धम के मूर्तिमान् रूप अथवा पूर्ण धमस्वरूप हैं। उनका विरोध अथवा उनके प्रति अन्याय एक प्रकार से धम का विरोध एव अधम है। लक्ष्मण विश्व-मगल-विधायिनी समस्त मानव वृत्तियो के सौन्दय का उद्घाटन करने वाले कुसुम से भी कोमल तथा वज्र से भी कठोर हृदय के व्यक्ति हैं। पूर्ण धमरूप राम के अनुगामी होकर वे एक प्रकार से धम के ही अनुगामी हैं और राम के प्रति अन्याय होते देखकर रोषानल से प्रलयकर रूप धारण करके वे एक प्रकार से धम रक्षा, न्याय रक्षा एव अन्याय निवारण का ही प्रयत्न करते हैं, स्वाथ-साधन अथवा अपने विलास के उपकरण जुटाने के लिए नही। अत ऐसी स्थिति मे उनका क्रोध भी धम रक्षा विधायक एव अन्याय निरोधक होने के कारण दिव्य सौन्दय मण्डित एव स्पृहणीय है। पाण्डव-पत्नी द्रौपदी की लज्जाहरण के अवसर पर महामना भीष्म आदि का अक्रोध कितना गर्हित था यह कदाचित् कहने की आवश्यकता नही। मानव मात्र की सम्पूर्ण वृत्तिया के सौन्दय के समथक कुरुक्षेत्रकार श्री रामधारी सिंह "दिनकर" ने इस तथ्य की कमनीय कल्पना की है —

> धिक्-धिक् मुझे हुई उत्पीडित
> सम्मुख राज वधूटी,
> आँखों के आगे अबला की
> लाज खलों ने लूटी।
> और रहा जीवित मैं धरणी,
> फटी न दिग्गज डोला,
> गिरा न कोई वज्र, न अम्बर
> गरज क्रोध में बोला।"[1]

कहने की आवश्यकता नहीं कि विश्वमगल विधायक वृत्ति-व्यापार, चाहे वे सहिष्णुता, क्षमा एव विनम्रता हों चाहे उग्रता, कठोरता अकरुणा एव क्रोध, धम के अगोपांग तथा दिव्य सौन्दय मण्डित एव स्पृहणीय हैं, त्याज्य अथवा उपेक्ष्य नहीं। साकेतकार के लक्ष्मण का क्रोध भी इसीलिए कमनीय एव अभिनन्दनीय है क्योंकि उसका मूल प्रेरक भाव करुणा दया, धम रक्षा एव अन्याय निवारण है किसी प्रकार का स्वाथ-साधन नहीं।

दूसरा आक्षेप, जो लक्ष्मण के नायकत्व मे बाधक है यह है कि व राम के अनुज एवं अनुगामी हैं, उनकी इच्छा के विरुद्ध वे कोई काय नहीं कर सकते किन्तु इस

१–रामधारीसिंह "दिनकर", कुरुक्षेत्र, प्र० स०, पृ० ६३।

विषय मे ध्यानपूर्वक विचार करने से विदित होगा कि लक्ष्मण की महत्ता एव उनका नायकत्व इसी म है कि वे अपने अग्रज राम के आदेश के अनुसार ही कोई काय करें। नायकत्व के लिए यह आवश्यक नहीं कि नायक अपने माता पिता गुरुजनों अथवा अग्रजादि की उपेक्षा करके ही कोई महान् काय करे। वाल्मीकि रामायण और राम चरितमानस के नायक राम की महत्ता भी उनकी विनम्रता एव गुरुजनों के आदेश पालन मे ही है उनकी उपस्थिति में उन्हें बोलने में भी सकोचानुभव होता है। फिर भी वे उक्त महाकाव्यों के नायक हैं। नायकत्व का निणय वस्तुत इस आधार पर नहीं किया जा सकता। राम अग्रज हैं, अत उनके अनुयायी होकर भी लक्ष्मण अपने गुणों के कारण 'साकेत' के नायक हैं, औपचारिक ही नहीं, वास्तविक नायक हैं। उनकी भ्रातृ भक्ति, सेवाशीलता, त्याग, तप पावनता, निमलता निश्छलता, शील शक्ति सौंदय, वीरता पत्नी प्रेम एव एकपत्नीत्व, उदारता, निस्पृहता आदि गुणो का पु जीभूत सौंदय उन्हे बरबस ही अध्येताओं के श्रद्धापूण आकषण का पात्र बनाकर नायक पद पर आसीन कर देता है।

राम विभिन्न आदर्शों के पु जीभूत रूप, विश्वात्मा एव पूण ब्रह्म के अवतार हैं, अत उनकी महत्ता निर्विवाद है। वे "साकेत" के नायक पद से परे हैं उन्हे उसकी आवश्यकता नहीं। उन्होने एक प्रकार से उसे अपने सर्वाधिक प्रिय अनुज के लिए छोड दिया है। यही कारण है कि कवि ने न तो उन्हें 'साकेत' के आरम्भ मे उपस्थित किया है और न अन्त में न तो रावण वध की घटना को महत्त्व दिया है और न राम के राज्यारोहण अथवा सुशासन को। नायक लक्ष्मण और नायिका उर्मिला है अत उन्हीं के मिलन, विरह तथा वियोगान्त एव पुनर्मिलन को महत्त्व दिया गया है। यही नही रावण–वध के स्थान पर नायक लक्ष्मण के महत्त्व को प्रदर्शित करने के लिए मेघनाद वध पर ही विशेष बल दिया गया है। इसके अतिरिक्त लक्ष्मण की वीरता एव शक्ति के प्रदशन के लिए उनसे यह भी कहलाया गया है —

'हाय नाथ! विश्राम? शत्रु अब भी है जीता<br>
कारागृह मे पडी हमारी देवी सीता।<br>
जब तक रहा अचेत अवश था आप पडा मैं,<br>
अब सचेत हूँ और स्वस्थ सन्नद्ध खडा मैं।<br>
बीत गई यदि अवधि भरत की क्या गति होगी?<br>
धरे तुम्हारा ध्यान एक युग से जो योगी।<br>
माताएँ निज अन्त दृष्टि भरने को बैठी,<br>
पुरकन्याएँ कुसुम वृष्टि करने को बैठीं।<br>
आप अयोध्या जायँ युद्ध करने मैं जाऊँ<br>
पहले पहुचे आप और मैं पीछे आऊँ।

अन्य पात्रों के चरित्र चित्रण मे भी साकेतकार का तद्‌विषयक कौशल प्रशसनीय है। भरत, शत्रुघ्न दशरथ सीता, सुमित्रा, कौसल्या श्रुतिकीर्ति सुमन्त्र, वसिष्ठ एव निषादराज की चरित्र रेखायें भी स्पष्ट उभरी हैं। भरत के चरित्र चित्रण में कवि का कौशल स्पष्ट द्रष्टव्य है। उनकी महत्ता अपरिमेय है जिसे उनकी माता कैकेयी भी नही समझती। उनमे गुण ही गुण हैं, दोष एक भी नही। उनका भ्रातृ प्रेम अगाध एव अकथनीय है। उनकी आत्म-ग्लानि एव पश्चात्ताप समग्र विश्व म अपना सानी नहीं रखता। उनका यह कथन उनके जसे महान् व्यक्तित्व के ही अनुरूप है —

नील से मुहँ पोत मेरा सव<br>
कर रही वात्सल्य का तू गव।<br>
खर मगा, वाहन वही अनुरूप,<br>
देख लें सब—है यही वहभूप।<br>
राज्य क्यों मां, राज्य केवल राज्य ?<br>
न्याय धर्म-स्नेह, तीनो त्याज्य !<br>
सब करें अब से भरत की भीति,<br>
राजमाता केकयी की नीति—<br>
स्वाथ ही ध्रुव धर्म हो सब ठौर !<br>
क्यों न मां? भाई, न बाप, न और !<br>
आज मैं हूँ कोसलाधिप धन्य<br>
गा, विरुद गा, कौन मुझ सा अन्य ?<br>
कौन हा! मुझ-सा पतित अतिपाप ?<br>
हो गया वर ही जिसे अभिशाप ![1]

राम-वन-गमन एव दशरथ मरण का मूल कारण वे स्वय अपने को मानकर अपने जीवन को धिक्कारते हैं। इस विषय में माता कौशल्या क प्रति उनका यह कथन उनकी सात्विक हृदयता का परिचायक है —

'तुम कहाँ हो अम्ब, दीना अम्ब<br>
पति-विहीना, पुत्र हीना अम्ब !<br>
भरत—अपराधी भरत—है प्राप्त,<br>
दो उस आदेश अपना आप्त।<br>
आज मां, मुझ-सा अधम है कौन ?<br>
मुहँ न देखा, पर न हा! तुम मौन।<br>
प्राप्त है यह राज्यहारी चार,

१—साकेत सप्तम सग, पृ० १३८।

दूर से षड्यन्त्रकारी घोर ।
आ गया मैं— गृहकलह का मूल,
दण्ड दो, पर दो पदों की धूल ।[1]

उनकी महत्ता को कौशल्या एवं राम भली भाँति समझते हैं । कौशल्या उन्हें राम से भिन्न नही मानती । उनके लिए राम और भरत मे नाम के अतिरिक्त और कोई भेद नहीं —

'वत्स रे आ जा, जुडा यह अक ,
भानुकुल के निष्कलक मयक ?
मिल गया मेरा मुझे तू राम,
तू वही है भिन्न केवल नाम ।
एक सुहृदय, और एक सुगात्र,
एक सोने के बने दो पात्र ।
अग्रजानुज मात्र का है भेद
पुत्र मेरे, कर न मन मे खेद ।[2]

चित्रकूट में उनकी महत्ता से समस्त सभा अभिभूत होकर धन्य धन्य कह उठती है, राम के नेत्रो मे आनन्दाश्रु उमड पडत हैं और आर्या सीता उन्हें अपने अग्रज से भी अधिक सुयश प्राप्ति का आशीर्वाद दती हैं —

'रे भाई तूने रुला दिया मुझको भी,
शका थी तुझसे यही अपूर्व अलोभी !
था यही अभीप्सित तुझे अरे अनुरागी,
तेरी आर्या के वचन सिद्ध हैं त्यागी ।[3]

तथा

मैं अम्बा सम आशीष तुम्हे दूँ, आओ,
निज अग्रज से भी शुभ्र सुयश तुम पाओ ।[4]

अगाध भ्रातृ भक्ति, निस्पहृता, विनम्रता, निरभिमान, सदाशयता सात्विकता आदि गुण उनमे चरम सीमा को पहुँचे हुए हैं । राम के किसी भी प्रकार वन से न लौटने पर उनकी चरण पादुकाओ को राज्यसिहासन पर अधिष्ठित करने की उत्कण्ठा से प्रेरित उनकी यह याचना उनके विभिन्न गुणों की परिचायिका है —

१—साकेत सप्तम सग पृ० १४३ ।
२—वही, वही पृ० १४४ ।
३—वही, अष्टम सग पृ० १६१ ।
४—वही वही पृ० १६० ।

हे देव भार के लिए नही रोता हूँ,
इन चरणों पर ही मैं अधीर होता हूँ।
प्रिय रहा तुम्हे यह दयाधर्म्लक्षण तो,
वर लेंगी प्रभु पादुका राज्य रक्षण तो ।
तो जसी अ ज्ञा आय सुखी हो वन म,
जूझेगा दुख से दास उदास भवन म ।
बस, मिलें पादुका मुझ उन्हे ले जाऊ
बच उनक बल पर, अवधि-पारे मैं पाऊँ ।
हो जाय अवधि-मय अवध अयोध्या अब स ।
मुख खोल नाथ कुछ बोल सकूँ मैं सब से ।[1]

इसके अतिरिक्त उनके बल-विक्रम एव शक्ति-सामर्थ्य तेजोत्साह एव वीरदर्प पितृ भक्ति एव भ्रातृ भाव कुटुम्ब प्रेम एव समदृष्टि तथा त्याग, तप एव वैराग्य आदि गुण भी अपनी पराकाष्ठा को पहुँचे हुए दृष्टिगोचर होते हैं पर उनकी ओर कवि ने केवल सकेत किया है, उनका सविस्तर उल्लेख नही यद्यपि सतक अध्येता के लिए वे स्पष्ट हैं।

राम सीता के प्रति भक्ति भाव क कारण कवि ने सीता के चरित्र को भी पर्याप्त महत्त्व दिया है । उसका उद्देश्य यद्यपि उन्हे नायिका पद पर प्रतिष्ठित करना नहीं है तथापि उसने उनकी महत्ता को अक्षुण्ण रखा है । उनम यद्यपि आधुनिकता की छाप है तथापि इससे उनके सती साध्वी एव पतिप्राणा नारी रूप पर कोई आंच नही आने पाई है । कवि का ध्येय यद्यपि नायिका उर्मिला के प्रवत्स्यत् एव प्रोषितपतिका रूप का चित्रण करना रहा है तथापि उसने सीता की चरित्रगत विशषताओं पर भी पर्याप्त प्रकाश डालकर उनके व्यक्तित्व को भी यथाशक्ति उभारने का प्रयत्न किया है । उनके विभिन्न गुणान्श एव वत्ति व्यापार उनकी महत्ता के अभिव्यजक हैं । उनका बाह्य सौन्दय उनके अ त करण की उज्ज्वलता का द्योतक है । उनका स्वावलम्ब आत्म तोष एव हास्य विनोदशील व्यक्तित्व गुप्त जी की महती पात्र सृजनकर्त्री कल्पना का परिचायक है ।

दशरथ, शत्रुघ्न कौशल्या तथा सुमित्रा के चरित्र भी अपनी निजी विशेषताओं से सयुक्त हैं। दशरथ ममतालु पिता तथा विभिन्न गुणों के आगार हैं।[2] शत्रुघ्न

---

१– साकेत, अष्टम सग पृ० १६१ ।

२– दर्शी रिगालो के गुण केन्द्र
धन्य हैं दशरथ मही-महेन्द्र ।
——वही, द्वितीय सग, पृ० ३२ ।

अध्यवसायी, चतुर सेना नायक कुशल प्रशासक एव प्रबन्धक आज्ञाकारी भ्राता तथा अतुल पराक्रमशाली धीर वीर एव साहसी पुरुष रत्न हैं। कौशल्या उदार हृदया माता हैं जिनमे धैर्य, गाम्भीर्य, सहिष्णुता, पावनता, शालीनता एव वात्सल्य अपनी परा काष्ठा को पहुँच गए हैं।[१] राम की माता होकर भी उनके हृदय मे भरत लक्ष्मण एव शत्रुघ्न सभी के प्रति समान प्रेम है किसी के लिए कोई भेद भाव नही। अपने परम प्रिय पुत्र राम की अनिष्टकारिणी कैकेयी के पुत्र भरत और राम म वे कोई भेद नही करती —

वत्स रे आ जा, जुडा यह अक,
भानुकुल के निष्कलक मयक ?
मिल गया मेरा मुझे तू राम,
तू वही है, भिन्न केवल नाम।
एक सुहृदय और एक सुगात्र,
एक सोने के बने दो पात्र।
अग्रजानुज मात्र का है भेद,
पुत्र मरे, कर न मन मे खेद।
केकयी ने कर भरत का माह,
क्या किया ऐसा बडा विद्रोह ?
भर गई फिर आज मेरी गोद,
आ, मुझे दे राम का-सा मोद।[२]

सुमित्रा धय, वात्सल्य दृढता कठोरता एव साहस की प्रतिमूर्ति हैं। उनका वास्तविक वीरागना रूप अत्याचार एव अन्याय के प्रतिकार के लिए सदव सन्नद्ध रहता है। त्याग एव सहिष्णुता की वे आगार हैं —

'नही नही, यह कभी नहा दन्य विषय बस रहे यही।"
+ + + + + +
सिंही सदृश क्षत्रियाणी, गरजी फिर वह यह वाणी—
स्वत्वो की भिक्षा कसी ? दूर रहे इच्छा ऐसी।

---

१— सुख से सद्य स्नान किए पीताम्बर परिधान किए
पवित्रता म पगी हुई, देवार्चन मे लगी हुई
मूर्तिमयी ममता माया, कौसल्या कोमलकाया,
थीं अतिशय आनन्दयुता पास खडी थीं जनकसुता।
—साकेत, चतुर्थ सर्ग, पृ० ७२।

२— वही, सप्तम सर्ग, पृ० १४४।

उर में अपना रक्त बहे, आय भाव उद्दीप्त रहे।
पाकर यशोचित शिक्षा—माँगेंगी हम क्यों भिक्षा ?
प्राप्य याचना वर्जित है, धार भुजों से अर्जित है।
हम पर-भाग नहीं लेंगी, अपना त्याग नहीं देंगी।
वीर न अपना दत हैं, न य और का मते हैं।[1]

माण्डवी एवं श्रुतिकीर्ति के चरित्र को यद्यपि साकेतकार ने स्थानाभाव के कारण अधिक उभारा नहीं है तथापि उनके चरित्र की रेखाओं का अनुमान किया जा सकता है। गौण होने के कारण यद्यपि उन्हें अधिक स्थान नहीं मिला तथापि उनके विषय में आये हुए उल्लेखों से स्पष्ट है कि वे अपनी भगिनी सीता एवं उर्मिला के समान ही विभिन्न गुणों की आगार हैं।

विरोधी पुरुष पात्रों में रावण, मेघनाद एवं कुम्भकर्ण के चरित्रों की रेखाएँ भी यथाशक्ति उभारी गई हैं। रावण धूर्त, मायावी, प्रवंचक एवं अत्याचारी तथा अनाचारी होते हुए भी सहृदय वीर एवं अतुल पराक्रमी है। मेघनाद अपनी पाशव वृत्तियों में पराकाष्ठा को पहुँच कर भी अतुलित बलशाली निर्भीक, साहसी एवं यज्ञादि कर्मों में आस्था रखने वाला वीर पुरुष है। कुम्भकर्ण अपने अग्रज रावण का अनुगत" तथा निद्रा एवं युद्ध का प्रेमी तथा आत्माभिमानी महावीर है —

वज्रदन्त, धूम्राक्ष नहीं मैं, नहीं अकम्पन और प्रहस्त,
राम, सूर्य-सम होकर भी तुम समझो मुझको अपना अस्त।[2]

अन्य गौण पात्रों में विभीषण सुग्रीव हनुमान् सुमन्त्र निषादराज तथा मथरा आदि हैं जिनके चरित्र की रेखाओं को भी कवि ने यथाशक्ति उभारने का प्रयत्न किया है यद्यपि प्रधान न होने के कारण उनका चरित्रांकन उसका अभीष्ट नहीं है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि पात्र सृजनकर्त्री कल्पना एवं चरित्र चित्रण क्षमता की दृष्टि से साकेतकार का प्रयास प्रशंसनीय है और इस दृष्टि से साकेत के महाकाव्यत्व में कोई संदेह नहीं किया जा सकता।

### ७—महती काव्य प्रतिभा एवं अनवरुद्ध रसवत्ता

साकेतकार की काव्य प्रतिभा एवं रसवत्ता उसकी महत्ता का प्रमुख आधार स्तम्भ है। उसमें यद्यपि यत्र-तत्र शिथिल तुकबन्दी एवं नीरस काव्य पंक्तियाँ हैं

---

१— साकेत, चतुर्थ सर्ग, पृ० ७५-७६।
२—वही, एकादश सर्ग, पृ० २६२।

तथापि उसमें काव्योत्कर्ष–विधायक प्रसाधनों एवं उपकरणों का भी अभाव नहीं है। यदि एक ओर उसका भावपक्ष पर्याप्त सबल एवं पुष्ट है तो दूसरी ओर उसका कलापक्ष यदि एक ओर उसमें भावों एवं रसों का अनवरुद्ध प्रवाह तथा रसात्मकता की हृदयहारी योजना है तो दूसरी ओर उसमें कला पक्ष के उत्कर्ष विधायक विभिन्न उपकरणों का सुष्ठु विधान। अतः आवश्यक है कि उसके महाकाव्यत्व के निर्धारण से पूर्व उसके काव्य वैभव का संक्षिप्त आकलन किया जाए।

## भाव पक्ष

जैसा कि कहा जा चुका है, साकेत के भाव पक्ष पर्याप्त सबल एवं पुष्ट है। उसका उद्देश्य साध्वी उर्मिला के त्याग, तप एवं वियोगजन्य परिताप का महत्वगान है। अतः उसकी अन्तर्वर्ती धारा शृंगार और विशेषकर विप्रलम्भ की है और उसका काव्य-पट उसी के बहुरंगी एवं चित्ताकर्षक बेल-बूटा से सुसज्जित है। उसकी विभिन्न स्थितियों एवं अन्तर्दशाओं की मार्मिक कल्पना रूपी कमख्वाब से उसका मूल्य और भी बढ़ गया है। उसमें नायिका उर्मिला के वियुक्त जीवन की एकादश दशाओं की ही नहीं न जाने कितनी दशाओं एवं अन्तर्दशाओं की कुशल अभिव्यक्ति है। यही नहीं, उसके वियुक्त जीवन का चित्रण शून्य भीति पर चित्र रचना के समान प्रतीत न हो, इसके लिए कवि ने प्रथम सर्ग में उसके आनन्दोल्लासपूर्ण संयुक्त जीवन का भी पर्याप्त मार्मिक एवं रसात्मक चित्रण किया है। अधोंकित पंक्तियाँ इस विषय में द्रष्टव्य हैं —

> प्रीति से आवेग मानो आ मिला,
> और हार्दिक हास आँखों में खिला।
> मुस्करा कर अमृत बरसाती हुई,
> रसिकता में सुरस सरसाती हुई,
> उर्मिला बोली 'अजी, तुम जग गये?
> स्वप्न निधि से नयन कब से लग गये?
> 'मोहिनी ने मन्त्र पढ़ जब से छुआ
> जागरण रुचिकर तुम्हें जब से हुआ!'
> गत हुई संलाप में बहु रात थी,
> प्रथम उठने की परस्पर बात थी।
> 'जागरण है स्वप्न से अच्छा कहीं?'
> प्रेम में कुछ भी बुरा होता नहीं।
> प्रेम की यह रुचि विचित्र सराहिए,
> योग्यता क्या कुछ न होनी चाहिए?

'धन्य है प्यारी, तुम्हारी योग्यता,
मोहिनी-सी मूर्ति, मंजु मनोज्ञता।
धन्य जो इस योग्यता के पास हूँ
किन्तु मैं भी तो तुम्हारा दास हूँ।'
'दास बनने का बहाना किसलिए ?
क्या मुझे दासी कहाना, इसलिए ?
देव होकर तुम सदा मेरे रहो
और देवी ही मुझे रक्खो, अहो !
उर्मिला यह कह तनिक चुप हो रही
तब कहा सौमित्रि ने कि 'यही सही।
तुम रहो मेरी हृदय-देवी सदा,
मैं तुम्हारा हूँ प्रणय सेवी सदा।'[1]

उक्त अवतरण में उर्मिला एवं लक्ष्मण दोनों ही आलम्बन एवं आश्रय दोनों हैं। यदि लक्ष्मण आश्रय हैं तो उर्मिला आलम्बन और यदि उर्मिला आश्रय है तो लक्ष्मण आलम्बन। अतः दोनों ही स्थितियों पर विचार करना होगा।

१—स्थायीभाव रति है। लक्ष्मण आश्रय हैं, उर्मिला आलम्बन। उर्मिला का रूपलावण्य तथा उसकी सरस स्मिति, वक्रोक्तियाँ एवं शृंगार चेष्टाएँ आलम्बनगत उद्दीपन हैं और एकान्त स्थल एवं सुरम्य प्रासाद बाह्य उद्दीपन। लक्ष्मण द्वारा उर्मिला के रूपोत्कर्ष की प्रशंसा तथा उसके दास होने का उल्लेख कायिक अनुभाव हैं और हास्य गर्व, वितर्क चपलता आदि संचारी भाव। इस प्रकार विभावों, अनुभावों एवं संचारी भावों से पुष्ट रति स्थायी के परिपक्वावस्था को पहुँचने से संयोग शृंगार की जो मार्मिक योजना हुई है, वह साकेतकार की तद्विषयक क्षमता की परिचायिका है।

२—यदि उर्मिला आश्रय है तो लक्ष्मण आलम्बन। स्थायी भाव रति है लक्ष्मण का रूप वैभव तथा उनकी प्रणयोक्तियाँ आलम्बनगत उद्दीपन हैं और भव्य प्रासाद, सुरम्य परिवेश, एकान्त स्थल, लुभावनी ऋतु आदि बाह्य उद्दीपन। 'उर्मिला की प्रणयोक्ति देव होकर तुम सदा मेरे रहो' तथा चुप रहने से व्यंजित स्तम्भ अनुभाव हैं और उसका चापल्य, गर्व, हर्ष एवं वितर्क संचारी। इस प्रकार विभाव, अनुभाव एवं संचारियों से पुष्ट रति स्थायी के परिपक्वावस्था को पहुँचने से संयोग शृंगार की मार्मिक सृष्टि हुई है, यह कदाचित् कहने की आवश्यकता नहीं।

---

१—साकेत, प्रथम सर्ग, पृ० २१-२२।

इसी प्रकार निम्नांकित अवतरण में शृंगार रस की प्रभूत सामग्री वर्तमान है —

> मंजरी-सी अँगुलियों में यह कला,
> देख कर मैं क्यों न सुध भूलूँ भला ?
> क्यों न अब मैं मत्त गज सा झूम लूँ ?
> कर कमल लाओ तुम्हारा चूम लूँ !'
> कर बढ़ा कर, जो कमल-सा था खिला
> मुस्कराई और बोली उर्मिला—
> "मत्त गज बन कर विवेक न छोड़ना,
> कर कमल कह कर न मेरा तोड़ना !"
> वचन सुन सौमित्रि लज्जित हो गये
> प्रेम-सागर में निमज्जित हो गये।
> पकड़ कर सहसा प्रिया का कर वहीं,
> चूम कर फिर फिर उसे बोले यहीं—
> "एक भी उपमा तुम्हें भाती नहीं,
> ठीक भी है वह तुम्हें पाती नहीं।
> सजग अब इससे रहूँगा मैं सदा,
> अनुपमा तुमको कहूँगा मैं सदा !'

यहाँ लक्ष्मण आश्रय हैं, उर्मिला आलम्बन। स्थायीभाव रति है। उर्मिला का अप्रतिम-अक्लुष सौन्दर्य एवं चित्र-रचना-कौशल तथा वक्रतापूर्ण स्मिति, चपलतापूर्ण कथन आदि शृंगार-चेष्टायें आलम्बनगत उद्दीपन हैं और भव्य-मनोरम प्रासाद कक्ष, एकान्त स्थान, सुखद समय एवं मादक ऋतु बाह्य उद्दीपन। लक्ष्मण की प्रणयोक्तियाँ चेष्टायें एवं उनके प्रणय व्यापार अनुभाव हैं और लज्जा स्मिति, धैर्य वितर्क मद आवेग जड़ता आदि संचारी। इस प्रकार विभावानुभाव एवं संचारियों से पुष्ट स्थायीभाव रति परिपक्वावस्था को पहुँचकर संयोग शृंगार की मनोरम झाँकी प्रस्तुत कर रहा है।

इसके विपरीत यदि उर्मिला आश्रय है तो लक्ष्मण आलम्बन। स्थायीभाव रति है। लक्ष्मण का रूप लावण्य तथा उनके प्रणय व्यापार-उर्मिला की प्रशंसा, प्रणयोक्तियाँ हस्त चुम्बन आदि आलम्बनगत उद्दीपन हैं और एकांत प्रासाद-कक्ष, उन्मादक उषाकाल, उद्दीपक वसन्त ऋतु आदि बाह्य उद्दीपन। उर्मिला का

१—साकेत प्रथम सर्ग, पृ० २८।

मुसकराना, कर बढ़ाना तथा उसकी वक्रोक्तियाँ अनुभाव हैं और चपलता, हर्ष, गर्व, वितर्क आदि संचारी भाव। इस प्रकार विभावानुभाव एवं संचारियों से संपुष्ट रति के परिपक्वावस्था पर पहुँचने से उत्कृष्ट संयोग शृंगार की योजना हुई है।

वियोग शृंगार की दृष्टि से तो साकेतकार का कौशल और भी अधिक स्पृहणीय है। नवम एवं दशम सर्ग तो वियोग विह्वला उर्मिला की व्यथा की तड़पन से सिसकते हैं ही, सम्पूर्ण महाकाव्य ही उसके व्यथित पीड़ित हृदय की कराह से गुञ्जायमान है। समग्र कथानक के अन्तराल में उसी के पीड़ित हृदय की वेदना धारा प्रवहमान है और समग्र विषय वस्तु का विराट् प्रासाद उसी की गम्भीर सुदृढ़ नींव पर अधिष्ठित है। यही नहीं, उसके संयोगकाल की मनोरम झाँकी की सृष्टि भी उसी के पृष्ठपोषण के लिए हुई है।

अवधि शिला के गुरु भार से आक्रान्ता उर्मिला अपनी निरन्तर प्रवहमान दृग जल धारा से उसे किस प्रकार तिल तिल काटकर उससे त्राण पाती है, इसका विशद चित्रण साकेत की महती विशेषता है। सम्पूर्ण नवम सर्ग उसके वियोग विह्वल जीवन की करुण कहानी से आपूर्ण है। निम्नांकित स्थल इस विषय में द्रष्टव्य है —

> भूल अवधि सुध प्रिय से कहती जगती हुई कभी— आओ।
> किन्तु कभी सोती तो उठती वह चौंक बोल कर— जाओ।
> मानस-मन्दिर में सती पति की प्रतिमा थाप
> जलती-सी उस विरह में बनी आरती आप।
> आँखों में प्रिय-मूर्ति थी, भूले थे सब भोग
> हुआ योग से भी अधिक उसका विषम वियोग।
> आठ पहर चौंसठ घड़ी स्वामी का ही ध्यान
> छूट गया पीछे स्वयं उससे आत्मज्ञान।[1]

तथा

> त्वरित आरती ला उतार लूँ,
> पद दृगम्बु से मैं पखार लूँ।
> चरण हैं भरे देख धूल से
> विरह-सिन्धु में प्राप्त कूल से।
> विकट क्या जटाजूट है बना
> भृकुटि युग्म चाप सा तना।
> \+ \+ \+ —
> प्रिय, प्रविष्ट हो द्वार मुक्त है,

---

१— साकेत, नवम सर्ग, पृ० १६५।

मिलन योग तो नित्य युक्त है।
तुम महान हो और हीन मैं,
तदपि, धूलि सी अंघ्रि लीन मैं।
दयित देखते देव भक्ति को
निरखते नहीं नाथ व्यक्ति को।
तुम बड़े, बने और भी बड़े,
तदपि ऊर्मिला-भाग में पड़े।
अब नहीं रही दीन मैं कमी,
तुम मुझे मिले तो मिला सभी।
प्रभु कहाँ, कहाँ किन्तु अग्रजा,
कि जिनके लिए था मुझे तजा?
वह नहीं फिरे क्या तुम्हीं फिरे?
हम गिरे अहो! तो गिरे, गिरे।
\+ \+ \+ \+
समय है अभी, हा! फिरो, फिरो,
तुम न यों यश-स्वर्ग से गिरो।
\+ \+ \+ \+
धिक्! तथापि हो सामने खड़े?
तुम अलज्ज-से क्या यहाँ अड़े?
जिधर पीठ दे दीठ फेरती,
उधर मैं तुम्हें ढीठ हेरती!
तुम मिलो मुझे धर्म छोड़ के,
फिर मरूँ न क्यों मुण्ड फोड़ के?[1]

उक्त अवतरणों का बीज भाव रति स्थायी है। वियोगदग्धा प्रोषितपतिका उर्मिला आश्रय है और लक्ष्मण आलम्बन।

प्रथम अवतरण में उर्मिला द्वारा प्रिय लक्ष्मण का निरन्तर ध्यान, मानस मन्दिर में प्रतिष्ठित उनकी प्रतिमा तथा सतत स्मरण के परिणाम स्वरूप उनके प्रत्यक्षायमान होने का विभ्रम आदि उद्दीपन हैं और जाग्रतावस्था में वियोगावधि का विस्मरण तथा उनका स्वागत और सुषुप्तावस्था में चौंककर उनसे प्रत्यागमन का आग्रह एवं आत्मज्ञानविहीनता के कथन द्वारा व्यंजित स्तम्भ, प्रलय आदि अनुभाव हैं और जड़ता मोह स्वप्न, अपस्मार, निद्रा औत्सुक्य, उन्माद आदि संचारी।

---

१ साकेत, नवम सर्ग पृ० २४२-२४४।

द्वितीय अवतरण, म उर्मिला द्वारा अपने प्रिय लक्ष्मण के निरंतर ध्यान के परिणामस्वरूप स्वप्न मे उनके दर्शन तथा उसके उपरान्त जाग्रतावस्था म भी उनके प्रत्यक्षायमान होने का उसका विभ्रम आलम्बनगत उद्दीपन हैं और एकान्त स्थल सुन्दर ऋतु आदि बाह्य उद्दीपन। उर्मिला का लक्ष्मण का स्वागत करना एव उनकी आरती उतारना आदि अनुभाव हैं और स्मृति मति वितर्क, चिन्ता, आशका आदि सचारी भाव। इस प्रकार मनोवैज्ञानिक परिस्थितियो की उद्भावना द्वारा महाकाव्यकार ने उत्कृष्ट विप्रलम्भ श्रृंगार का मार्मिक रूप प्रस्तुत किया है।

इसी प्रकार निम्नांकित अवतरणों मे भी उत्कृष्ट विप्रलम्भ के मार्मिक रूपों की भव्य भाँकियाँ द्रष्टव्य हैं —

सखि, निरख नदी की धारा
ढलमल ढलमल चचल अचल झलमल झलमल तारा।

निमल जल अन्त स्तल भरके
उछल उछल कर छल छल करके
थल थल तरके कल कल धरके बिखराता है पारा!
सखि निरख नदी की धारा।

लोल लहरियाँ डोल रही हैं
भ्रू विलास रस घोल रही है,
इंगित ही म बोल रही हैं मुखरित कूल किनारा!
सखि, निरख नदी की धारा।

पाना—अब पाया—वह सागर
चली आ रही आप उजागर।
*कब तक आवेंगे निज नागर, अवधि दूतिका-द्वारा ?*
सखि, निरख नदी की धारा।

मेरी छाती दलक रही है
मानस शफरी ललक रही है,
लोचन सीमा भलक रही है, भागे नहीं सहारा!
सखि निरख नदी की धारा।[1]

तथा

कहती मैं चातकि, फिर बोल
ये खारी आँसू की बूँदें दे सकतीं यदि मोल!
कर सकते हैं क्या मोती भी उन बोलों की तोल?

---

१ साकेत, नवम सर्ग पृ० २१६।

फिर भी फिर भी इस झाड़ी के झुरमुट म रस घोल ।
श्रुति पुट लेकर पूवस्मृतियाँ खडी यहा पट खोल
देख, आप ही अरुण हुए हैं उनके पाण्डु कपाल ।
जाग उठे हैं मेरे सौ-सौ स्वप्न स्वय हिल डोल
और सन्न हो रहे, सो रहे, ये भूगोल खगोल ।
न कर वेदना सुख से वंचित बढा हृदय हिंदोल,
जो तेरे सुर म सो मेरे उर मे कल-कल्लोल । [1]

एव

निरख सखी, ये खजन आय,
फेरे उन मेरे रजन ने नयन इधर मन भाये !
फैला उनके तन का आतप, मन ने सर सरसाये,
घूम वे इस ओर वहाँ, ये हँस यहा उड छाये !
करके ध्यान आज इस जन का निश्चय वे मुसकाय,
फूल उठे हैं कमल, अधर-से ये बन्धूक सुहाये !
स्वागत, स्वागत, शरद, भाग्य से मैंने दशन पाय
नभ ने मोती वारे लो ये अश्रु अर्घ्य भर लाये ! [2]

नदी की धारा चातकी की पुकार, खजन पक्षिया का आगमन, उषाकालीन रवि-रश्मियाँ, षट ऋतुओं के उद्दीपक रूप-दृश्य एव व्यापार—वसन्त की मादक बहार वर्षा की फुहार शरद की मनुहार, ग्रीष्म का प्रचण्ड परिताप एव हृत्योद्वेलन हेमन्त शिशिर के निशीथकालीन मादक रूप आदि—उसकी विरह-वेदना को उद्दीप्त करते । फलत उसके लिए वेदना ही सब कुछ हो जाती है दद हद से गुजर कर स्वय दवा बन जाता है —

वेदने, तू भी भली बनी ।
पाई मैंने आज तुझी में अपनी चाह घनी ।
नई किरण छोडी है तूने तू वह हीर-कनी
सजग रहूँ मैं साल हृदय म ओ प्रिय-विशिख-अनी ।
ठंडी होगी देह न मेरी, रहे दृगम्बु-सनी,
तू ही उसे उष्ण रखेगी मेरी तपन-मनी !
आ, अभाव की एक आत्मजे और अदृष्ट-जनी !
तेरी ही छाती है सचमुच उपमोचितस्तनी ।
अरी वियोग समाधि अनोखी तू क्या ठीक ठनी,

१ साकेत नवम सग, पृ० २१० ।
२ वही वही पृ० २१६ २१७ ।

अपने को, प्रिय को जगती को देखूं खिंची-तनी।
मन-सा मानिक मुझे मिला है तुझमें-उपल-खनी,
तुझे तभी छोड़ूं जब सजनी पाऊं प्राण-धनी। [१]

इसी प्रकार दशम सर्ग में भी विप्रलम्भ शृंगार का मार्मिक चित्रण हुआ है। अधोंकित अवतरणों में वियोग-विह्वला ऊर्मिला की आकुल वेदना स्पष्ट प्रतिबिम्बायमान है —

जल से तट है सटा पड़ा तट के ऊपर है अटा खड़ा।
खिड़की पर ऊर्मिला खड़ी, मुंह छोटा, अंखियां बड़ी बड़ी!
कृश देह, विभा भरी भरी धृति सूखी स्मृति ही हरी हरी!
उड़ती अलकें जटाजनी बनने को प्रिय-पाद माजनी!
सजनी चुप पार्श्व से छुई, अथवा देह स्वयं द्विधा हुई!
तब बोल उठी वियोगिनी जिसके सम्मुख तुच्छ योगिनी।

\+ \+ \+ \+

निज वासर क्या न आयेंगे? दृग क्या देख उन्हें न पायेंगे?
जब लौं प्रिय लौट आयेंगे यह तारे मुंद तो न जायेंगे? [२]

तथा

अयि, शुक्तिमयी, संभाल तू रख थाती, यह अश्रु पात तू।
यदि मैं न रहूं नहीं सही प्रिय की भेंट बनें यही यही।
अथवा यह क्षीर नीर है प्रिय क्षाराब्धि तुझे गभीर है।
तब ले दृग बिन्दु क्षुद्र ये, बढ़ हो जायं स्वयं समुद्र ये।

\+ \+ \+ \+

प्रिय के पद धूल से भरे, सपरागाम्बुजता जहां धरे।
यह भी उस धूल में गिरें इनके भी दिन यों फिरें फिरें।
वह धूल स्वयं समेट लूं, तुमको तो निज फूल भेट दूं!
यश गा निज वीर-वन्श का ध्रुव-सा धीर-गभीर-वृन्द का।

टप टप गिरते थे अश्रु नीचे निशा में
झड़ झड़ पड़ते थे तुच्छ तारे दिशा में।
कर पटक रही थी निम्नगा पाट छाती,
सन सन करके थी शून्य की सांस आती!

---

१ साकेत नवम सर्ग पृ० २०१।
२ वही, दशम सर्ग पृ० २४६-२५०।

सखी ने अक म खीचा, दु खिनी पड सो रही ।
स्वप्न म हसती थी हा ! सखी थी रेख रो रही । [1]

किन्तु साकेत का भाव पक्ष अपने अगीरस श्रृ गार के निर्माणक विभिन्न अवयवो से ही नियोजित नही है, उसमे उसके पोषक एव सहायक अन्य (गौण) रसो का भी समुचित सविधान है। करुण हास्य, वीर, रौद्र, भयानक वीभत्स अद्भुत एव शा त रसों की यथोचित योजना भी उसमे यथास्थान हुई है। स्थानाभाव के कारण यहाँ उन सबका विवेचन सम्भव नही। अत एक दो उदाहरण देकर ही इस प्रसग को समाप्त किया जाता है।

## हास्य रस

सकरुण विप्रलम्भ प्रधान रचना होने के कारण साकेत म हास्य रस के लिए यद्यपि बहुत कम स्थान है तथापि कवि की कुशल तूलिका से एक-दो स्थलो पर उसका सुष्ठु विधान हुआ है। निम्नाकित अवतरण इस विषय म द्रष्टव्य है —

जावालि जरठ को हुआ मौन दु सह सा,
बोले वे स्वजटिल शीष डुला कर सहसा
ओहो ! मुझको कुछ नहीं समझ पडता है
देने को उल्टा राज्य द्वन्द्व लडता है।
पितृ-वध तक उसके लिए लोग करते हैं।"
हे मुने, राज्य पर वही मत्य मरते हैं।"
हे राम, त्याग की वस्तु नहीं वह ऐसी।"
'पर मुने भोग की भी न समझिए वैसी।"
"हे तरुण तुम्हें सकोच और भय किसका ?'
"हे जरठ, नही इस समय आपको जिसका !"
पशु-पक्षी तक हे वीर स्वार्थ लखते हैं।'
'हे धीर, किन्तु मैं पशु न आप पक्षी हैं।"
"मत की स्वतन्त्रता विशेषता आर्यों की,
निज मत के ही अनुसार क्रिया कार्यों की।
हे वत्स विफल परलोक दृष्टि निज रोको।
'पर यही लोक है तात, आप अवलोको।"
'यह भी विस्मय है, इसीलिए हू कहता।"

[1] म साग प० २६७।

'क्या ?—हम रहें, या राज्य हमारा रहना ?"
मैं कहता हूँ—सब भस्मशेष जब सोचो,
तब तुम छोड़ कर क्या न सौख्य ही भोगो ?"
'पर सौख्य कहाँ है, मुने, आप बतलावें ?'
'जनसाधारण ही जहाँ मान ले जावें ।"
'यह मानुकता है' 'हम इसी में खुश है,
फिर पर-सुख में क्यों बाधकत्व, यह दुख है ?"[1]

उक्त अवतरण में राम आश्रय है और जटिल जटाधारी वृद्ध जाबालि ऋषि आलम्बन । मुनि का अपने जटायुक्त सिर को हिलाकर बोलना तथा विरक्त होकर भी भोग एवं स्वार्थ-साधन का समर्थन करना उद्दीपन हैं । राम का बार बार उत्तर देना—'मैं पशु न आप पक्षी है' आदि कहना—अनुभाव हैं और हर्ष, चपलता उत्सुकता आदि संचारी भाव । इस प्रकार विभाव, अनुभाव और संचारियों से परिपुष्ट होकर हास्य स्थायीभाव रसावस्था को पहुँच कर अत्यधिक मार्मिक हो उठा है ।

करुण रस

बस, यहीं दीप निर्वाण हुआ, सुत विरह वायु का बाण हुआ ।
धुँधला पड गया चन्द्र ऊपर, कुछ दिखलाई न दिया भू पर ।
अति भीषण हाहाकार हुआ, सूना-सा सब संसार हुआ ।
अर्द्धांग रानियाँ शोकाहता, मूर्च्छिता हुई या अर्द्ध मृता ?
हाथों से नेत्र बन्द करके, सहसा यह दृश्य देख डरके,
हा स्वामी ! यह ऊँचे रव से, दहके सुमन्त्र मानों दव से ।
अनुचर अनाथ से रोते थे जो थे अधीर सब होते थे ।
थे भूप सभी के हितकारी सच्चे परिवार भार धारी ।[2]

उक्त अवतरण में दिवंगत दशरथ का पार्थिव शरीर आलम्बन है और रानियाँ सुमन्त्र तथा भृत्य वर्ग आश्रय । दशरथ का महान् व्यक्तित्व तथा कुटुम्ब प्रेमी, प्रजा वत्सल एवं लोकमंगलकारी रूप आदि उद्दीपन हैं । राज-परिवार रानियो, सुमन्त्र एवं अनुचरों का करुण क्रन्दन एवं हाहाकार आदि अनुभावों और स्मृति, चिन्ता मोह, विषाद जड़ता एवं व्याधि आदि संचारी भावों से परिपुष्ट होकर शोक स्थायी भाव करुण रस में परिणत हो गया है ।

इस प्रकार स्पष्ट है कि शृंगार के अतिरिक्त साकेत में अन्य रसों की भी यथोचित योजना है और इस दृष्टि से उसका काव्य वैभव पाठकों की स्पृहा का

---

१- साकेत, अष्टम सर्ग पृ० १८७-१८८ ।
२- वही षष्ठ सर्ग, पृ० १२३ ।

विषय हैं। यद्यपि कतिपय आलोचकों ने उसमें प्रकृति के मानवीकरण तथा भरत के रोष प्रकाशन के स्थलों पर रसाभास माना है पर यह उनका भ्रम है जिसका निराकरण यथास्थान किया जायेगा।

## कला पक्ष

कलापक्ष की दृष्टि से भी साकेत का काव्य वैभव सर्वथा श्लाघनीय है। अलंकरण, चित्रात्मकता, मूर्तिमत्ता, उपमान-योजना, ओज प्रसाद एवं माधुर्यादि गुणों वैदर्भी गौडी एवं पांचाली आदि रीतियों, वर्ण विन्यास, पद-पूर्वार्द्ध, पद परार्द्ध, वाक्य, प्रकरण एवं प्रबन्ध वक्रता आदि वक्रोक्ति-रूपों, प्रत्यय, नाम, गुण, लिंग, अलंकार एवं शब्द शक्तियों के विभिन्न प्रयोगों, लोकोक्तियों एवं मुहावरों के सुष्ठु सविधान तथा शब्द चयन छन्द विधान मानवीकरण, विशेषण विपर्यय ध्वनन शील शब्दों के प्रयोग चमत्कारोत्पादन के प्रसाधनों एवं प्रतीकात्मक प्रयोगों जिस किसी भी दृष्टि से देखा जाये, साकेत का कलापक्ष पर्याप्त समृद्ध है। स्पष्टीकरण के लिए किंचित् विस्तृत विवेचन की अपेक्षा है।

## अलंकार-योजना

अलंकार जिस प्रकार किसी सुन्दरी के सौन्दर्य-वर्द्धन के लिए अपेक्षित हैं, उसी प्रकार कविता कामिनी अथवा भाषा भामिनी के लिए भी। यही नहीं वे केवल उसकी साज-सज्जा के उपकरण ही नहीं भावाभिव्यक्ति के भी विशेष उपादान हैं, भाषा के पोषण, भावों के सम्प्रेषण छन्द की परिपूर्णता तथा उक्ति की चित्रात्मकता के भी योगवाही उपकरण हैं। किन्तु उनका प्रयोग उतना ही उचित है जिससे कि काव्य की स्वाभाविकता में व्याघात उपस्थित न हो। साकेतकार इस तथ्य से परिचित है। यही कारण है कि उसने उनके प्रयोग में स्वाभाविकता की सीमा का अतिक्रमण नहीं किया। उसके प्राय सभी अलंकार स्वाभाविक रूप से प्रयुक्त हुए हैं—कवि ने उन्हें जान बूझकर सप्रयास ठूँसने का प्रयत्न नहीं किया और यदि ऐसे कुछ प्रयोग हैं भी तो वे केवल अपवाद स्वरूप ही हैं कवि के सामान्य सिद्धान्त की उद्‌भूति नहीं।

स्थूलत अलंकारों के तीन भेद हैं—(१) शब्दालंकार (२) अर्थालंकार (३) शब्दार्थालंकार अथवा उभयालंकार। शब्दालंकारों में शब्द सम्बन्धी सौन्दर्य अथवा चमत्कार होता है, अर्थालंकारों में अर्थ सम्बन्धी और उभयालंकारों में [illegible]

एव भय दोनो के सौन्दर्य, अलङ्करण अथवा चमत्कार पर बल दिया जाता है। अत इन तीनो पर पृथक पृथक रूप से विचार करना होगा।

शब्दालङ्कारों का सौन्दर्य प्राय कुछ विशिष्ट वर्णों शब्दों वाक्यों अथवा वाक्यांशों की आवृत्ति अथवा योजना पर निर्भर रहता है। इनके अभाव म इस प्रकार के अलङ्कारों का अस्तित्व सम्भव नहीं। यही कारण है कि पर्यायवाची शब्द रखने से यह सौन्दर्य नष्ट हो जाता है।

शब्दालङ्कारों के प्रयोग में साकेतकार ने स्वाभाविकता का सर्वत्र ध्यान रखा है। अनुप्रास, यमक, श्लेष वक्रोक्ति पुनरुक्ति प्रकाश, वीप्सा आदि सभी प्रमुख शब्दालङ्कार उसकी अभिव्यक्ति के स्वाभाविक उपकरण हैं, उनका समावेश उसके काव्य में अनायास ही हो गया है। निम्नांकित अवतरण इस विषय म द्रष्टव्य हैं —

**वृत्ति अनुप्रास**

१–मन सा मानिक मुझे मिला है तुझमे उपल समो।[1]

२–काल कठिन क्यों न हो किन्तु है मेरे लिए उदार भी।[2]

३–मची खलबली गली गली मे लङ्कापुर की।[3]

४–भीषण भी भट मूर्ति अहा! क्या भली बनी थी।[4]

५–अस्फुट मन्त्रोच्चार कलित कूजन करता था।[5]

६–खोई अपनी हाय! कहाँ वह खिल खिल खेला?[6]

७–परिधि विहीन सुधांशु-सदृश सन्ताप विमोचन।[7]

———

१–साकेत नवम सर्ग, पृ० २०३।

२–वही द्वादश सर्ग, पृ० २०३।

३–वही, वही, पृ० ३२२।

४–वही वही वही।

५–वही द्वादश सर्ग, पृ० ३३५।

६–वही वही, पृ० ३३४।

७–वही, वही, पृ० ३०४।

८–हुआ कम्बु कनकत्य कण्ठ की अनुकृति करके ।[१]

९–तनु तडप तडप कर तप्त तात ने त्यागा ।[२]

छेक अनुप्रास

१–वश वश को देते हैं जो वृद्धि, विभव, सन्तोष ।[३]

२–सृष्टि दृष्टि के अजन रजन, ताप विभजन, वरसो ।[४]

३–सरसो जीए शीए जगती के तुम नव यौवन, बरसो ।[५]

४–घूम उठे हैं शून्य मे उमड घुमड घन घोर ।[६]

५–लपट से भट रूख जले, जले,
नद–नदी घट सूख चले, चले ।
विकल वे मृग मीन मरे मरे,
विकल ये दृग दीन भरे भरे ।[७]

वीप्सा

१–साधु ! साधु ! थी मुझे यही आशा तुम सबसे—[८]

२–बरसो की मैं कसक मिटाऊँ, बलि बलि जाऊँ ।[९]

३–नही नहीं, प्राणेश मुझी से छले न जावें ।[१०]

४–"नाथ, नाथ, क्या तुम्हें सत्य ही मैंने पाया ?"
"प्रिये, प्रिये, हाँ आज–आज ही वह दिन आया ।[११]

---

१–साकेत द्वादश सर्ग, पृ० ३०४
२–वही अष्टम सर्ग पृ० १७७ ।
३–वही, नवम सर्ग पृ० २१३
४–वही वही, पृ० २१२ ।
५–वही वही पृ० २११ ।
६–वही, वही, वही ।
७–वही वही, पृ० २०८ ।
८–वही, द्वादश सर्ग, पृ० ३१२ ।
९–वही, वही पृ ३३२ ।
१०–वही वही वही ।
११–वही, वही, पृ० ३३४ ।

५–'बहू, बहू, बेटी, बड़े दुख पाये तूने।'[1]
६–स्वामी स्वामी जन्म जन्म के स्वामी मेरे!'[2]
७–'हाय! आर्य, रहिए रहिये, मत कहिए, यह मत कहिए।'[3]
८–बहन! बहन! कहकर सीता करने लगी व्यजन सीता।'[4]

पुनरुक्ति प्रकाश

१–निर्मल जल अन्तःस्तल भरके,
उछल उछल कर छल छल करके
थल थल तरके कल कल धरके, बिखराता है पारा।[5]
२–जन जन अपने को आप निहार मुदित था।[6]
३–बो बो कर कुछ काटते सो सो कर कुछ काल
रो रो कर ही हम मरे खो खो कर स्वर-ताल।[7]
४–हिल हिल कर मिल गईं परस्पर लिपट लताएँ।[8]
५–मरते मरते बचा, इसीसे फूल गया तू।[9]
६–अहा! समाई नहीं अयोध्या फूली फूली
तब तो उसमें भीड़ समाई ऊनी ऊनी।[10]

यमक

१–नृप सम्मुख नम्र नाक था पर मध्यस्थ महा पिनाक था।
सिर मार मरे नहीं हटा न रही नाक पिनाक था डटा।[11]
२–चित्र भी था चित्र और विचित्र भी
रह गये चित्रस्थ से सौमित्र भी।[12]

————

१–साकेत द्वादश सर्ग, पृ० ३३०।
२–वही वही, पृ० ३३५।
३–वही, चतुर्थ सर्ग पृ० ८४।
४–वही वही वही।
५–वही, नवम सर्ग पृ० २१६।
६–वही, अष्टम सर्ग पृ० १६२।
७–वही नवम सर्ग पृ० २०७।
८–वही द्वादश सर्ग पृ० ३२६।
९–वही वही पृ० ३२३।
१०–वही वही पृ० ३२६।
११–वही दशम सर्ग, पृ० २६२।
१२–वही प्रथम सर्ग, पृ० २५।

**श्लेष**

१ वह सीताफल जब फल तुम्हारा चाहा,—[1]
२–उस रुग्ना विरहिणी के रुदन–रस के लेप से,
और पाकर ताप उसके प्रिय विरह विक्षेप से,
वर्ण-वर्ण सदैव जिनके हो विभूषण कर्ण के
क्या न बनते कविजनों के ताम्रपत्र सुवर्ण के ?[2]

**वक्रोक्ति**

(i) श्लेष वक्रोक्ति

पचानन के गुहा द्वार पर रक्षा किसकी ?
मैं तो हूँ विख्यात दशानन, सुध कर इसकी।'
हँस बोले प्रभु– तभी द्विगुण पशुता है तुझमें
तूने ही आखेट रंग उपजाया मुझमें।[3]

(ii) काकु वक्रोक्ति

वर्ण-वर्ण सदैव जिनके हो विभूषण कर्ण के
क्या न बनते कविजनों के ताम्रपत्र सुवर्ण के ?[4]

**मुद्रा**

करुण, क्या रोती है ? उत्तर में और अधिक तू रोई—
'मेरी विभूति है जो उसको भव भूति क्या कहे कोई।'[5]

**अर्थालंकार**

कविता कामिनी के लिए अर्थालंकारों का महत्व शब्दालंकारों की अपेक्षा कहीं अधिक है। शब्दालंकारों में शब्दगत रमणीयता के लिए कुछ विशिष्ट वर्णों शब्दों, वाक्यांशों अथवा वाक्यों की आवृत्ति होती है और यह रमणीयता कुछ विशिष्ट शब्दों पर निर्भर रहती है उनके हटा दिए जाने अथवा उनके स्थान पर उनके पर्यायवाची शब्द रख देने से वह नष्ट हो जाती है किन्तु अर्थालंकारों में अर्थगत रमणीयता की सृष्टि पर बल दिया जाता है। उसमें सौंदर्य किसी विशिष्ट

---

१–साकेत, अष्टम सर्ग पृ० १६२।
२–वही नवम सर्ग पृ० १६५।
३–वही द्वादश सर्ग पृ० ३२०–३२१।
४–वही, नवम सर्ग पृ० १६५।
५–वही, वही पृ० १६४।

शब्द पर निर्भर नहीं रहता, अत उसके स्थान पर उसका पर्यायवाची शब्द रखने पर भी उसे कोई क्षति नहीं पहुँचती।

अर्थालकारों को प्रमुखत ५ वर्गों म विभक्त किया जाता है—(१) साम्य मूलक (२) विरोधमूलक (३) शृ खलामूलक (४) न्यायमूलक (५) गूढार्थप्रतीति मूलक अथवा वस्तुमूलक। किन्तु काव्य म प्राय साम्य एव विरोधमूलक अलकारों के वर्ग के प्रमुख एव अधिक प्रचलित अलकारों का ही प्रयोग किया जाता है। साकेत भी इसका अपवाद नहीं है। अत सम्प्रति हम इन दो प्रमुख वर्गों के प्रमुख अलकारों पर ही विचार करेंगे।

## साम्यमूलक अलकार

इस वर्ग के अलकारो म दो वस्तुओं मे समता की भावना को दृष्टि म रखते हुए किसी उक्ति के सौ दय म वृद्धि की जाती है। इसे सादृश्य या साधर्म्यमूलक भी कहते हैं। काव्य के अधिकाश अलकार इस वर्ग के अ तगत आ जाते हैं, अत इसके पुन ६ उपवर्ग किये जाते हैं—(१) अभेदप्रधान (२) भेदप्रधान (३) भेदाभेदप्रधान (४) प्रतीतिप्रधान (५) गम्यप्रधान (६) अपवचिम्यप्रधान।

### १—अभेद प्रधान साम्यमूलक

इसम दो समान वस्तुए किसी प्रकार के भेद से रहित पूर्णतया एक सी वर्णित होती हैं। इसके अ तर्गत रूपक उल्लेख, स देह भ्रान्तिमान, अपह्नुति और परिणाम अलकार आते हैं। साकेतकार इनम से कतिपय क प्रयोग म बडा पटु है। उसके रूपक प्राय अ य उत्कृष्ट एव रमणीय हैं। उनमे काव्य एव चित्रकला का मणि काचन सयोग कितना स्पृहणीय है, यह कदाचित् कहने की आवश्यकता नहीं। निम्नांकित अवतरण इस विषय म द्रष्टव्य हैं —

(१) सखि, नील नभस्सर मे उतरा
यह हस अहा! तरता तरता
अब तारक मौक्तिक शेष नहीं,
निकला जिनको चरता चरता।
अपने हिम बिन्दु बचे तब भी
चलता उनको धरता धरता
गड जायँ न कण्टक भूतल के
कर डाल रहा डरता डरता।[१]

———

१—साकेत, नवम सग पृ० २०७।

(२) मेरे चपल यौवन बाल ।
अचल अंचल में पड़ा सो, मचल कर मत साल ।
\+ + + +
मन पुजारी और तन इस दुखिनी का थाल,
भेंट प्रिय के हेतु उसमें एक तू ही लाल ।[1]

(३) असुर शासन शिशिर मय हेमन्त है
पर निकट ही राम राज्य-वसन्त है ।[2]

इसी प्रकार सन्देह, भ्रान्तिमान तथा अपह्नुति की योजना भी कहीं कहीं बड़ी उत्कृष्ट एवं प्रभावोत्पादक है —

सदेह

खुल गया प्राची दिशा का द्वार है
गगन सागर में उठा क्या ज्वार है ?
पूर्व के ही भाग्य का यह भाग है
या नियति का राग पूर्ण सुहाग है ।[3]

भ्रान्तिमान

नाक का मोती अधर की कान्ति से,
बीज दाडिम का समझ कर भ्रान्ति से,
देखकर सहमा हुआ शुक मौन है,
सोचता है, अन्य शुक यह कौन है ।[4]

अपह्नुति

(क) हेत्वपह्नुति
पहले आँखों में थे, मानस में कूद मग्न प्रिय अब थे,
छींटे वही उड़े थे, बड़े बड़े अश्रु वे कब थे ?[5]

(ख) कैतवापह्नुति
पाकर विशाल कच भार एड़ियाँ धँसती,
तब नखज्योति मिष, मृदुल अंगुलियाँ हँसती ।[6]

---

१–साकेत नवम सर्ग पृ० २३७ ।
२–वही, प्रथम सर्ग, पृ० १२ ।
३–वही वही, पृ० १८ ।
४–वही वही, पृ० २१ ।
५–वही नवम सर्ग, पृ० १६५ ।
६–वही अष्टम सर्ग पृ० १५७ ।

भेदप्रधान साम्यमूलक

भेदप्रधान साम्यमूलक अलकारों में दो वस्तुओं में साम्य स्थापित करते हुए भी भिन्नता रखी जाती है। प्रतीप, तुल्ययोगिता, व्यतिरेक, दीपक, सहोक्ति, विनोक्ति, दृष्टान्त, निदर्शना और प्रतिवस्तूपमा अलकार इसके अन्तर्गत हैं। गुप्तजी यद्यपि काव्य में अलकारों की अनिवार्यता के समर्थक नहीं हैं[1] तथापि वे शब्दालंकारों की अपेक्षा अर्थालंकारों की योजना पर अधिक बल देते हैं। उन्होंने लिखा है —

'शब्दालकारों के लिए अर्थालंकारों को बिगाड़ना ठीक नहीं है।'[2]

यही कारण है कि उनके काव्य में भी अर्थालंकारों के प्रयोग की ओर कवि का अधिक झुकाव रहा है। साकेत के विषय में भी यही बात चरितार्थ प्रतीत होती है। किन्तु कवि ने उसमें उन्हीं अलंकारों का अधिक प्रयोग किया है जो काव्य के स्वाभाविक धारा प्रवाह में अनायास ही आ जाते हैं। इस वर्ग के कतिपय अलंकार भी इसी प्रकार के हैं। निम्नांकित अवतरणों में उनका प्रयोग बड़े ही स्वाभाविक एवं उत्कृष्ट रूप में हुआ है —

व्यतिरेक

स्वर्ग की तुलना उचित ही है यहाँ
किन्तु सुरसरिता कहाँ सरयू कहाँ?
वह मरों को मात्र पार उतारती
यह यहीं से जीवितों को तारती।[3]

दृष्टान्त

राम भाव अभिषेक समय जैसा रहा
बन जाते भी सहज सौम्य वैसा रहा।
वर्षा हो या ग्रीष्म सिन्धु रहता वही,
मर्यादा की सदा साक्षिणी है मही।[4]

———

१-कविता से सप्रेम कहा मैंने वर मुझको,
दूँगा मैं उपहार अलकारों के तुझको।'
बोली तब वह कि मैं चाहती हूँ क्या इनका?
—मैथिलीशरण गुप्त, मंगलघट पृ० २९७।

२ वही सरस्वती दिसम्बर १९१४ पृ० ६७८।
३ साकेत प्रथम सर्ग पृ० १४ १५।
४ वही पंचम सर्ग पृ० ८८।

**निदर्शना**

"पास पास ये उभय वृक्ष देखो, अहा !
फूल रहा है एक, दूसरा झड रहा ।"
"है ऐसी ही दशा प्रिये, नर लोक की,
कही हर्ष की बात, कही पर शोक की । [१]

**भेदाभेदप्रधान साम्यमूलक**

इस वर्ग के अलकारो मे दो वस्तुओ मे पूर्ण समता होने पर भी उन्हें एक-दूसरे से भिन्न प्रदर्शित किया जाता है—भिन्न होते हुए भी वे अभिन्न और अभिन्न होते हुए भी भिन्न प्रदर्शित की जाती हैं । उपमा, अनन्वय, उपमेयोपमा और स्मरण इसके अन्तर्गत हैं ।

साकेतकार को इस वर्ग के अलकारो मे उपमाएँ जितनी प्रिय हैं, अन्य अलकार उतने नहीं । उसकी उपमाओ के बाहुल्य, आधारगत वैविध्य औचित्य, आकर्षण एव प्रभविष्णुता से पाठक आह्लादविभोर हो उठता है, उसकी बिम्ब-निर्माण-क्षमता एव मार्मिकता का ध्यान कर कालिदास का स्मरण हो आता है और उनकी सहज स्वाभाविकता अध्येताओ के हृदय-पटल पर सदैव के लिए अकित हो जाती है । उनकी योजना कही उपमेय एव उपमान के रूप साम्य के आधार पर हुई है, कही आकार-साम्य के आधार पर, कही व्यापार-साम्य के आधार पर, कही गुण साम्य के आधार पर, कही प्रभाव-साम्य के आधार पर और कहीं अन्य किसी प्रकार के साम्य के आधार पर । निम्नाकित उदाहरण इस विषय मे द्रष्टव्य हैं —

**रूप साम्य**

(i) चमता था भूमितल को
अर्द्ध विधु सा भाल,
बिछ रहे थे प्रेम के दृग
जाल बन कर बाल । [२]

(ii) ज्योति सी सौमित्रि के सम्मुख जगी,
चित्रपट पर लेखनी चलने लगी । [३]

---

१ साकेत, पचम सर्ग, पृ० १११ ।
२ वही, प्रथम सर्ग पृ० २१ ।
३ वही वही पृ० २९ ।

आकार-साम्य

(i) छत्र-सा सिर पर उठा था
प्राणपति का हाथ,
हो रही थी प्रकृति अपने
आप पूर्ण सनाथ ।[१]

(ii) इन्द्रधनुषाकार तोरण हैं तनें ।[२]

व्यापार-साम्य

(i) मत्त करिणी-सी दल कर फूल
घूमने लगी आपको भूल ।[३]

(ii) गई शयनालय में तत्काल,
गभीरा सरिता-सी थी चाल ।[४]

(iii) दम्पती चौंके पवन मण्डल हिला
चंचला सी छिटक छूटी ऊर्मिला ।[५]

गुण-साम्य

(i) राम सीता धन्य धीराम्बर इला,
शौर्य सह सम्पत्ति, लक्ष्मण-ऊर्मिला ।
भरत कर्त्ता माण्डवी उनकी क्रिया,
कीर्ति-सी श्रुतिकीर्ति शत्रुघ्नप्रिया ।[६]

(ii) मंजरी-सी अंगुलियों में यह कला,
देख कर मैं क्यों न सुध भूलूँ भला ?[७]

प्रभाव साम्य

(i) हुआ सूर्य-सा अस्त इन्द्रजित लंकापुर का,
शून्य भाव था गगन रूप रावण के उर का ।[८]

---

१ साकेत, प्रथम सर्ग पृ० ३१ ।
२ वही, वही, पृ० १३ ।
३ वही द्वितीय सर्ग, पृ० ४० ।
४ वही, वही, पृ० ३७ ।
५ वही, प्रथम सर्ग, पृ० ३० ।
६ वही, वही, पृ० १२ ।
७ वही, वही पृ० २८ ।
८ वही, द्वादश सर्ग, पृ० ३२५ ।

समय साम्य

बीत जाता एक युग पल-सा वहाँ ।[१]

ध्वनि साम्य

सुन पड़ा पर हुए कलकल सा वहाँ ।[२]

कहने की आवश्यकता नहीं कि साम्य के उक्त आधारों का विभाजन केवल उनकी प्रधानता के आधार पर किया गया है, अत यह समझना भ्रामक होगा कि उनमें किसी अन्य प्रकार का साम्य नहीं है ।

उपमा के अतिरिक्त इस वर्ग के अन्य अलकारों का प्रयोग साकेतकार ने प्राय नहीं किया है यद्यपि पूरे ग्रन्थ में कहीं किसी के दर्शन हो जाते हैं । निम्नांकित प्रयोग इसी प्रकार का है —

अनन्वय

और इसका हृदय किससे है बना ?
वह हृदय ही है कि जिससे है बना ।[३]

प्रतीतिप्रधान साम्यमूलक

इस वर्ग के अलकारों में दो वस्तुओं में समता की प्रतीति मात्र होती है वस्तुत वह होती नहीं । उत्प्रेक्षा एव अतिशयोक्ति इस वर्ग के अन्तर्गत हैं ।

साकेत में इन दोनों ही अलकारों का पर्याप्त प्रयोग हुआ है किन्तु उसकी उत्प्रेक्षायें जितनी स्वाभाविक हैं अतिशयोक्तियाँ प्राय उतनी नहीं । इसके अतिरिक्त उसकी उत्प्रेक्षाओं में जो सरसता, मार्मिकता, वैविध्य, चित्रात्मकता एव बिम्बनिर्माण क्षमता है, वह अतिशयोक्तियों में नहीं । उदाहरणार्थ अग्रांकित अवतरण प्रस्तुत हैं —

अतिशयोक्ति

देख लो, साकेत नगरी है यही,
स्वर्ग से मिलने गगन में जा रही ।
केतु पट अचल सदृश हैं उड़ रहे
कनक कलशों पर अमर-दृग जुड़ रहे ।[४]

---

१ साकेत, प्रथम सर्ग पृ० ३० ।
२ वही, वही, वही ।
३ वही, पचम सर्ग, पृ० १६ ।
४ वही, प्रथम सर्ग, पृ० १३ ।

तथा

दामिनी भीतर दमकती है कभी,
चन्द्र की माला चमकती है कभी।[१]

उत्प्रेक्षा

(i) जान पड़ता नेत्र देख बड़े बड़े—
हीरकों में गोल नीलम हैं जड़े।
पद्मरागों से अधर मानों बने,
मोतियों से दाँत निर्मित हैं घने।[२]

(ii) वह देखो वन के अन्तराल से निकले,
मानो दो तारे क्षितिज जाल से निकले।
वे भरत और शत्रुघ्न, हमीं दो मानो,
फिर आया हमको यहाँ प्रिये तुम जानो।[३]

(iii) प्रीति से आवेग मानों आ मिला
और हार्दिक हास आँखों में खिला।[४]

(iv) अंगराग पुराङ्गनाओं के धुले,
रंग देकर नीर में जो हैं घुले,
दीखते उनसे विचित्र तरंग हैं
कोटि शक्र शरास होते भंग हैं।[५]

(v) रथ मानो एक रिक्त घन था, जल भी न था न वह गर्जन था।[६]

यही नहीं, उसकी अतिशयोक्तियों में कहीं कहीं इतनी अस्वाभाविकता है कि उन्हें देखकर रीतिकालीन कवियों का स्मरण हो आता है। निम्नांकित प्रयोग ऐसे ही हैं—

(i) जा मलयानिल लौट जा यहाँ अवधि का शाप,
लगे न लू होकर कहीं तू अपने को आप![७]

(ii) ठहर अरी इस हृदय में लगी विरह की आग,
तालवृन्त से और भी धधक उठेगी जाग![८]

---

१ साकेत, प्रथम सर्ग पृ० १३।
२ वही वही पृ० १६
३ वही अष्टम सर्ग, पृ० १७१।
४ वही प्रथम सर्ग, पृ० २१।
५ वही वही, पृ० १५।
६ वही, अष्टम सर्ग पृ० ११६।
७ वही नवम सर्ग, पृ० २२७।
८ वही, वही, पृ० २१०।

इसी प्रकार गम्यप्रधान साम्यमूलक वर्ग के अलंकारों में साकेत में अप्रस्तुत-प्रशंसा और अध्यवसितप्रधान साम्यमूलक वर्ग के अलंकारों में समासोक्ति की यत्र तत्र उत्कृष्ट योजना हुई है। उदाहरणार्थ निम्नांकित अवतरण लिए जा सकते हैं —

**अप्रस्तुतप्रशंसा**

दोनों ओर प्रेम पलता है।
सखि, पतंग भी जलता है हा! दीपक भी जलता है!

\+ \+ \+ \+

कहता है पतंग मन मारे—
तुम महान मैं लघु पर प्यारे,
क्या न मरण भी हाथ हमारे? शरण किसे छलता है?
दोनों ओर प्रेम पलता है।

दीपक के जलने में आली,
फिर भी है जीवन की लाली
किन्तु पतंग भाग्य लिपि काली किसका वश चलता है? [१]

**समासोक्ति**

सखि बिखर गईं हैं कलियां,
कहीं गया प्रिय झुकामुखी में कर के वे रँग रलियाँ?
भूला सकेंगी पुनः पवन को अब क्या इनकी गलियाँ?
यही बहुत मैं पर्चे उन्हीं में जो थीं रंगरलियाँ। [२]

**विरोधमूलक**

इस वर्ग के अलंकारों में दो वस्तुओं का कार्य कारण विच्छेदवश परस्पर विरोध प्रकट होता है। विरोधाभास विभावना, असंगति, सम विषम अधिक, अन्योन्य विशेष विचित्र व्याघात अन्यतातिशयोक्ति और विशेषोक्ति अलंकार इस वर्ग के अन्तर्गत हैं।

साकेतकार की इनमें से विरोधाभास एवं विभावना में अधिक रुचि है। यही कारण है कि साकेत में इन्हीं दोनों अलंकारों का अधिक प्रयोग हुआ है। निम्नांकित अवतरणों में इनका उत्कृष्ट प्रयोग द्रष्टव्य है —

---

१ साकेत, नवम सर्ग पृ० २०४ २०५।
२ वही वही पृ० २३१।

**विरोधाभास**

(i) राजा होकर गृही, गृही होकर सन्यासी,
प्रकट हुए प्राणश रूप घट घट के वासी ।[१]

(ii) इस उत्पल-से काय में हाय ! उपल से प्राण ?
रहने दे बक, ध्यान यह पायें मे हग त्राण ![२]

(iii) भवध को अपनाकर त्याग से,
वन तपोवन सा प्रभु ने किया ।
भरत ने उनके अनुराग से,
भवन में वन का व्रत ले लिया ![३]

(iv) कनक लतिका भी कमल सी कोमला
धन्य है उस कल्प शिल्पी की कला ![४]

(v) सखि इस कटुता मे भी मधुरस्मृति की मिठास, मैं बलिहारी ![५]

**विभावना**

सूर्य का यद्यपि नही आना हुआ,
किन्तु समझो, रात का जाना हुआ।
क्योंकि उसके अंग पीले पड चले
रम्य रत्नाभरण ढीले पड चले ।[६]

उक्त अलकारो के अतिरिक्त साकेत में मुद्रा दृष्टात, अर्थान्तरन्यास आदि अर्थालकार भी यत्र तत्र प्रयुक्त हुए हैं। साथ ही कतिपय स्थलों पर उभया लकारो का भी स्वाभाविक, चित्ताकर्षक एव उत्कृष्ट प्रयोग हुआ है। यही नहीं पाश्चात्य अलकारो मे मानवीकरण म भी साकेतकार की पर्याप्त रुचि है । यही कारण है कि उसके मानवीकरण के स्थल बडे ही स्पृहणीय एव मार्मिक हैं —

(i) वेश भूषा साज ऊषा आ गई,
मुख कमल पर मुस्कराहट छा गई।[७]

(ii) हिम कणो ने है जिसे शीतल किया,
और सौरभ ने जिसे नव बल दिया
प्रेम से पागल पवन चलने लगा,

---

१ साकेत, द्वादश सर्ग, पृ० ३२७ ।
२ वही नवम सर्ग पृ० २१७ ।
३ वही वही, पृ० १६४ ।
४ वही, प्रथम सर्ग पृ० १६ ।
५ वही, नवम सर्ग, पृ० २१० ।
६ वही प्रथम सर्ग, पृ० १७ ।
७ वही वही, वही ।

सुमन रज सर्वांग में मलने लगा।
प्यार से अंचल पसार हरा भरा
तारिकाएँ खींच लाई है धरा।
निरख रत्न हरे गये निज कोष के,
शून्य रंग दिखा रहा है रोष के।[१]

(iii) अरुण सन्ध्या को आगे ठेल
देखने को कुछ नूतन खेल
सजे विधु की बेंदी से भाल,
यामिनी आ पहुँची तत्काल।[२]

(iv) मज्जन-पूर्वक सुधा नीर से पुरी नहाई,
उस पर उसने वर्ण वर्ण की भूषा पाई।
लिख बहु स्वागत-वाक्य सुपरिचय दे रति मति का,
वासकसज्जा बनी देखती थी पथ पति का।[३]

## अप्रस्तुत-योजना

काव्य एक कला है, उसकी महत्ता उसकी कलात्मकता में है। उसके अभाव में उसका अस्तित्व सम्भव नहीं। उसके कला विधायक उपकरणों उसकी शैली शिल्पगत उद्‌भावनाओं का महत्त्व अपरिमेय है। अप्रस्तुत योजना शैली शिल्प के निर्माणक तत्त्वों में शीर्ष स्थानीय है, काव्य का प्राण है कला का मूल है और कवि की कसौटी है। यही काव्य में प्रभाव उत्पन्न करती है प्रेषणीयता लाती है भावों को विशद बनाती है और रमणीयता की वृद्धि करती है।'[४] अभिव्यक्ति उसके अभाव में शुष्क, नीरस प्रभावहीन एवं पंगु हो जाती है। यही कारण है कि कुशल कवि इस विषय में सदैव सतर्क रहता है। साकेतकार भी इसका अपवाद नहीं। अभीष्ट प्रभाव अभीष्ट चित्र एवं अभीष्ट बिम्ब निर्माण किस प्रकार के अप्रस्तुतों द्वारा सम्भव है इस तथ्य का उसने सदैव ध्यान रखा है।

स्थूलतः इन अप्रस्तुतों को दो वर्गों में विभक्त किया जा सकता है—अप्रस्तुत उपमान तथा अप्रस्तुत प्रतीक। साकेत के अप्रस्तुत उपमानों में यदि एक ओर वैविध्य है तो दूसरी ओर औचित्य एवं स्वाभाविकता यदि एक ओर उनमें अभिव्यक्ति के

---

१ साकेत, प्रथम सर्ग, पृ० १८।
२ वही द्वितीय सर्ग पृ० ४५।
३ वही द्वादश सर्ग पृ० ३२७।
४ रामदहिन मिश्र, काव्य में अप्रस्तुत योजना पृ० ७३।

(क) भरी, सुरभि जा लौट जा अपने अग सहेज,
तू है फूलों मे पली, यह काँटों की सेज ![1]

(ख) जीवन के पहले प्रभात में आँख खुली जब मेरी,
हरी भूमि के पात पात मे मैंने हृदगति हेरी।
खींच रही थी दृष्टि सृष्टि यह स्वर्ण रश्मियाँ लेकर,
पाल रही, ब्रह्माण्ड प्रकृति थी सदय हृदय मे सेकर
तृण तृण को नम सींच रहा था बूँद बूँद रस देकर,
बढा रहा था सुख की नौका समय समीरण लेकर।
बजा रहे थे द्विज दल बल से शुभ भावो की भेरी
जीवन के पहले प्रभात में आँख खुली जब मेरी।
वह जीवनमध्याह्न सखी अब श्रान्ति-क्लान्ति जो लाया
खेद और प्रस्वेद पूर्ण यह तीव्र ताप है छाया।
पाया था जो खोया हमने क्या खोकर क्या पाया ?
रह न हमम राम हमारे मिली न हमको माया।[2]

(ग) फूल और आँसू दोनो ही उठें हृदय की हूल मे,
मिलन सूत्र-सूची से कम क्या अभी विरह के शूल मे।
हगम्बु था दुकूल मे।
मधु हँसने म लवण रुदन म रहे न कोई भूल म,
मौन किन्तु मँझधार बीच है किवा है वह कूल मे ?[3]

(घ) सखे जाओ तुम हसकर भूल रहूँ मैं सुध करके रोती।
तुम्हारे हसने म हैं फूल हमारे रोने म मोती।
मानती हूँ तुम मेरे साध्य
म निश एक मात्र आराध्य

साधिका मैं भी किन्तु अबाध्य, जागती होऊँ या सोती।
तुम्हार हँसने में हैं फूल हमारे रोने म मोती ![4]

फिर भी समाख्यानात्मकता के प्राधान्य के कारण साकेत म इस प्रकार के प्रतीकों का प्रयोग विरल ही है यद्यपि इससे उसके महाकाव्यत्व म कोई न्यूनता

---

१ साकेत नवम सर्ग पृ० २०५।
२ वही वही पृ० २०० २०१।
३ वही वही पृ० २११।
४ वही, वही वही।

नहीं प्रतीत होती क्योंकि प्रबन्धकाव्य की महत्ता कथानक की स्वच्छन्द धारावाहिकता एवं प्रसाद गुण सम्पन्नता में है। प्रतीकों के प्रयोग से उसमें अर्थ गाम्भीर्य की अभिवृद्धि अवश्य होती है किन्तु उनके अतिरेक से उसकी प्राजलता में व्याघात उत्पन्न होता है जबकि बुद्धिमान् अध्येता प्रसाद गुण सम्पन्न काव्य का ही विशेष समादर करते हैं —

सरल कबित कीरति बिमल सोइ आदरहिं सुजान ।[1]

कहने की आवश्यकता नहीं कि साकेतकार भी गोस्वामी तुलसीदास के उक्त सिद्धान्त का समर्थक है।

## चित्रोपमता —

काव्य स्वर्गीय संगीत का गायक वर्णमय चित्र है।[2] अतः चित्रोपमता स्वभावतः ही उसकी अनिवार्य शाश्वत विशेषता है। उसके अभाव में उसका अस्तित्व ही सम्भव नहीं। यही कारण है कि उसके लिए चित्र भाषा की अपेक्षा होती है और उसके विषय में यह मान्यता है कि 'उसके शब्द सस्वर होने चाहिए जो बोलते हों सेब की तरह जिसके रस की मधुर लालिमा भीतर न समा सकने के कारण बाहर झलक पड़े, जो अपने भाव को अपनी ही ध्वनि में आँखों के सामने चित्रित कर सकें, जो झंकार में चित्र चित्र में झंकार हों।[3] साकेतकार न केवल इस तथ्य का समर्थक है प्रत्युत उसने इसे व्यवहार रूप में भी परिणत किया है। उसकी कुशल लेखनी चित्रकार की कुशल तूलिका का सा कार्य करती है। उसका काव्य वर्णमय चित्र है। उसके 'साकेत' के चित्र सहज-स्वभाविक एवं मर्मस्पर्शी हैं, यह सहृदय पाठकों से छिपा नहीं है। उनमें जहाँ एक ओर वैविध्य है वहाँ दूसरी ओर चित्र-कला के समग्र गुण एवं विशेषताएँ विद्यमान हैं। यदि एक ओर उनमें मानव प्रकृति एवं वस्तु जगत् के पूर्ण चित्रों की मोहक झाँकियाँ हैं तो दूसरी ओर खण्ड चित्रों की, यदि एक ओर उनमें अमूर्त भावों एवं विभिन्न मानसिक स्थितियों के मर्मस्पर्शी चित्र हैं तो दूसरी ओर अमूर्त गुणों एवं आदर्शों के, यदि एक ओर उनमें मानव जगत् के विभिन्न व्यापारों के मार्मिक चित्रों की कुशल योजना है तो दूसरी ओर प्रकृति जगत् के जड़ चेतन रूपों के विभिन्न व्यापारों के हृदयस्पर्शी चित्रों की। स्थानाभाव के कारण न तो यहाँ उनका विशद विवेचन सम्भव है और न उद्धरण ही। फिर भी कतिपय चित्र प्रस्तुत हैं —

---

१ रामचरितमानस बालकाण्ड, दो० १४ (क)।

२ कवित्व वर्णमय चित्र है जो स्वर्गीय भावपूर्ण संगीत गाया करता है।
—जयशंकर प्रसाद, स्कन्दगुप्त, प्र० अंक पृ० २६।

३ सुमित्रानन्दन पंत पल्लव प्रवेश पृ० १७।

पूर्ण चित्र

(क)

तरु तले विराजे हुए,—शिला के ऊपर
कुछ टिके—धनुष की कोटि टेक कर भू पर
निज लक्ष सिद्धि सी, तनिक घूम कर तिरछे
जो सींच रही थी पर्णकुटी के बिरछे—
उन सीता को निज मूर्तिमती माया को,
प्रणयप्राण को और कान्त काया को
यों देख रहे थे राम अटल अनुरागी,
योगी के आगे अलख जोति ज्यों जागी!
अंचल-पट कटि में खोंस कछोटा मारे
सीता माता थीं आज नई छवि धारे।
अंकुर हितकर थे कलश पयोधर पावन
जन मातृ गर्वमय कुशल वदन भव भावन।
पहने थीं दिव्य दुकूल अहा! वे ऐसे,
*उत्पन्न हुआ हो देह-संग ही जैसे।*
कर, पद मुख तीनों अतुल अनावृत पट से
थे पत्र-पुंज में अलग प्रसून प्रकट-से!
कन्धे ढक कर कच छहर रहे थे उनके,—
रक्षक तक्षक से लहर रहे थे उनके।
मुख धर्म बिन्दु मय ओस भरा अम्बुज सा,
पर कहां कण्टकित नाल सुपुलकित भुज सा?
पाकर विशाल कच भार एड़ियां धंसतीं
तब नखज्योति मिष मृदुल अंगुलियां हंसतीं।
पर पग उठने में भार उन्हीं पर पड़ता
तब अरुण एड़ियों से सुहाग सा झड़ता!
क्षोणी पर जो निज छाप छोड़ते चलते,
पद-पद्मों में मंजीर मराल मचलते।
रुकने झुकने में ललित लंक लच जाती,
पर अपनी छवि में छिपी आप बच जाती।
तनु गौर केतकी कुसुम-कली का गाभा
थी अंग सुरभि के संग तरंगित आभा।

मोरों से भूषित कल्प-लता-सी फूली,
गाती थी गुनगुन गान भान सा भूली —[1]

(ख) सखि निरख नदी की धारा,
ढलमल ढलमल चचल अ चल, झलमल झलमल तारा।
निमल जल अ त स्तल भरके
उछल उछल कर छल छल करके,
थल थल तरके, कल कल धरके बिखराता है पारा।
सखि निरख नदी की धारा।

लोल लहरियाँ डोल रही हैं,
भ्रू विलास रस घोल रही हैं
इ गित ही म बोल रही हैं, मुखरित कूल किनारा।[2]

खण्ड चित्र

रोते हुए सुम त्र गये आये वल्कल वस्त्र नये।
बढे प्रथम कर कोमल दो, या मृणालयुत शतदल दो!
सीता चुप, सब रोती थी, दृग जल से मुँह धोती थी।[3]

भाव चित्र।

श्रुति पुट लेकर पूवस्मृतियाँ खड़ी यहाँ पट खोल
देख, आप ही अरुण हुए हैं उनके पाण्डु कपोल।
जाग उठे हैं मेरे सौ सौ स्वप्न स्वय हिल डोल,
और स न हो रहे सो रहे, ये भूगोल-खगोल।[4]

व्यापार चित्र

(क) भरत की माँ हो गई अधीर,
क्षोभ से जलने लगा शरीर।
दाह से भरा सौतिया डाह,
बहाता है बस विषप्रवाह।
मानिनी कयी का कोप
बुद्धि का करने लगा विलोप।

---

१-साकेत अष्टम सग, पृ० १ ६-१५७।
२-वही, नवम सग, पृ० २१६।
३-वही चतुथ सग, पृ० ८१।
४-वही नवम सग, पृ० २१०।

(ग) हा मेरे ! कुंजों का कूजन रोकर निराश होकर सोया
यह चन्द्रोदय उसको उडा रहा है धवल वसन सा धोया ।[१]

रूप-बिम्ब

(क) ऊर्मिला कहने चली कुछ पर रुकी,
और निज अंचल पकड कर वह झुकी ।
भक्ति-सी प्रत्यक्ष भू-लग्ना हुई,
प्रिय कि प्रभु के प्रेम में मग्ना हुई ।
चूमता था भूमितल को
अर्द्ध विधु सा भाल,
बिछ रहे थे प्रेम के दृग—
जाल बन कर बाल ।
छत्र सा सिर पर उठा था
प्राणपति का हाथ,
हो रही थी प्रकृति अपने
आप पूर्ण सनाथ ।[२]

(ख) मुख से सद्य स्नान किये, पीताम्बर परिधान किये
पवित्रता में पगी हुई देवार्चन में लगी हुई
मूर्तिमती ममता माया, कौसल्या कोमल काया
थी अतिशय आनन्दयुता पास खड़ी थीं जनकसुता ।
गोट जड़ाऊ घूंघट की बिजली जलदोपम पट की
परिधि बनी थी विधु मुख की सीमा थी सुषमा सुख की ।
भाव-सुरभि का सदन अहा ! अमल कमल सा वदन अहा !
सांप खिलाती थी अलकें मधुप पालती थी पलकें
और कपालों की झलकें उठती थीं छवि की छलकें ।
गोल गोल गोरी बाहें—दो आंखों की दो राहें
नाग-सुफण पण में थे अ बन्धबद्ध कर में थे ।
थी कमला-सी कल्याणी वाणी में वीणापाणी ।
'मां ! क्या लाऊं ?' कह कह कर-पूछ रही थी रह रह कर ।[३]

---

१— साकेत प्रथम सर्ग, पृ० २१८ ।
२— वही प्रथम सर्ग पृ० ३१ ।
३— वही चतुर्थ सर्ग पृ० ७२ ।

भाव बिम्ब

त्रिवेणी-तुल्य रानिया तीन,
बहाती सुख प्रवाह नवीन ।
मोद का आज न ओर न छोर,
आम्र वन-सा फूला सब ओर ।[1]

व्यापार बिम्ब

मान छोड़ दे, मान भरी
कली अभी आया हँस कर ले, यह बेला फिर कहा घरी ?
सिर न हिला भाको म पड़कर रख सहृदयता सदा हरी
छिपा न उसको भी प्रियतम से यदि है भीतर धूलि भरी ।[2]

मिश्र बिम्ब

मेरे चपल यौवन-बाल !
अचल अंचल मे पड़ा सो, मचल कर मत साल ।
बीतन दे रात, होगा सुप्रभात विशाल,
खेलना फिर खेल मन के पहन के मणि-माल ।
पक रहे हैं भाग्य फल तेरे सुरम्य-रसाल,
डर न अवसर आ रहा है जा रहा है काल ।
मन पुजारी और तन इस दुखिनी का थाल
भेंट प्रिय के हेतु उसम एक तू ही लाल ।[3]

काव्य गुण

काव्य-गुणो का महत्त्व कविता कामिनी के लिए उतना ही है जितना कि किसी मामिनी के लिए उसके गुणो का । गुणो की सख्या साहित्यशास्त्र में भिन्न भिन्न आचार्यो ने भिन्न भिन्न मानी है । नाट्यशास्त्रकार भरत मुनि ने श्लेष, प्रसाद, माधुर्य ओज पद-सौकुमार्य कान्ति आदि १० गुण माने हैं और आचार्य-दण्डी ने १० शब्द गुण और १० अर्थ-गुण किन्तु अधिकाश आचार्य तीन गुण-ओज माधुर्य एव प्रसाद गुण ही मानते हैं । उनके अनुसार भरत, दण्डी आदि आचार्यों द्वारा मान्य कतिपय गुण तो वस्तुत दोषों के अभाव रूप हैं और कतिपय का अन्तर्भाव उक्त तीन गुणो म ही हो जाता है । उदाहरणार्थ अर्थ-व्यक्ति और

---

१— साकेत द्वितीय सर्ग पृ० ३२ ।
२— वही नवम सर्ग, पृ० २३१ ।
३— वही, वही पृ० २३० ।

प्रसाद गुणों में कोई अन्तर नहीं है क्योंकि आचार्यों के अनुसार जहाँ काव्य का अर्थ तुरन्त व्यक्त अथवा स्पष्ट हो जाए वहाँ अर्थव्यक्ति गुण होता है और यही लक्षण प्रसाद का भी है। इसी प्रकार जहाँ शब्द कठोर न हों कोमल हों, वहाँ सौकुमार्य गुण होता है जो श्रुतिकटुत्व दोष का अभाव मात्र तथा माधुर्य गुण का समानधर्मा है अस्तु।

गुण रस के धर्म तथा उसके उत्कर्ष के कारण एवं उपकारक होते हैं। जिस प्रकार शूरत्व उदारता, त्याग आदि से मानवात्मा का उत्कर्ष प्रकट होता है उसी प्रकार ओज, प्रसाद एवं माधुर्यादि गुणों से काव्य की आत्मा रस का उत्कर्ष होता है। काव्य में उनकी स्थिति अचल मानी गई है और उनकी अचलता का तात्पर्य यह है कि रस के बिना उनकी स्थिति नहीं हो सकती।

साकेतकार का ध्यान इन गुणों में से सर्वाधिक प्रसाद गुण की ओर रहा है। परिणाम यह हुआ है कि जहाँ उसमें एक ओर शब्दों का अर्थ सेब में व्याप्त लालिमा के समान स्पष्ट प्रतीत होता है वहाँ दूसरी ओर उसमें न तो कहीं क्लिष्टत्व दोष प्रतीत होता है न कहीं कष्टार्थ और न ही कहीं अप्रतीतत्व अथवा उसका समानधर्मा कोई अन्य दोष। इसके अतिरिक्त कवि के शब्द-चयन-कौशल तथा लोकोक्तियों एवं मुहावरों के समुचित प्रयोग से भी उसमें इस गुण की योजना में यथेष्ट योग मिला है। माधुर्य गुण भी उसमें अंगी रस शृंगार तथा उसके साथी अन्य कोमल रसों के कारण पर्याप्त मात्रा में विद्यमान है किन्तु वीर, रौद्र, भयानक आदि कठोर रसों की यत्र-तत्र योजना के बावजूद भी उसमें ओज गुण उतना नहीं मिलता जितना कि उनके लिए आवश्यक था। वस्तुतः नायिका उर्मिला के व्यक्तित्व पर अपना ध्यान विशेष रूप से केन्द्रित रखने के कारण साकेतकार ने न तो राम रावण युद्ध का विस्तृत वर्णन किया है और न अन्य संक्षिप्त युद्ध-वर्णनों में ही ओज गुण पर कोई विशेष बल दिया है। फिर भी कतिपय स्थलों पर इसकी सहज स्वाभाविक एवं मर्मस्पर्शी योजना हुई है। निम्नांकित अवतरण इस विषय में द्रष्टव्य हैं —

रोऊँगा पीछे होऊँगा उऋण प्रथम रिपु के ऋण से।
प्रलयानल से बढ़े महाप्रभु, जलने लगे शत्रु तृण से।
एक असह्य प्रकाश पिण्ड था छिपी तेज में आकृति आप।
बना आप ही रविमण्डल सा उगल उगल शर किरण-कलाप
कोण-कटाक्ष छोड़ता हो ज्यों भृकुटि चढ़ा कर काल कराल।
क्षण भर में ही छिन्न भिन्न-सा हुआ शत्रु सेना का जाल।
घुसे नक्र जैसे पानी में, पर्वत में जैसे विस्फोट

> अरि-समूह में विभु वैसे ही करते थे चोटों पर चोट।
> कर-पद रुण्ड मुण्ड ही रण में उड़ते, गिरते-पड़ते थे,
> कल कल नहीं किंतु मल मल कर रक्तस्रोत उमड़ते थे।
> रिपुओं की पुकार भी मानो निष्फल जाती बारबार
> गूँज उसे भी दबा रही थी उनके धन्वा की टंकार।[1]

इसके अतिरिक्त शब्द शक्तियों के समुचित प्रयोग—अभिधा लक्षणा एवं व्यंजना के उपयोग शब्द-चयन-कौशल, भावानुकूल भाषा तथा व्यंजन एवं स्वर मैत्रीगत उसके वैशिष्ट्यादि, वृत्तियों की कुशल योजना—उपनागरिका परुषा, कोमला आदि के कुशल संयोजन—, वदर्भी गौडी पांचाली लाटी आदि रीतियों के सुष्ठु विधान, प्रबंध गुण, अलंकार रस, लिंग पद एवं नामगत औचित्य-विचार, वर्ण विन्यास, पद-पूर्वार्द्ध, पद-परार्द्ध प्रकरण, वाक्य एवं प्रबंधगत वक्रता, छन्द-सौष्ठव एवं तद्विषयक मौलिकता, मनोवैज्ञानिक मन स्थितियों के निदर्शन तथा कल्पना के अनेकानेक रूपों के मार्मिक प्रयोग जिस किसी भी दृष्टि से देखा जाए साकेत का कलापक्ष पर्याप्त पुष्ट है। विभ्रम कल्पना का जैसा उत्कृष्ट प्रयोग साकेत में हुआ है वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। किंतु इसके साथ ही उसमें कहीं कहीं खटकने वाली कतिपय बातें एवं दोष भी हैं। पुनरुक्त, अधिकपदत्व, अश्लीलत्व च्युत संस्कृति आदि दोष तो उसमें हो हैं ही अन्य दोष भी यत्र तत्र पाये जाते हैं। यही नहीं, उसके कोमल रसों के माधुर्य गुण युक्त स्थल भी श्रुतिकटु वर्णों से सर्वथा रहित नहीं हैं। भाषा पर यद्यपि कवि का पर्याप्त अधिकार है शब्द यद्यपि उसके संकेत पर चलते हैं छन्दोयोजना में यद्यपि उसकी यथेष्ट गति है तथापि कहीं-कहीं उसने इस विषय में सतर्कता से काम नहीं लिया। फलत यदि कहीं उसके शब्दों के भद्दे विचित्र एवं ग्रामीण प्रयोग हैं तो कहीं छन्दगत शिथिल तुकबंदियाँ। फिर भी उसकी कलागत विशेषताओं की सुरसरिता में उसके दोष तृण प्राय तिरोहित ही रहते हैं। अत इस दृष्टि से भी साकेत अपनी दुर्बलताओं में भी पर्याप्त सबल होने के कारण महाकाव्य पद का अधिकारी है।

## ८-मार्मिक प्रसंगों की सृष्टि

महाकाव्यकार की महत्ता की एक कसौटी मार्मिक प्रसंगों की सृष्टि है। महाकाव्य का रचयिता जितना ही समर्थ होगा उसकी कृति में उतनी ही मार्मिक प्रसंगों की उद्भावना होगी। साकेतकार की सृष्टि इस दृष्टि से पर्याप्त सफल है। उसके लक्ष्मण उर्मिला संवाद राम-वन-गमन-दशरथ-मरण, भरत आगमन, चित्रकूट मिलन, लक्ष्मण-उर्मिला मिलन उर्मिला विरह लक्ष्मण मूर्च्छा साकेत की रण सज्जा

---

1 साकेत एकादश सर्ग पृ० २६०— ६१।

जो लक्ष्मण था एक तुम्हारा लोलुप कामी,
वह सकती हो आज उसे तुम अपना स्वामी ।"
'स्वामी स्वामी, ज म ज म के स्वामी मेरे !
कि तु कहाँ वे अहोरात्र वे साँझ सवेरे !
खोई अपनी हाय ! कहाँ वह खिल खिल खेला ?
प्रिय जीवन की कहाँ आज वह चढती बेला ?'
काप रही थी देह लता उसकी रह रह कर
टपक रहे थे अश्रु कपोलो पर बह बह कर ।'

उक्त अवतरणों की मार्मिकता से स्पष्ट है कि मार्मिक प्रसगों की सृष्टि की कसौटी पर साकेत का महाकाव्यत्व पूर्णत खरा प्रमाणित होता है।

## ६ गुरुत्व गाम्भीर्य एव औदात्य

महाकाव्य के लिए जिस गुरुत्व, गाम्भीर्य एव औदात्य की आवश्यकता होती है, साकेत मे वह प्राय प्रत्येक दृष्टि से विद्यमान है। कथानक का महत्त्व सर्वविदित है। उसकी गुरुता, गम्भीरता एव उदात्तता म किसी प्रकार का स देह नही हो सकता। उसके पात्रो के महान व्यक्तित्व, उनके हिमालय जसे उच्च दृढ एव पावन चरित्र तथा विश्वमगलकारी वत्ति व्यापार साकेत को इस दृष्टि से कितना ऊँचा उठा देते हैं यह कदाचित् कहने की आवश्यकता नहीं। देश-काल, परिवेश तथा भाषा शली की दृष्टि स भी साकेत उक्त कसौटी पर सवथा खरा उतरता है। उसकी भाषा शली उसके कथानक एव पात्रो के अनुरूप ही गुरु गम्भीर एव उदात्त है। जीवन मूल्यो की स्थापना एव तत्त्व चिन्तन अथवा दार्शनिक विवेचन की दृष्टि से उसमें आवश्यकता स कहीं अधिक गुरुत्व, गाम्भीर्य एव औदात्य है। 'कन्नी' ऊर्मिला के विरह रस के 'रस' तथा परिस्थितियो के परिवतन ने साकेत के परिवेश को और भी गुरु गम्भीर एव उदात्त बना दिया है। गम्भीर से गम्भीर व्यक्ति भी उसमे अवगाहन करके बहुत कुछ पा सकता है। तुलसी के मानस की गम्भीरता के समान साकेत की गम्भीरता भी उसके कर्ता के हृदय की गम्भीरता है। इसके अतिरिक्त औदात्य के अनिवार्य तत्त्वों—महान् धारणाओं की क्षमता अनिवार्य प्रभविष्णुता अलकारों की समुचित योजना उत्कृष्ट भाषा तथा गरिमामय एव ऊर्जित रचना विधान[२]—की कसौटी पर भी साकेत पर्याप्त खरा उतरता है। अत गुरुत्व गाम्भीर्य एव औदात्य की दृष्टि से साकेत के महाकाव्यत्व म स देह के लिए स्थान नहीं।

---

१—साकेत द्वादश सग प० ३३४-३३५।
२—काव्य में उदात्त तत्त्व (अनु० डा० नगेन्द्र) प्र० स० ८० १ ।

## १० सर्ग रचना तथा छन्दोबद्धता

सर्ग रचना तथा छन्दोबद्धता विषयक लक्षण महाकाव्य के लिए बाह्यत अनावश्यक प्रतीत होते हुए भी एक प्रकार से परमावश्यक हैं। महाकाव्य लघुकाय न होकर विशालकाय होता है, अत उसके कथानक का विभिन्न सर्गों (खण्डों, समयों प्रकाशों अथवा काण्डों आदि) मे विभाजन अनिवार्य है क्योंकि एक ही सर्ग खण्ड काण्ड, समय अथवा प्रकाश मे सम्पूर्ण महाकाव्य को लिखना सम्भव नहीं और यदि किसी प्रकार सम्भव हो भी तो भी ऐसा करना अनुचित एव अस्वाभाविक ही नहीं, अमनोयतापूर्ण भी होगा। यही कारण है कि आदिकाल से लेकर आज तक लिखे गए समस्त महाकाव्य सर्गबद्ध हैं। जहाँ तक सर्गों के आकार की दीर्घता-लघुता अथवा उनकी सख्या का प्रश्न है इस विषय मे कोई नियम नहीं निर्धारित किया जा सकता, अत अष्टाधिक सर्ग सख्या का कोई महत्त्व नही। आकार के अनुसार सर्ग-सख्या घट-बढ सकती है।

जहाँ तक महाकाव्य की छन्दोबद्धता का प्रश्न है, वह भी उसका अनिवार्य तत्त्व है, उसके अभाव मे उसका महाकाव्यत्व अक्षुण्ण नहीं रह सकता। हा यह अवश्य है कि छन्द के लिए तुकान्त होना अनिवार्य नही माना जा सकता, अतुकान्त छन्दों में भी महाकाव्य की रचना हो सकती है।

साकेत सर्गबद्ध रचना है। उसकी सर्ग-सख्या १२ है जो सर्गों के आकार को दृष्टि मे रखते हुए उचित ही कही जा सकती है। छन्दोबद्धता की दृष्टि से साकेतकार ने प्राचीन साहित्यशास्त्रीय लक्षणों का निर्वाह किया है। एक सर्ग प्राय एक छन्द मे लिखा गया है अन्त में छन्द परिवर्तन है जो एक प्रकार से उचित ही है क्योंकि कथा के धारा प्रवाह में बहते हुए पाठक को छन्द परिवर्तन से सर्गान्त का आभास मिल जाता है। हाँ नवम सर्ग अवश्य इसका अपवाद है। उसमे विभिन्न छन्दों की योजना कथा प्रवाह मे साधक न होकर बाधक है। पाठक छन्दों के झाड झखाड मे ऐसा उलझ जाता है उसका ध्यान कवि की बिखरी अनुभूतियों मे ऐसा बिखर जाता है कि कथानक के धारा प्रवाह का उसे कोई ध्यान नही रहता।

सर्गो का नामकरण (उनकी कथा के अनुसार) नहीं किया गया है पर यह कोई त्रुटि नहीं है। इसके अभाव में साकेत के महाकाव्यत्व पर कोई आँच नहीं आती। हाँ सर्गान्त में भावी कथा का सकेत अवश्य मिल जाता है। इसके अतिरिक्त सर्गों के मध्य में भी कथानक के भावी मोड़ो का सकेत किया गया है। निम्नांकित अवतरण इस विषय में द्रष्टव्य हैं—

हो जाना लता न आप लता सलग्ना,
करतल तक तो तुम हुई नवल दल मग्ना !
ऐसा न हो कि मैं फिरूँ खोजता तुमको
है मधुप ढूँढता यथा मनोज्ञ कुसुम को !

\+ \+ \+ \+

तुम मायामय हो तदपि बड़े भोले हो
हँसने मे भी तो झूठ नहीं बोले हो ।
हो सचमुच क्या आनन्द, छिपूँ मैं वन मे,
तुम मुझे खोजते फिरो गभीर गहन म !"
'आमोदिनि तुमको कौन छिपा सकता है ?
अन्तर को अन्तर अनायास तकता है ।
बैठी है सीता सदा राम के भीतर,
जसे विद्युद्द्युति घनश्याम के भीतर ।"[1]

## ११ व्यापक प्रकृति चित्रण एव अभीष्ट वस्तु वर्णन

साहित्य जीवन का चित्रण है और प्रकृति जीवन का एक अग । अत साहित्य की विधा महाकाव्य म भी जीवन के व्यापक चित्रण के लिए यह आवश्यक है कि उसके अग प्रकृति की उपेक्षा न की जाए । यही कारण है कि प्राचीन साहित्यशास्त्रियों न प्रात सन्ध्या, मध्याह्न, शरद् हेमन्त शिशिर, वसन्त ग्रीष्म, वर्षा, बारह मासा, वन उपवन सरिता सरोवर पर्वत उपत्यका आँधी तूफान, शीतलमन्द सुगन्ध समीर आदि विभिन्न प्रकृति रूपों का बहु विध चित्रण महाकाव्य के लिए एक महती आवश्यकता माना है । इसी प्रकार नगर, प्रासाद हाट बाजार (पण्यशाला) तथा वस्त्राभरण एव साज सज्जा के विभिन्न प्रसाधनों एव जीवन की विभिन्न परिस्थितियों में अपेक्षित वस्तुओं आदि का वर्णन भी महाकाव्य की एक ऐसी आवश्यकता है जिसके अभाव म उसकी विषय वस्तु की व्यापकता म सदव सन्देह रहेगा । महाकाव्य का य० देश-काल निरपेक्ष शाश्वत लक्षण है जिसकी उपेक्षा किसी भी देश-काल का कोई भी महाकाव्यकार नहीं कर सकता ।

साकेतकार महाकाव्य क परम्परागत साहित्यशास्त्रीय लक्षणों का विरोधी होते हुए भी[2] उसक अनिवार्य शाश्वत लक्षणों से परिचित है । यही कारण है कि

---

1 साकेत अष्टम सग पृ० १६२-१६३ ।
2 महाकाव्य क नियम ही विषय कवि पर एक प्रकार का दबाव डालते हैं । जिस कथा में उनकी आवश्यकता न हो उसम में भी उन्हें लाने स अप्राक

यदि एक ओर साकेत मे उसने प्रकृति के विभिन्न रूपों का विविध रूपमय वर्णन किया तो दूसरी ओर उसमे अभीष्ट वस्तु वर्णनो को भी स्थान दिया है। किन्तु इस लक्षण की कसौटी पर साकेत का खरा बताने से पूर्व हम अपने कथन की सत्यता प्रमाणित करने के लिए साकेत के प्रकृति चित्रण एव अभीष्ट वस्तु-वर्णनो पर दृष्टिपात करना होगा।

## प्रकृति चित्रण

प्रकृति चित्रण के उत्तरदायित्व का निर्वाह साकेतकार ने पर्याप्त किया है। उसने प्रकृति के प्राय सभी रूपो का चित्रण साकेत म किया है—आलम्बन, उद्दीपन, उपमान एव प्रतीक रूपा, पृष्ठभूमि एव वातावरणनिर्माणिका आदि विभिन्न प्रकृति-रूपो का चित्रण साकेत म प्राय पर्याप्त सफल रूप म हुआ है। किन्तु इस दृष्टि से साकेत के महाकाव्यत्व के मूल्याकन के पूर्व उसके कतिपय रूपो का अवलोकन एव दिग्दर्शन आवश्यक है।

### आलम्बन रूपा प्रकृति

जिस प्रकार मानव अपने स्व वर्गीय मानव अथवा प्रकृति मे विभिन्न भावों का आविर्भाव करता है उसी प्रकार प्रकृति भी मानव के प्रेम क्रोध, घृणा, भय आदि विभिन्न भावो के आलम्बन रूप मे प्रस्तुत होकर उसम उनका प्रादुर्भाव करती है। प्रकृति के विभिन्न भाव गुण, व्यापार, सूक्ष्मातिसूक्ष्म रूप आकार तथा नवीनातिनवीन वर्ण भेद मानव के प्रेम आकर्षण तथा कुतूहल के आलम्बन हैं। हिम बिन्दुओ से आपूर्ण हरिताभ दूर्वादल से आच्छादित वसुन्धरा प्रात कालीन दिवाकर की सुवर्ण रश्मियाँ, शीताधिक्य के कारण शीतल जल के स्पर्श से बारम्बार अपनी सूँड समेटने वाला तृषातुर वन्य गयन्द आदि प्रकृति रूप उसके आकर्षण तथा प्रेम के पात्र हैं। आकाश के बहुरगी इन्द्रधनुष को देखकर वह प्रेम विभोर हो उठता है। हिम, तुषार तरगावलि, समीर तथा प्रचड प्रभजन उसके प्रेम के आलम्बन हैं।

---

लिखना का डर है। पर उनके बिना महाकाव्यत्व नही रहता। वन विहार-वर्णन, जल केलि-वर्णन, आखेट-वर्णन षट-ऋतु वर्णन, गिरि-वर्णन और समुद्र आदि के वर्णन सभी महाकाव्यों के लिए आवश्यक समझे गए हैं परन्तु इस विषय म हम परतन्त्र होना उचित नही। समय और कथानक के अनुकूल वर्णन करना ही उचित है। इन बातो के बिना महाकाव्यत्व नष्ट नही हो सकता।

—मैथिलीशरण गुप्त पचम हिन्दी-साहित्य सम्मेलन, लखनऊ कार्यक्रम दूसरा भाग पृ० ५७।

वह कलिका से उसके प्रेमी भ्रमर की अपेक्षा कहीं अधिक प्रेम करता है। दूर्वान्त उसके लिए अधरों से भी अधिक मधुर हैं। वह मानव से कम प्रेम नहीं करता किन्तु अपनी प्रेयसी प्रकृति के प्रति उसका प्रेम कहीं अधिक प्रबल होता है उसके अभाव में उसे अपनी प्रेमिका मानवी का सम्पर्क भी अभीष्ट नहीं। तरगावलि का तरल सौन्दर्य इन्द्रधनुष का बहुरंगी वैभव, कोकिल की पंचम तान, मधुकर का वीणा वादन उषा सस्मित पल्लव पुंज तथा सुधा रश्मियों से अवतीर्ण मधुमय जल को छोड़कर वह अपनी प्रेयसी कामिनी के ससग सम्पर्क का आनन्द-नाम भी नहीं चाहता। पर्वत उसके आनन्द भाव के आलम्बन हैं, निर्झर उसके लिए प्राणों के स्पन्दन से परिपूर्ण हैं तुच्छातितुच्छ पुष्प उसके लिए गम्भीरतम विचारों के उत्पादक हैं और रुपहले सुनहले आम्र बौर तथा' नील, पीत श्री ताम्र मौर' उसके सूक्ष्म निरीक्षण एवं आकर्षण के पात्र हैं।[१]

साकेतकार ने भी साकेत में आलम्बन-रूपा प्रकृति का चित्रण यथास्थान किया है। कहीं वह *मानव के भक्ति भाव के आलम्बन रूप में चित्रित की गई है* कहीं प्रेम घृणा एवं आनन्द के आलम्बन रूप में। अयोध्या से वन के लिए प्रस्थान करते समय राम जन्म भूमि से भक्ति गद्गद हो प्रार्थना करके अनुमति माँगते हैं, जनकात्मजा सीता भागीरथी से भक्तिभाव से वन की अवधि व्यतीत कर सकुशल लौटने की याचना करती हैं और प्रकृति के अनेक रूप राम सीता एवं लक्ष्मण को विभिन्न प्रकार से आह्लाद विभोर करते हैं —

'जन्मभूमि, ले प्रणति और प्रस्थान दे,
हमको गौरव गर्व तथा निज मान दे।
+ + + +
हममे तेरे व्याप्त विमल जो तत्त्व हैं
दया प्रेम, नय विनय, शील शुभ सत्व है,
उन सबका उपयोग हमारे हाथ है
सूक्ष्म रूप में सभी कहीं तू साथ है।
तेरा स्वच्छ समीर हमारे श्वास मे
मानस मे जल और अनल उच्छ्वास में।
अनासक्ति में सतत नभस्थिति हो रही,
अविचलता में बसी आप तू है मही।
+ + + +

---

१ डॉ० ललताप्रसाद सक्सेना, हिन्दी-काव्य में मानव तथा प्रकृति प्र० स० पृ० ५१-५२।

तेरा पानी शस्य हमारे हैं धरे,
जिसम भरि प्राकण्ठमग्न होकर तरे ।
+ + + +
रामचन्द्र भवभूमि अयोध्या की सदा,
और अयोध्या रामचन्द्र की सवदा ।' [1]

(ख) 'जय पगे, आनन्दतरगे कलरवे,
अमलमचले पुण्यजल, दिवसम्भवे !
सरस रहे यह भरत भूमि तुमसे सदा,
हम सबकी तुम एक चलाचल सम्पदा ।
दरस परस की सुकृत सिद्धि ही जब मिली,
माँगे तुमसे आज और क्या मैथिली ?
बस, यह वन की अवधि यथाविधि तर सकूँ ।
समुचित पूजा भेंट लौट कर कर सकूँ ।' [2]

(ग) आया झोका एक वायु का सामने
पाया सिर पर सुमन समर्पित राम ने ।
पृथ्वी का गुण सरस गन्ध मन भा गया,
खगकुल का कल विकल करुण रव छा गया । [3]

## उद्दीपनरूपा प्रकृति

प्रिय सयोग की अवस्था मे प्रकृति मानव के सुखात्मक भावो को उद्दीप्त करती है और वियोग की दशा में उसके दु खात्मक भावो को । वसन्त का वही चित्ताकर्षक रूप जो सयोगावस्था मे प्रणयिनी के लिए परम आह्लादकारी एव रमणीय प्रतीत होता है वियुक्तावस्था में अत्यधिक भयकर हो जाता है—लताए ऐसी स्थिति मे उसके लिए अग्नि की लपटो के समान दग्धकारिणी हो जाती हैं, कोकिल की कूक हृदय को टूक-टूक करने लगती है, चन्द्र रश्मियाँ सतप्तकारिणी हो जाती हैं और ऐसा प्रतीत होने लगता है मानों वसन्त ने विरहिया को दागने के लिए चतुर्दिक् अग्नि प्रज्वलित की हो । इसी प्रकार वर्षाकाल की प्रकृति के रूप व्यापार, जो सयोगावस्था मे प्रेमिया को अत्यधिक मनोरम प्रतीत होते हैं, वियुक्तावस्था में उनके लिए प्रलयकर हो जाते हैं—सावन की रातें बावन के डग के समान

---

१ साकेत, पचम सग, पृ० ६३-६६ ।

२ वही, वही, पृ० १०१ ।

३ वही, वही, पृ० ६१ ।

हो जाती हैं, मेघ गर्जन विरहिणी के लिए हृदय विदीर्णकारी प्रतीत होता है, प्रवासी पति की स्मृति खटकने लगती है, सयोगावस्था की उसकी मधुर बातें विकल करने लगती हैं, कोकिल, चातक, मयूर एव दादुरा की ध्वनि हृदय म हूक उत्पन्न करती है, दामिनी की दमक, इन्द्रधनुष की चमक श्यामल घटा की झमक, शीतल समीर की झकोर, कृष्णारात्रि, झिल्ली की झनकार, 'जुगुनू की जमक' आदि सभी उसके वियोग दु ख को शतश उद्दीप्त करते हैं। इसी प्रकार शरद् हेमन्त शिशिर एव ग्रीष्मकालीन प्रकृति के सयोगावस्था म सुहावने प्रतीत होने वाले विभिन्न उपकरण वियोगावस्था म व्यक्ति के लिए दु खदायक एव दाहक बन जाते हैं।

साकेत का उद्देश्य उसकी नायिका उर्मिला के व्यक्तित्व का महत्त्वोद्घाटन तथा सयोग वियोग की विभिन्न स्थितियों का मार्मिक चित्रांकन है। अत उसके वियोग की विभिन्न स्थितियों के चित्रण के लिए प्रकृति का उद्दीपन रूप म चित्रण भी हुआ है। यद्यपि उर्मिला प्रकृति क रूप-व्यापारो से पूर्ववर्ती कवियों की नायिकाओं के समान आतंकित न होकर उन्हें प्राय दूसरे रूप म ही ग्रहण करती हुई प्रकृति सहचरी के विभिन्न रूपों से आत्मीयता एव साहचर्य स्थापित करती है तथापि उसके अन्तराल म उसके साथ सम्बन्ध-स्थापन म, उसकी मानसिक वेदना धारा प्रबलाति प्रबल रूप म प्रवहमान है। इसके अतिरिक्त कतिपय स्थलों पर प्रकृति के उद्दीपन-रूप के चित्रण म प्राचीन काव्य-परम्परा का भी परिपालन हुआ है —

> वह जीवनमध्याह्न सखी अब श्रान्ति-क्लान्ति जो लाया,
> खेद और प्रस्वेद-पूर्ण यह तीव्र ताप है छाया।
> पाया था सो खोया हमने, क्या खोकर क्या पाया ?
> रहे न हमम राम हमारे मिली न हमको माया।
> यह विषाद ! वह हर्ष कहाँ अब देता था जो फेरी,
> जीवन क पहले प्रभात म आँख खुली जब मेरी।[1]

तथा

> कुलिश किसी पर कड़क रहे हैं
> आली, तोयद तड़क रहे हैं।
> कुछ कहने क लिए लता के
> अरुण अधर व फड़क रहे हैं।
> मैं कहती हूँ—रहे किसी क
> हृदय वही जो धड़क रहे हैं।

1 साकेत नवम सर्ग, पृ० २०१।

> अटक अटक कर भटक भटक कर,
> भाव वही जो भड़क रहे हैं।[१]

## उपमान रूपा प्रकृति

उपमान रूपा प्रकृति का चित्रण प्रायः आलंकारिक शैली के सौ दर्यांकन में होता है। साकेतकार ने भी प्रकृति का इस रूप में चित्रण उर्मिला, सीता, माण्डवी आदि के सौन्दर्यांकन के प्रसंगों में किया है। उसके उपमान यद्यपि अधिकांशतः परम्परागत हैं तथापि उनके प्रयोग में मौलिकता एवं नवीनता है। साथ ही कहीं कहीं कवि ने किंचित् नवीन उपमानों का भी उचित प्रयोग किया है। निम्नांकित अवतरणों में प्रयुक्त उपमान प्रकृति के रूप इस विषय में द्रष्टव्य हैं —

(क) अरुण पट पहने हुए आह्लाद में,
कौन यह बाला खड़ी प्रासाद में?
प्रकट मूर्तिमती उषा ही तो नहीं?
कान्ति की किरणें उजेला कर रहीं।
यह सजीव सुवर्ण की प्रतिमा नई,
आप विधि के हाथ से ढाली गई।
कनक लतिका भी कमल-सी कोमला
धन्य है उस कल्प शिल्पी की कला।
जान पड़ता नेत्र देख बड़े-बड़े—
हीरकों में गोल नीलम हैं जड़े।
पद्मरागों से अधर मानो बने
मोतियों से दाँत निर्मित हैं घने।
\+ + + + +
लोल कुण्डल मण्डलाकृति गोल हैं
घन-पटल-से केश, कान्त कपोल हैं।
देखती है जब जिधर यह सुन्दरी,
दमकती है दामिनी सी द्युति भरी।
\+ + + +
स्वर्ग का यह सुमन धरती पर खिला
नाम है इसका उचित ही 'उर्मिला'।

---

१ साकेत नवम सर्ग पृ० २१४।

शील सौरभ की तरगें आ रही,
दिव्य भाव भवाब्धि में हैं ला रही।[1]

(ख) थीं अतिशय आनन्दयुता, पास खड़ी थीं जनकसुता।
गोट जड़ाऊ घूँघट की—बिजली जलदोपम पट की,
परिधि बनी थी विधु मुख की सीमा थी सुषमा सुख की।
भाव सुरभि का सदन अहा! कमल कमल सा वदन अहा!
अधर छबीले छन्न अहा! कुन्द कली से रदन अहा!
सांप खिलाती थीं अलकें, मधुप पालती थीं पलकें
और कपोलों की झलकें उठती थी छवि की छलकें।
गोल गोल गोरी बाहें—दो आँखों की दो राहें।[2]

(ग) अचल-पट कटि म खोस, कछोटा मारे
सीता माता थीं आज नई धज धारे।
अकुर हितकर थे कलश पयोधर पावन
जन मातृ गवमय कुशल वदन भव भावन।
+ + + + +
कर, पद, मुख तीनो अतुल अनावृत पट-से,
थे पत्र-पुज म अलग प्रसून प्रकट से।
कधे ढक कर कच छहर रहे थे उनके,—
रक्षक तक्षक स लहर रहे थे उनके।
मुख धम बिन्दु मय ओस भरा अम्बुज सा
पर कहाँ कण्टकित नाल सुपुलकित भुज सा?
+ + + + +
रुकने झुकने म ललित लक लच जाती
पर अपनी छवि म छिपी आप बच जाती।
तनु गौर केतकी कुसुम कली का गाभा
थी अग सुरभि के सग तरगित आभा
भौंरों से भूषित कल्प-लता सी फूली
गाती था गुनगुन गान मान सा भूली—[3]

---

१—साकेत प्रथम सग, पृ० १९—२०।
२—वही, चतुथ सग, पृ० ७२।
३—वही, पञ्चम सग पृ० १२७।

(च) चार चूड़ियाँ थीं हाथों में, माथे पर सिन्दूरी विन्दु
पीताम्बर पहने थी सुमुखी, कहाँ प्रसित नभ का वह इन्दु ?
फिर भी एक विषाद वदन के वपस्तेज में पैठा था
मानो लोह-तन्तु मोती को बेध उसी में बैठा था ।[1]

इन सौन्दर्य चित्रों में प्रयुक्त प्रकृति के उपकरणों से स्पष्ट है कि गुप्त जी में उपमान रूपा प्रकृति के प्रयोग की पर्याप्त क्षमता है और इस दृष्टि से साकेत के महाकाव्यत्व की सफलता में कोई सन्देह नहीं ।

## पृष्ठभूमि निर्मात्री प्रकृति

पृष्ठभौमिक सौन्दर्य घटनाओं परिस्थितियों एवं पात्रों के सौन्दर्य को उभारने के लिए कितना आवश्यक है यह कदाचित् कहने की आवश्यकता नहीं । कुशल कलाकार इस विषय में कोई प्रमाद नहीं करता । महाकाव्यकार भी इसका अपवाद नहीं है । साकेतकार ने भी इस विषय का प्राय सर्वत्र ध्यान रखा है । यही कारण है कि पृष्ठभूमि निर्माण के लिए उसने प्रकृति का पर्याप्त योग लिया है ।

महाकाव्य में पृष्ठभौमिक प्रकृति चित्रण के लिये कलाकार या तो प्रकृति की किसी सुरम्य स्थली की सृष्टि करता है या किसी ऋतु विशेष के किसी समय विशेष की कल्पना करके घटनास्थल—नगर प्रासाद अथवा कुटीरादि—का पृष्ठभौमिक चित्रण करता है । महाकाव्यकार में इस प्रकार की क्षमता होनी आवश्यक है । साकेतकार भी इस दृष्टि से पर्याप्त पटु है । साकेत में आई घटनाओं एवं परिस्थितियों की पृष्ठभूमि के रूप में उसने प्रकृति का जो चित्रण किया है वह इस बात का साक्षी है कि साकेत के महाकाव्यत्व में इस दृष्टि से कोई कमी नहीं है । निम्नांकित अवतरण इस विषय में द्रष्टव्य हैं —

सूर्य का यद्यपि नहीं आना हुआ,
किन्तु समझो, रात का जाना हुआ ।
क्योंकि उसके अंग पीले पड़ चले
रम्य रत्नाभरण ढीले पड़ चले ।
एक राज्य न हो बहुत से हो जहाँ ।
राष्ट्र का बल बिखर जाता है वहाँ ।
बहुत तारे थे अँधेरा कब मिटा ।
सूर्य का आना सुना जब, तब मिटा ।

---

१ साकेत एकादश सर्ग, पृ० २६६ ।

वेश-भूषा साज ऊषा आ गई
मुख-कमल पर मुस्कराहट छा गई।
पक्षियों की चहचहाहट हो उठी
चेतना की अधिक आहट हो उठी
+ + + + + + +
खुल गया प्राची दिशा का द्वार है,
गगन-सागर म उठा क्या ज्वार है।
पूर्व के ही भाग्य का यह भाग है,
या नियति का राग पूर्ण सुहाग है।[1]

वातावरण-निर्मात्री प्रकृति

महाकाव्य की विराट् चित्रपटी वातावरण निर्माण के लिए प्रकृति के अनुकूल वर्णन की भी अपेक्षा रखती है। हर्षोल्लासपूर्ण वातावरण के लिए प्रफुल्ल मादक एवं आनन्दोत्पादक प्रकृति के रूप व्यापारों का चित्रण आवश्यक है और विषादपूर्ण वातावरण के लिए विषादोत्पादक प्रकृति के रूप व्यापारों का। साकेतकार इस दृष्टि से भी पर्याप्त सक्षम है। उसने साकेत में आवश्यकतानुसार वातावरण निर्माणक प्रकृति रूपों का कुशल चित्रण किया है। दशरथ की मृत्यु के अनन्तर अयोध्या लौटते हुए भरत के दशरथ मृत्यु का समाचार पाने के पूर्व कवि ने प्रकृति का जो विषादमय वातावरण निर्माणिका रूप अंकित किया है वह उसकी तद्विषयक कुशलता का परिचायक है —

हो रही संध्या अभी उपलब्ध
किन्तु मानो अर्द्ध निशि निस्तब्ध।
नागरिक गण गोष्ठियों से हीन
आज उपवन है विजन में लीन।
वृक्ष मानो व्यर्थ बाट निहार
भय उठे हैं भीम, मूक थक, हार!
कर रही सरयू जिसे कुछ रुद्ध
बह रही है वायु धारा शुद्ध।
पर किसे है आज इसकी चाह?
भर रही यह आप ठण्डी आह!

---

१ साकेत प्रथम सर्ग पृ० १७-१८।

जा रहा है स्वय सुरभि समीर,
हैं पड़े हत-से सरों के तीर।
देख कर ये रिक्त क्रीडा क्षेत्र
हैं भरे आते उमड कर नेत्र।
— + + + +
पार्श्व से यह खिसकती-सी आप
जा रही सरयू बही चुपचाप।[1]

इसी प्रकार चित्रकूट की सभा के अनन्तर, जब सारी जनता सताप का अनुभव करके जयजयकार करती हुई अपने हृदय का उल्लास व्यक्त करती है कवि ने उल्लासपूर्ण वातावरण निर्माण के लिए प्रकृति का तदनुकूल चित्र प्रस्तुत किया —

पाया अपूर्व विश्राम साँस-सी लेकर
गिरि ने सेवा की शुद्ध अनिल जल देकर।
मूँदे अनन्त ने नयन धार वह झाँकी,
शशि खिसक गया निश्चिन्त हसी हस बाकी,
द्विज चहक उठे, हो गया नया उजियाला
हाटक पट पहने दीख पड़ी गिरिमाला।
सिन्दूर-चढ़ा आदर्श-दिनेश उदित था
जन जन अपने को आप निहार मुदित था।[2]

## प्रतीकात्मक प्रकृति

प्रतीकात्मक प्रकृति का चित्रण कवि की दक्षता का द्योतक होता है। साकेतकार ने भी छायावादी कवियों के प्रतीकात्मक प्रकृति चित्रण से प्रभावित होकर यत्र-तत्र प्रकृति का प्रतीकात्मक चित्रण किया है। साकेत मे ऐसे स्थल यद्यपि बहुत नही हैं तथापि उसमे उनका नितान्त अभाव भी नही है। "जीवन के पहले प्रभात में आँख खुली जब मेरी"[3] शीर्षक गीत इस विषय का उत्कृष्ट उदाहरण है।

## मानवीकृत प्रकृति

प्रकृति मे मानव भाव रूप गुण-व्यापार आदि का आरोप साहित्यकार आदि काल से करते आये हैं। वैदिक साहित्य मे विभिन्न प्रकृति शक्तियों में देवी-देवताओं

---

१—साकेत, सप्तम सर्ग, पृ० १२६-१२७।
२—वही अष्टम सर्ग पृ० १६२।
३—वही, नवम् सर्ग पृ० २००-२०१।

की कल्पना मानव की इसी प्रवृत्ति का परिणाम है। महाकाव्यकार भी अपनी कृति के विषय की व्यापकता एवं जीवन के सर्वांगीण चित्रण के लिए प्रकृति के विभिन्न रूपों के प्रस्तुतीकरण के समय उसका मानवीकरण करता है। साकेतकार ने भी प्रकृति के मानवीकृत रूपों के चित्रण का कुशल प्रयास किया है। कहने की आवश्यकता नहीं कि उसकी मानवीकृत प्रकृति कभी संवेदनात्मक रूप में प्रस्तुत हुई है कभी दूत दूती रूप में, कभी उस पर मानव रूप का आरोप हुआ है कभी मानव भाव का और कभी मानव गुणावगुण, व्यापार अथवा उपदेशादि का। निम्नांकित अवतरणों मे उसने उक्त विभिन्न मानवीकृत रूपों का उत्कृष्ट चित्रण है।

संवेदनात्मक रूप

आलि, काल है काल अन्त में,
उष्ण रहे चाहे वह शीत,
आया यह हेमन्त दया कर
देख हमें सन्तप्त-सभीत।[1]

तथा

वह कोइल, जो कूक रही थी, आज हूक भरती है,
पूर्व और पश्चिम की लाली रोष-वृष्टि करती है
लेता है निःश्वास समीरण सुरभि धूलि चरती है,
उबल सूखती है जलधारा यह धरती मरती है।
पत्र-पुष्प सब बिखर रहे हैं, कुशल न मेरी-तेरी
जीवन के पहले प्रभात मे आंख खुली जब मेरी[2]

दूत-दूती रूप

तुझ पर—मुझ पर हाथ फेरते साथ यहां,
शावक, विदित है तुझे आज वे नाथ कहां?
तेरी ही प्रिय जन्मभूमि मे, दूर नहीं,
जा तू भी कहना कि ऊर्मिला क्रूर वहीं,
लेते गये क्यो न तुम्हें कपोत, वे
गाते सदा जो गुण थे तुम्हारे?—
लाते तुम्हीं हा! प्रिय-पत्र-पोत वे,
दुःखाब्धि मे जो बनते सहारे।[3]

---

१—साकेत नवम सर्ग पृ० २२०।
२— वही वही, पृ० २०१।
—वही वही पृ० २०२।

तथा

हंस, छोड़ आये कहाँ मुक्ताओं का देश ?
यहाँ वन्दिनी के लिए लाये क्या सन्देश ?[१]

मानव रूपारोपिता प्रकृति

अरुण सन्ध्या को आगे ठेल,
देखने को कुछ नूतन खेल,
सजे विधु की बेंदी से भाल,
यामिनी आ पहुँची तत्काल।[२]

तथा

ओहो ! मरा वह बराक वसन्त कैसा ?
ऊँचा गला रुंध गया अब अस्त जैसा।
देखो, बढ़ा ज्वर, जरा-जड़ता जगी है,
लो ऊर्ध्व साँस उसकी चलने लगी है।[३]

मानव भावारोपिता प्रकृति

विविध राग रंजित अभिराम,
तू विराग-साधन, वन धाम,
कामद होकर आप अकाम,
नमस्कार तुझको शत बार
ओ गौरव गिरि, उच्च उदार।[४]

तथा

मान छोड़ दे, मान अरी
कली अली आया, हँस कर ले, यह बेला फिर कहाँ घरी ?
सिर न हिला झोंकों में पड़ कर, रख सहृदयता सदा हरी,
छिपा न उससे भी प्रियतम से यदि है भीतर धूलि भरी।[५]

---

१—साकेत, नवम सर्ग, पृ० २१८।
२—वही द्वितीय सर्ग, पृ० ४५।
३—वही, नवम सर्ग पृ० २०७ २०८।
४—वही, वही पृ० १६६।
५—वही वही पृ० २३१।

मानव गुणारोपिता प्रकृति

रह कर भी जल-जाल में तू अलिप्त अरविन्द,
फिर तुझ पर गूँजें न क्या कविजन मनोमिलिन्द!
कौन नहीं दानी का दास ?
खिल सहस्रदल सरस सुवास।[1]

तथा

सुदृढ़ धातुमय उपल शरीर
अन्तस्तल में निर्मल नीर,
अटल अचल तू धीर गम्भीर,
समशीतोष्ण शान्तिसुखसार
ओ गौरव गिरि, उच्च उदार।[2]

मानव अवगुणारोपिता प्रकृति

आकाश—जाल सब ओर तना
रवि—तन्तुवाय है आज बना
करता है पद—प्रहार वही,
मक्खी सी भिन्ना रही मही।
लपट से झट रूख जले जले,
नदी नदी घट सूख चले, चले।
विकल वे मृग मीन मरे मरे,
विफल ये दृग दीन भरे, भरे!

या तो पेंड उखाड़ेगा, या पत्ता न हिलायगा,
बिना धूल उड़ाये हा! ऊष्मानिल न जायगा।[3]

मानव-व्यापारारोपिता प्रकृति

नहलाती है नभ की वृष्टि,
अंग पोंछती आतप सृष्टि,
करता है शशि शीतल दृष्टि,
देता है ऋतुपति शृंगार,

---

१—साकेत नवम सर्ग, पृ० २२६।
२—वही वही, पृ० १६६।
३—वही, वही पृ० २०८।

ओ गौरव गिरि उच्च-उदार।
तू निर्झर का डाल दुकूल
लेकर कन्द—मूल—फल—फूल,
स्वागतार्थ सबके अनुकूल,
खड़ा खोल दरिया के द्वार,
ओ गौरव गिरि उच्च-उदार।[1]

## उपदेशिका प्रकृति

प्रकृति ससार को अपने बहुविध गुणों एव व्यापारा से ता उपदेश देती ही है, भावुक कवि उसका मानवीकरण करके उस पर मानव उपदश व्यापार का आरोप भी करता है। कहना न होगा कि एसे स्थलों पर प्रकति ससार को अपने सहचर मानव के समान ही उपदश दती हुई प्रतीत हाती है। महाकाव्यकार भी अपने प्रकति चित्रण का व्यापकता प्रदान करने के लिए उसे मानव के समान उपदश दते हुए चित्रित करता है। साकेतकार न यद्यपि प्रकति पर मानव उपदेश व्यापार का आरोप नहीं किया है तथापि उसके रूप भाव गुण एव व्यापारादि के योग से उसके विश्वमगल कारी तत्वों का सकेत अवश्य किया है। अग्राकित स्थलो क प्रकृति चित्रण म इस प्रकार के उपदेश-तत्त्व विद्यमान हैं —

(क) बिखर कली झडती है कब सोखी किन्तु सकुचित हाना?
सकोच किया मैंने, भीतर कुछ रह गया, यही रोना![2]

(ख) एक राज्य न हो, बहुत से हों जहाँ,
राष्ट्र का बल बिखर जाता है वहाँ।
बहुत तारे थे, अँधेरा कब मिटा।
सूय का आना सुना जब, तब मिटा।[3]

(ग) "पास पास य उभय वक्ष देखो, अहा!
फूल रहा है एक दूसरा झड रहा।'
'है ऐसी ही दशा प्रिये, नर लोक की
कही हर्ष की बात कही पर शोक की।'[4]

इस प्रकार स्पष्ट है कि साकेत म प्रकृति के विभिन्न रूपा का कुशल चित्रण है। परमतत्त्व प्रदर्शिका प्रकृति का चित्रण उसम अवश्य नहीं है, पर वह सकारण

---

१ साकेत नवम सग पृ० १६६।
२ वही, वही प० २३०।
३ वही प्रथम सग प० १७।
४ वही पचम सग, प० १११।

है। गुप्त जी निर्गुण ब्रह्म के उपासक हैं अतः उन्होंने प्रकृति ब्रह्म की ओर संकेत करने की आवश्यकता नहीं समझी। अन्य प्रकृति रूपों का चित्रण उन्होंने यथास्थान किया है और उनको इस विषय में अभीष्ट सफलता भी मिली है। उषा, सन्ध्या, निशा, प्रातः, मध्याह्न, अपराह्न, वन, नदी, निर्झर, समुद्र, पर्वत, वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद्, हेमन्त, शिशिर, मेघ-नाद, समीर, प्रभंजन, सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, पशु-पक्षी आदि विभिन्न प्रकृति-रूप उसमें यथास्थान विनिवेशित हैं। अतः इस दृष्टि से साकेत में कोई अभाव नहीं दीखता। सुप्रतिष्ठ प्रकृति-कवियों अथवा छायावादी अथवा नव प्रगति चित्रकारों के प्रकृति चित्रण की मार्मिकता, मौलिकता एवं नवीनता खोजने की साकेत में आवश्यकता नहीं, महाकाव्य में उसे उसके अनुरूप प्रकृति चित्रण की दृष्टि से ही देखना होगा। मात्र प्रकृति चित्रकार उसका एक विशेष चित्रण एकांगी दृष्टि से करता है जबकि महाकाव्यकार की दृष्टि में व्यापकता होती है। इसके अतिरिक्त जहाँ प्रकृति कवि का क्षेत्र सीमित होता है, महाकाव्यकार का व्यापक, जहाँ प्रथम अपने विषय का विशेषज्ञ होता है, वहाँ द्वितीय प्रायः संसार के सभी विषयों का सर्वज्ञ। किन्तु यहाँ मेरे कहने का आशय यह नहीं है कि साकेत के प्रकृति चित्रण में मार्मिकता, मौलिकता, सजीवता एवं स्वाभाविकता का अभाव है अथवा उसके समस्त प्रकृति चित्र परम्परानुमोदित एवं निर्जीव हैं। अतः उसके विषय में यह कथन कि 'साकेत के प्रकृति चित्रण में विविधता होकर भी तीव्रता, तन्मयता एवं तल्लीनता का अभाव दृष्टिगोचर होता है,'[1] अनुचित एवं अविवेकपूर्ण है।

वस्तु वर्णन की दृष्टि से साकेतकार की दृष्टि किंचित् संकुचित प्रतीत होती है। महाकाव्यत्व के लिए अच्छा होता यदि अयोध्या, मिथिला एवं लंका नगरों के ऐश्वर्य का व्यापक वर्णन किया जाता, किन्तु मिथिला के ऐश्वर्य वैभव के स्मृति रूप में संक्षिप्त सांकेतिक वर्णन तथा लंका की एक प्रकार से उपेक्षा के कारण वस्तु-वर्णन की व्यापकता में किंचित् व्याघात उत्पन्न हुआ है। हाँ अयोध्या (साकेत) के वर्णन संक्षिप्त होते हुए भी पर्याप्त मार्मिक एवं प्रभावोत्पादक हैं और इस दृष्टि से कवि का प्रयास प्रशंसनीय है। कहना न होगा कि लंका एवं मिथिला की इस उपेक्षा का कारण कवि के दृष्टिकोण की भिन्नता तथा साकेत के शीर्षक की अव्याप्ति अथवा अल्प व्याप्ति है।

## सौन्दर्य सृष्टि

सौन्दर्य कला का मूल तत्त्व तथा साहित्य का सर्वस्व है उसके अभाव में साहित्य की सृष्टि सम्भव नहीं। महाकाव्य भी इसका अपवाद नहीं हो सकता।

---

१ डा० द्वारिकाप्रसाद सक्सेना, साकेत में काव्य, संस्कृति और दर्शन, प्र० सं०, पृ० १८१।

अन्य साहित्यिक विधाओं के समान ही उसका उद्देश्य भी सौन्दय की व्यापक सृष्टि करना होता है। अत महाकाव्यकार इस विषय म कोई प्रमाद नहीं कर सकता क्योंकि उसके अभाव म उसका अस्तित्व ही खतरे म पड जाता है। साहित्यकार अपनी सौन्दय-सृष्टि द्वारा विश्व-मगल म योग देता है। अपनी सौ दय-मूर्ति की प्रतिष्ठा द्वारा वह न केवल ससार का रजन करता है प्रत्युत उसकी दिव्य झाँकी द्वारा विश्व के वरूप्य-रोग क निदान भी प्रस्तुत करता है, विरूपता से मुक्ति पाने की प्रेरणा देता है और इस प्रकार ससार का वैरूप्यरहित बनाने में योग देकर सृष्टि के व्यापक सौ य प्रसार में योग देता है।

साकेतकार भी कला एव साहित्य म सौ दय-तत्त्व क इस महत्त्व से परिचित है। वह न केवल सौ दय का स्रष्टा, सृष्टा एव कुशल पारखी है प्रत्युत अपनी साहित्यिक सौ दय-मूर्ति की प्रतिष्ठा द्वारा सासारिक सृष्टि को सर्वा ग सु दर बनान के कवि-कर्तव्य का समथक भी।" मानते हैं जो कला के अथ ही स्वार्थिनी करत कला को व्यथ ही'[1] उसकी पक्तियाँ इसी तथ्य की द्योतक हैं।

साकेत में सौ दय के विभिन्न रूपो की प्रतिष्ठा कितनी मार्मिक है यह कदाचित् कहने की आवश्यकता नहीं। उसम मानव तथा प्रकृति का आन्तरिक एव बाह्य सौ दय अपने पूर्ण रूप म विद्यमान है। हाँ, वस्तु-सौ दय की पूर्णता की ओर अवश्य कवि का ध्यान नहीं गया है। या राम काव्य क मानव जगत् के (पात्रो के) सौ दय के प्रतिष्ठाता वाल्मीकि एव तुलसी हैं, गुप्त जी का उद्देश्य भिन्न है, अत उनके साकेत की सौ दय-सृष्टि वाल्मीकि, तुलसी एव अन्य रामकाव्यकारा की सृष्टि से सवथा भिन्न न होते हुए भी पर्याप्त मौलिक है। उनक नायक नायिका लक्ष्मण एव ऊर्मिला हैं जिनके आ तरिक एव बाह्य सौ दय की मणि-काचन सयुक्त झाँकी परम मनोरम है। साथ ही अन्य पात्रो क आन्तरिक एव बाह्य सौन्दय का समन्वय भी उसम पर्याप्त मार्मिक है। प्रकृति-सौ दयाकन के क्षेत्र में भी कवि की दृष्टि म पर्याप्त व्यापकता है। उसमें जहाँ एक ओर अभीष्ट बाह्य सौ दय है वहा दूसरी ओर अनिन्द्य आन्तरिक सौ दय भी। हाँ वस्तु-सौ य के क्षेत्र में अवश्य कवि की दृष्टि किंचित् प्रतीत सकुचित होती है क्योंकि उसमे आन्तरिक की प्रतिष्ठा का प्रयास उसने नहीं किया। काव्य सौ दय की दृष्टि से भी कवि का प्रयास प्रशसनीय है—उसमें यदि एक ओर भाव पक्ष के सौ दय का चरमोत्कर्ष द्रष्टव्य है तो दूसरी ओर कलापक्ष के सौ दय की प्रतिष्ठा है। समग्रत विचार करने से विदित होगा कि साकेतकार की दृष्टि इस क्षेत्र मे परमुखापेक्षिणी नही है। उसकी इस सौन्दय-सृष्टि मे वह दिव्य शक्ति है, जो ससार की प्रत्येक विकृति का निदान प्रस्तुत कर सकती है

---

१ साकेत, प्रथम सग, पृ० २०।

यह कहने में काई अत्युक्ति नहीं । उसकी शक्ति अमोघ है । सौन्दर्य की इसी अमोघ निस्सीम शक्ति के विषय में विलियम कार्लोस विलियम्स ने लिखा है—'यह शक्ति है सौन्दर्य में कि वह हर विकृति को सुधार करता है ।'"[1]

निष्कर्ष यह कि महाकाव्य के शाश्वत एवं परम्परागत साहित्य शास्त्रीय तत्वों एवं लक्षणों की कसौटी पर साकेत पर्याप्त खरा उतरता है । अतः उसके महाकाव्यत्व में किसी प्रकार का संदेह करना अनुचित है । वह न तो खण्ड-काव्य है और न ही उसे एकार्थ काव्य की संज्ञा दी जा सकती है । ऐसा करने से उसके साथ अन्याय होगा । उर्मिला के नायिकात्व में भी किसी प्रकार का सन्देह नहीं किया जा सकता और न ही उसमें सक्रियता के अभाव का आरोप करके उसके नायिकात्व को झुठलाया जा सकता है । साकेत के विराट् भवन की प्रतिष्ठा उसके व्यक्तित्व की दृढ़ नींव पर ही हुई है उसके अभाव में उसका अस्तित्व सम्भव नहीं । इसके अतिरिक्त इस विषय में यह भी स्मरणीय है कि नारी एवं पुरुष की विशेषतायें एवं क्षेत्र भिन्न-भिन्न हैं, एक के लिए जो ग्राह्य है, दूसरे के लिए वही अग्राह्य हो सकता है, अतः महाकाव्य के नायक पुरुष में जो विशेषतायें अपेक्षित हैं महाकाव्य की नायिका नारी में वे अनिवार्यतः अपेक्षित नहीं मानी जा सकतीं । कहने की आवश्यकता नहीं कि साकेत की नायिका ऊर्मिला का सती शिरोमणि एवं पति प्राणा साध्वी रूप जितना अभिवंद्य है, उतना उसका अन्य कोई भी रूप नहीं हो सकता । अतः उसकी सक्रियता निष्क्रियता की बात करना अनुचित एवं अविवेकपूर्ण है । उसकी सक्रियता की कामना तथा उसके व्यक्तित्व में अभाव का आरोप शायद 'हरिऔध' की राधा के व्यक्तित्व के आधार पर किया जाता है किन्तु ऐसा करने वाले समीक्षक प्रायः यह भूल जाते हैं कि प्रत्येक कवि की धारणायें एवं मान्यताएं भिन्न-भिन्न होती हैं । गुप्त जी को ऊर्मिला की सक्रियता अभीष्ट नहीं । इसके अतिरिक्त राधा एवं ऊर्मिला की परिस्थितियों एवं व्यक्तित्व में भी पर्याप्त अन्तर है जिसे भुलाया नहीं जा सकता । अतः साकेत का महाकाव्यत्व संदेह का विषय नहीं । उसमें त्रुटियाँ एवं अभाव हो सकते हैं किन्तु इसका कारण समीक्षक अथवा कवि के दृष्टिकोण की भिन्नता हो सकती है और यदि ऐसा न भी हो—उसमें वस्तुतः त्रुटियां एवं अभाव हो—तो भी उसे महाकाव्य की अभिधा से वंचित नहीं किया जा सकता क्योंकि त्रुटियाँ एवं अभाव मानव मात्र की विशेषतायें हैं ।

---

१—सड़क पर पड़े हुए एक घायल कुत्ते को देखकर, देशान्तर (सं० भारती) पृ० ६० ।

: ४ :

# कामायनी का महाकाव्यत्व : समस्या एवं समाधान

"कामायनी' की महत्ता के समर्थक भावुक आलोचकों की आलोचना को पढ़कर भले ही ऐसा लगे कि 'कामायनी' के महाकाव्यत्व के विषय में इस प्रकार की कोई समस्या ही न हो, किंतु वस्तुतः तथ्य इसके विपरीत है। समीक्षकों के निम्नांकित कथन इसी की पुष्टि करते हैं —

(क) 'कथानक की दृष्टि से उसमें कुछ भी विशेषता नहीं है। उसमें न विस्तार है न विवरण और न किसी प्रकार की प्रगाढ़ता, द्वन्द्व मथन अथवा भावों के उत्थान पतन की सूक्ष्मता भी नहीं है। सब कुछ अस्पष्ट तथा कल्पना की तहों में लिपटा हुआ प्रसाद जी के इच्छा इंगित पर चलता प्रतीत होता है। भावभूमि पर आधारित होते हुए भी भावनाओं के सघन में केवल शिथिलता तथा अनगढ़पन ही अधिक मिलता है। अत्यन्त साधारणीकरण के कारण वैशिष्ट्य का अभाव मन को खटकने लगता है। विधान का सौष्ठव स्थूल और सूक्ष्म के बीच के कुहासे से गुम्फित छायापट की तरह तीव्र अनुभूति के संवेदन में घनीभूत नहीं हो पाया है।' [1]

(ख) 'कामायनी" में खड़ी बोली का जितना असमर्थ रूप प्रकट हुआ है उतना असमर्थ रूप किसी और काव्य में नहीं मिलता। 'कामायनी में ऐसे अंश कम हैं जिन्हें पढ़ते हुए मन पर अप्रियता के धक्के न लगते हों, अभिव्यक्ति की असमर्थता और शब्दों के कुप्रयोग से पाठक का मन न खीझता हो।

कामायनी का अधिकांश तो ऐसा ही है जहाँ भाषा लचर अभिव्यक्तियाँ लद्धड़ और सफाई बिल्कुल शून्य है। कोई आश्चर्य नहीं कि पीढ़ी दर पीढ़ी छात्रों को पढ़ाते रहने पर भी यह काव्य कविता-प्रेमी जनता के बीच प्रसार नहीं पा सका और

---

१- सुमित्रानन्दन पन्त, यदि मैं कामायनी लिखता युगमनु—प्रसाद

(सं० डा० व्रजकिशोर मिश्र तथा गिरीशचन्द्र त्रिपाठी) पृ० १०१

(ख) 'एक प्रकार का दर्जी होता है जो शरीर के ऊबड़-खाबड़ अवयवों की नजदीक जाकर, धैर्यपूर्वक परीक्षा करता है और प्रत्येक अंग में बैठने लायक सुंदर कुर्ता तैयार कर देता है और एक दूसरे तरह का दर्जी होता है, जो कम परिश्रम और ज्यादा कल्पना करके एक लम्बा चौड़ा फ्रॉक तैयार कर देता है, जो प्रत्येक आदमी को ढक सकता है। कामायनी का कवि दूसरी श्रेणी का है।'' [1]

(ग) हिन्दी में कुछ ऐसी भी रचनाएं हुई हैं जिनमें जीवन-वृत्त तो पूरा लिया गया है, पर महाकाव्य की भांति वस्तु का विस्तार नहीं दिखाई देता। ऐसी रचनाओं में जीवन का कोई एक ही पक्ष विस्तार से प्रदर्शित किया जाता है। इन्हें 'एकार्थकाव्य' कहना अधिक उपयुक्त होगा। [2] प्रिय-प्रवास, साकेत, वैदेही-वनवास कामायनी आदि इसी प्रकार की रचनाएँ हैं।' [3]

(घ) ''रीतिकाल में अनेक विस्तृत काव्य लिखे गये, किन्तु उनका उद्देश्य प्रशस्ति मात्र था और उनमें से कोई भी महाकाव्य की गरिमा प्राप्त न कर सका। वर्तमान शताब्दी के हिंदी महाकाव्यों में कतिपय उत्कृष्ट रचनाओं की गणना होती है जैसे—प्रिय-प्रवास, साकेत, कामायनी, कृष्णायन उर्मिला महाकाव्य इत्यादि। इन सभी रचनाओं की निजी विशेषताएँ हैं यद्यपि इनमें से अधिकांश प्राचीन स्वीकृत मानदण्ड से खरे नहीं निकलेंगे। लक्षण-ग्रन्थों में काव्य (एकार्थ काव्य) नामक एक भेद बताया गया है जो महाकाव्य और खण्डकाव्य से भिन्न है। प० विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने एकार्थकाव्य का उल्लेख किया है जिसका विस्तार महाकाव्य से अधिक होता है किंतु जिसमें महाकाव्य की गरिमा नहीं होती। प्रियप्रवास, साकेत आदि को हम इस कोटि में रख सकते हैं।' [4]

इसके अतिरिक्त कतिपय विद्वानों का इसके महाकाव्यत्व के विषय में मौन साधन भी सामान्य पाठकों के लिए ही नहीं, जिज्ञासु अध्येताओं के लिए भी एक समस्या उत्पन्न करता है। उदाहरणार्थ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल को लिया जा सकता है। उन्होंने इसे प्रबन्धकाव्य तो अवश्य कहा है पर इसे प्रबन्धकाव्य की किस कोटि में रखा जा सकता है, इस विषय में उन्होंने कोई घोषणा नहीं की। वे लिखते हैं—

'किसी एक विशाल भावना को रूप देने की ओर भी अन्त में प्रसाद जी ने ध्यान दिया, जिसका परिणाम है 'कामायनी'। इसमें उन्होंने अपने प्रिय आनन्दवाद'

---

१– आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी प्रसाद और उनकी कविता (मानव) पृ० २२९ से उद्धृत।

२– भाषा विभाषा नियमात् काव्य सर्ग समुत्थितम्।
एकार्थ प्रवणैः पद्यैः संधिसामग्र्य वर्जितम्। (सा० दर्पण)

३– डा० दशरथ ओझा समीक्षा शास्त्र तृतीय सं०, पृ० ४५।

४– डा० रामअवध द्विवेदी, साहित्य रूप (प्र० सं०) पृ० २३२-२३३।

की प्रतिष्ठा दार्शनिकता के ऊपरी आभास के साथ कल्पना की मधुमती भूमिका बना कर की है। यह 'आनन्दवाद' वल्लभाचार्य के काय या आनन्द' के ढग का न हो कर तान्त्रिकों और योगियों की अन्तर्भूमि–पद्धति पर है। प्राचीन जलप्लावन के उपरान्त मनु द्वारा मानवी–सृष्टि के पुनर्विधान का आख्यान लेकर इस प्रबन्ध-काव्य की रचना हुई है। इसका विचारात्मक आधार या अर्थभूमि केवल इतनी ही है कि श्रद्धा या विश्वासमयी रागात्मिका वृत्ति ही मनुष्य को इस जीवन मे शान्तिमय आनन्द का अनुभव और चारो ओर प्रसार कराती हुई कल्याण मार्ग पर ले चलती है और उस निर्विशेष आनन्दधाम तक पहुँचाती है। जिस समन्वय का पक्ष कवि ने अन्त में सामने रखा है उसका निर्वाह रहस्यवाद की प्रवृत्ति के कारण काव्य के भीतर नहीं होने पाया है। सवेदन का तिरस्कार कोई अर्थ नही रखता। यदि मधुचर्या का अतिरेक और रहस्यवाद की प्रवृत्ति बाधक न होती तो इस काव्य के भीतर मानवता की योजना शायद अधिक पूर्ण और सुव्यवस्थित रूप मे चित्रित होती। कर्म को कवि ने या तो काम्य यज्ञों के बीच दिखाया है अथवा उद्योगधन्धो या शासनविधानो के बीच। श्रद्धा के मगलमय योग से किस प्रकार कर्म धर्म का रूप धारण करता है, यह भावना कवि से दूर ही रही।'[1]

यही नही, कामायनी की भूरि भूरि प्रशसा करने वाले उसके महाकाव्यत्व के समर्थक आलोचक भी उसके दोषों अभावों त्रुटियो एव असगतियो का उल्लेख किए बिना नहीं रहते। इस विषय में डा० नगेन्द्र लिखते है —

'कामायनी के शिल्प विधान में निश्चय ही अनेक छिद्र रह गये हैं—उसका वस्तु शिल्प अपनी पूर्णता को नही पहुच सका उसकी आधारभूत प्रकल्पना में जो अखण्डता है, उसका प्रतिफलन वस्तु विन्यास में नहीं हो पाया—अगो की सगति कई जगह टूट गई है, अभिव्यजना में अनेक त्रुटियाँ रह गई हैं जो व्याकरण और काव्य शास्त्र की कसौटी पर खरी नही उतरतीं, कुछ बिम्ब अधूरे रह गये हैं-अलकार छिन्न-भिन्न हो गये हैं, शब्दो के फूलों की जाली मे पन्त के कोमल स्पर्श की साजसँवार नही है, कहानी में मैथिलीशरण गुप्त की प्रबन्ध कला की गठन और प्रवाह नही है— आदि आदि। इसके दोषो की अन्वेषणा आज कुछ अधिक व्यग्रता से की जा रही है। आलोचक उसके गौरव के प्रति जितना आकृष्ट हो रहा है, आज का स्रष्टा कलाकार उसकी अपूर्णता के प्रति उतना ही आक्रन्दशील हो उठा है। इस प्रकार कामायनी आधुनिक हिन्दी-साहित्य की सर्वाधिक विवादास्पद और विवादो के रहते हुए भी

---

१ — आचार्य रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी-साहित्य का इतिहास, तेरहवाँ पुनर्मुद्रण पृ० ६५२-६६०।

कदाचित् सबसे महान् उपलब्धि है ।"[1]

**तथा**

"कामायनी के दोषा की उपेक्षा नही की जा सकती । उसके प्रतिपाद्य जीवन दर्शन और वस्तु कौशल आदि म निश्चय ही अनेक छिद्र हैं ।"[2]

किन्तु इसके विपरीत कामायनी की महत्ता से अभिभूत भावुक आलोचकों न उसकी जी खोलकर प्रशसा करते हुए उसे नए ढग का महाकाव्य घोषित किया है जिसे प्राचीन अथवा अर्वाचीन, पौरस्त्य अथवा पाश्चात्य लक्षणों की कसौटी पर कसना आवश्यक नही है । उनके अनुसार वह एक ऐसा निराला महाकाव्य है जो अपने जैसा आप ही है, जिसकी समता में भारतीय परम्परा के किसी भी महाकाव्य को रखा नहीं जा सकता । डा श्याममुन्दरदास डा नगेन्द्र, महादेवी वर्मा, आचाय नन्ददुलारे वाजपेयी डा० कन्हैयालाल सहल रामर्मूति रेणु, डा० शम्भूनाथसिंह, डा० गोविन्दराम शमा द्वारिकाप्रसाद सक्सेना डा० श्यामनन्दन किशोर आदि आलोचकों का मत बहुत कुछ इसी प्रकार का है । निम्नांकित कथन इस विषय म द्रष्टव्य हैं—

(क) "कामायनी' नामक महाकाव्य मे उन्होने भारतीय इतिहास क अरुणोदय अर्थात् मनुकाल का पुनर्निर्माण किया है और अपनी कल्पना और खोज के द्वारा उस युग का एक चित्र प्रस्तुत किया है जहा पुरातत्ववेत्ताओं की दृष्टि अच्छी तरह प्रवेश नही कर पाई है ।

इस महाकाव्य म मानव का इतिहास ता है ही साथ ही इसमे कवि की काव्यकला का पूर्ण विकास भी हुआ है और उसके दार्शनिक विचारों की भी रूप रेखा बहुत कुछ स्पष्ट हो गई है जिस पर अभेद शव दर्शन की गहरी छाप है ।'[3]

(ख) "यह केवल एक महापुरुष की जीवन गाथा नहीं है एक राजवश का वतवर्णन मात्र नहीं है एक युग या राष्ट्र की कथा नहीं है यह तो सम्पूर्ण मानवता के विकास की गाथा है—अथ से इति तक । अन्य महाकाव्य जहाँ मानव सभ्यता के खण्ड चित्र प्रस्तुत कर रह जाते हैं, वहां कामायनीकार न उसका समग्र चित्र प्रस्तुत करने का साहसपूर्ण प्रयास किया है । कामायनी का महाकाव्यत्व

---

१—डॉ० नगेन्द्र कामायनी का महाकाव्यत्व कामायनी के अध्ययन की समस्याएं पृ० १५ ।

२—वही, कामायनी के अध्ययन की समस्यायें प० ११ ।

३—डा० श्याममुन्दर दास हिन्दी-साहित्य, दशम स०, पृ० ३०१ ।

की प्रतिष्ठा दार्शनिकता म ऊपरी आभास से गाय कल्पना की मधुमती भूमिका बना कर की है। यह आनन्दवाद' वल्लभाचाय के काय या 'आनन्द' के ढग का न हो कर तान्त्रिको और योगियों की अन्तर्भूमि-पद्धति पर है। प्राचीन जलप्लावन के उपरान्त मनु द्वारा मानवी-सृष्टि के पुनर्विधान का आख्यान लेकर इस प्रबन्ध काव्य की रचना हुई है। इसका विचारात्मक आधार या मर्मभूमि केवल इतनी ही है कि श्रद्धा या विश्वासमयी रागात्मिका वृत्ति ही मनुष्य को इस जीवन मे शान्तिमय आनन्द का अनुभव और चारो ओर प्रसार करानी हुई कल्याण मार्ग पर ले चलती है और उस निर्विशेष आनन्दधाम तक पहुँचाती है।
जिस समन्वय का पक्ष कवि ने अन्त में सामने रखा है उसका निर्वाह रहस्यवाद की प्रवृत्ति के कारण काव्य के भीतर नहीं होने पाया है। सवेदन का निराकार कोई अथ नहीं रखता। यदि मधुचर्या का अतिरेक और रहस्यवाद की प्रवृत्ति बाधक न होती तो इस काव्य के भीतर मानवता की योजना शायद अधिक पूर्ण और सुव्यवस्थित रूप मे चित्रित होती। कम को कवि ने या तो काम यज्ञ के बीच दिखाया है अथवा उद्योगधन्धो या शासनविधानो के बीच। श्रद्धा के मगलमय योग म किस प्रकार कम धम का रूप धारण करता है यह भावना कवि से दूर ही रही।[1]

यही नहीं कामायनी की भूरि भूरि प्रशसा करने वाले उसके महाकाव्यत्व के समथक आलोचक भी उसके दोषो अभावो त्रुटियो एव असगतियो का उल्लेख किए बिना नही रहते। इस विषय म डा० नगेन्द्र लिखते है —

कामायनी के शिल्प विधान मे निश्चय ही अनेक छिद्र रह गये हैं—उसका वस्तु शिल्प अपनी पूर्णता को नहीं पहुँच सका उसकी आधारभूत प्रकल्पना म जो अखण्डता है उसका प्रतिफलन वस्तु विन्यास मे नही हो पाया—सर्गो की सम्बिति कई जगह टूट गई है, अभिव्यजना म अनेक त्रुटियाँ रह गई हैं जो व्याकरण और काव्य शास्त्र की कसौटी पर खरी नही उतरती, कुछ बिम्ब अधूरे रह गये है—अलकार छिन्न-भिन्न हो गये हैं, शब्दो के फूलो की जाली मे पन्त के कोमल स्पर्श की साजसवार नही है, कहानी मे मैथिलीशरण गुप्त की प्रबन्ध कला की गठन और प्रवाह नही है—आदि आदि। इसके दोषो की अन्वेषणा आज कुछ अधिक व्यग्रता से की जा रही है। आलोचक उसके गौरव के प्रति जितना आकृष्ट हो रहा है, आज का सृष्टा कलाकार उसकी अपूर्णता के प्रति उतना ही आग्रहशील हो उठा है। इस प्रकार कामायनी आधुनिक हिन्दी साहित्य की सर्वाधिक विवादास्पद और विवादो के रहते हुए भी

---

१—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी-साहित्य का इतिहास, तेरहवाँ पुनर्मुद्रण पृ० ६५२-६६०।

कदाचित् सबसे महान् उपलब्धि है।"[1]

तथा

"कामायनी के दोषों की उपेक्षा नहीं की जा सकती। उसके प्रतिपाद्य जीवन दर्शन और वस्तु-कौशल आदि में निश्चय ही अनेक छिद्र हैं।"[2]

किन्तु इसके विपरीत कामायनी की महत्ता से अभिभूत भावुक आलोचकों ने उसकी जी खोलकर प्रशंसा करते हुए उसे नए ढंग का महाकाव्य घोषित किया है जिसे प्राचीन अथवा अर्वाचीन, पौरस्त्य अथवा पाश्चात्य लक्षणों की कसौटी पर कसना आवश्यक नहीं है। उनके अनुसार वह एक ऐसा निराला महाकाव्य है जो अपने जैसा आप ही है, जिसकी समता में भारतीय परम्परा के किसी भी महाकाव्य को रखा नहीं जा सकता। डा० श्यामसुन्दरदास डा० नगेन्द्र, म० देवी वर्मा, आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी डा० कन्हैयालाल सहल रामभूति रेणु, डा० शम्भूनाथसिंह, डा० गोविन्दराम शर्मा डा० द्वारिकाप्रसाद सक्सेना, डा० श्यामनन्दन किशोर आदि आलोचकों का मत बहुत कुछ इसी प्रकार का है। निम्नांकित कथन इस विषय में द्रष्टव्य हैं—

(क) 'कामायनी' नामक महाकाव्य में उन्होंने भारतीय इतिहास के परम्परागत अथवा मनुकाल का पुनर्निर्माण किया है और अपनी कल्पना और खोज के द्वारा उस युग का एक चित्र प्रस्तुत किया है जहां पुरातत्ववेत्ताओं की दृष्टि अच्छी तरह प्रवेश नहीं कर पाई है।

इस महाकाव्य में मानव का इतिहास तो है ही साथ ही इसमें कवि की काव्यकला का पूर्ण विकास भी हुआ है और उसके दार्शनिक विचारों की भी रूप रेखा बहुत कुछ स्पष्ट हो गई है, जिस पर अभेद शैव दर्शन की गहरी छाप है।'[3]

(ख) 'यह केवल एक महापुरुष की जीवन गाथा नहीं है एक राजवंश का वंशवर्णन मात्र नहीं है एक युग या राष्ट्र की कथा नहीं है यह तो सम्पूर्ण मानवता के विकास की गाथा है—अथ से इति तक। अन्य महाकाव्य जहाँ मानव सभ्यता के खण्ड-चित्र प्रस्तुत कर रह जाते हैं, वहां कामायनीकार ने उसका समग्र चित्र प्रस्तुत करने का साहसपूर्ण प्रयास किया है। — कामायनी का महाकाव्यत्व —

---

१—डॉ० नगेन्द्र कामायनी का महाकाव्यत्व कामायनी के अध्ययन की समस्यायें पृ० १५।

२—वही कामायनी के अध्ययन की समस्यायें पृ० ११।

३—डा० श्यामसुन्दर दास हिन्दी-साहित्य दशम सं०, पृ० ३०१।

प्रसिद्ध है। परम्परा का नितान्त निर्वाह प्रसाद जी के स्वभाव के विपरीत था, अतः कामायनी में भारतीय और पाश्चात्य काव्यशास्त्र—दोनों में से किसी एक के भी लक्षणों का पूर्ण निर्वाह खोजना व्यर्थ होगा। फिर भी महाकाव्य के प्रायः सभी महत्तत्व कामायनी में स्पष्टतः विद्यमान हैं—केवल एक ही विपर्यय है वह है, कार्य व्यापार का अभाव जिसके परिणामस्वरूप कथा में वांछित भौतिक विस्तार नहीं आ सका।"[1]

(ग) प्रसाद जी की कामायनी महाकाव्यों के इतिहास में एक नया अध्याय जोड़ती है क्योंकि वह ऐसा महाकाव्य है जो ऐतिहासिक धरातल पर भी प्रतिष्ठित है और सांकेतिक अर्थ में मानव विकास का रूपक भी कहा जा सकता है। कल्याण भावना की प्रेरणा और समन्वयात्मक दृष्टिकोण के कारण वह भारतीय परम्परा के अनुरूप है।'[2]

(घ) परम्परागत महाकाव्य के लक्षणों की पूर्ति न करने पर भी कामायनी को नये युग का प्रतिनिधि महाकाव्य कहने में हम कोई हिचक नहीं होती।[3]

(ङ) 'पुराणपंथी आलोचक प्राचीन नियमों की कसौटी पर कस कर इस महाकाव्य का मूल्यांकन किया करते हैं। इसका नायक धीरोदात्त नहीं है—इस प्रकार की उक्तियों से कामायनी के महाकाव्यत्व को कोई क्षति नहीं पहुँच सकती। यह आवश्यक नहीं कि लक्षणग्रन्थ सर्वकालीन हो और फिर लक्ष्यग्रन्थों के आधार पर ही तो उनका निर्माण होता है। आचार्यों ने वस्तु निर्देशात्मक तीन प्रकार के मंगलाचरणों का विधान किया है। कामायनी का मंगलाचरण 'कुमारसम्भव' के मंगलाचरण की तरह वस्तु निर्देशात्मक ही कहा जायगा किन्तु मुक्तावलीकार का कथन है कि सब प्राचीन लेखकों ने किसी न किसी रूप में मंगलाचरण किया है। वेदान्त सूत्रों के सम्बन्ध में मंगलाचरण विषयक प्रश्न उठाने पर उत्तर दिया गया था कि 'अथातो ब्रह्म जिज्ञासा' का 'अथ' शब्द ही मंगलात्मक है। इस प्रमाण के आधार पर तो कामायनी का प्रारम्भिक शब्द 'हिमगिरि' ही मंगल सूचक है।

कामायनी में महाकाव्य से सम्बन्ध रखने वाले बहुत-से नियमों का जो

---

१—डा० नगेन्द्र, कामायनी का महाकाव्यत्व, कामायनी के अध्ययन की समस्याएँ द्वि० सं० पृ० १८–२३।

२—महादेवी वर्मा विज्ञप्ति, कामायनी एक परिचय (गंगाप्रसाद पाण्डेय) द्वि० सं० पृ० ८।

३—आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी आधुनिक साहित्य (सं० २००७), पृ० ८०।

निर्वाह हो गया है, वह सयोग की बात समझिये क्योंकि रीतिप्रथा के प्राचीन आदर्श पर इसका निर्माण नहीं हुआ है।

किस कसौटी पर कसकर कामायनी के महाकाव्यत्व की परीक्षा की जाय ? यह अपने ढंग का निराला महाकाव्य है जिसकी तुलना म भारतीय परम्परा के किसी महाकाव्य को रखा नहीं जा सकता। महाकाव्य का सा भारी भरकम शरीर चाहे कामायनी का न हो, उसकी आत्मा निश्चय ही महाकाव्य की है। इस महाकाव्य का नायक सार्वभौम नायक है इसका क्षेत्र समस्त मानवता और उसके विकास की समस्याएँ हैं, इसकी शली महाकाव्योचित गरिमा लिए हुए है चरित्र चित्रण कलात्मक है, जिसमे यथार्थवाद और आदर्शवाद का सामञ्जस्य है। संक्षेप मे कहा जाय तो कामायनी एक भव्य रूपकात्मक महाकाव्य है, जिसम दर्शन मनोविज्ञान काव्य, गाथा और इतिहास का पचीकरण है, जो अपनी नूतनता और विशिष्टता से सबको विस्मय विमुग्ध करता है जिसे पढने से हृदय के रागो और मस्तिष्क का एक साथ व्यायाम होता है।'[1]

तथा

'गेटे (Goethe) ने जिस प्रकार अभिज्ञान शाकुन्तल के लिए कहा था उसी प्रकार हम कामायनी के सम्बन्ध म भी कह सकते हैं कि पृथ्वी और स्वर्ग दोनों का मिलन यदि एक स्थान पर देखना हो तो निस्सकोच 'कामायनी' का नाम लिया जा सकता है।"[2]

(च) 'कविवर प्रसाद के महाकाव्य कामायनी की रचना बीसवीं शती के भारतीय साहित्य जगत् की एक अनुपम घटना है। प्रसाद जसे एक साथ दर्शन और सौन्दर्य के कवि और कामायनी जसी महीयसी कृति का आविर्भाव युगों के अनन्तर ही सम्भव होता है। जहाँ तक मुझे ज्ञात है किसी भी आधुनिक भाषा-साहित्य मे इसके टक्कर का महाकाव्य सम्भवत नहीं है।"[3]

(छ) 'कथानक किसी महाकाव्य का कथानक बनने योग्य है। उसकी योजना विशाल ऐतिहासिक मनोवैज्ञानिक एव दार्शनिक पृष्ठभूमि पर हुई है। उसमें मानवीय

---

१ डा० कन्हैयालाल सहल कामायनी-दर्शन पृ० १०१ १०२, १०३ तथा १२५।

२ वही, कामायनी का सामान्य परिचय कामायनी दर्शन, पृ० १०३।

३ वाराणसी राममूर्ति रेणु कामायनी-सन्देश, अवन्तिका, जून सन् १९५४ ई० पृ० ४६।

सभ्यता के विकास क्रम का सम्पूर्ण इतिहास छिपा हुआ है। उसका जो कार्य है, वह बाह्य एवं आन्तरिक संघर्षों का प्रतिफलन है। ये ही बाह्य एवं आन्तरिक संघर्ष महाकाव्य के मूल तत्व हैं। रचना की मीमांसा महाकाव्य सम्बन्धी प्राच्य एवं पाश्चात्य, प्राचीन एवं अर्वाचीन किसी सिद्धान्त के अनुसार क्यों न की जाय, वह निस्सन्देह अपने काव्य अथवा के बल पर महाकाव्य की कसौटी पर सोने की नाईं खरी उतरेगी। कवि की रहस्य भावना भी उसके मार्ग में बाधा उपस्थित नहीं कर सकी है।"[1]

(ज) कामायनी जयशंकर प्रसाद की अमर रचना और छायावाद युग की महत्तम कृति है। महाकाव्य के क्षेत्र में यह एक अभिनव प्रयोग है और शिल्प विधान की दृष्टि से विश्व साहित्य को एक अनुपम देन है। यह एक साधना-ग्रन्थ है जिसमें प्रसाद के जीवन का सारा निचोड़ समाहित है। सृष्टि के आदि काल के प्रथम नर नारी के जीवन को कथा का आधार बना कर कवि ने जहाँ एक ओर इसे प्राचीनतम संस्कृति से संयुक्त किया है वहाँ दूसरी ओर उसने कथानक पक्ष को गौण बनाकर मानव मनोवेगों के विश्लेषण और प्रतीकात्मकता एवं सांकेतिकता को प्रधानता देकर नयी महाकाव्य भूमि का अनुसंधान किया।[2]

कामायनी के स्थूल अध्ययन से भी उक्त समस्या का समाधान नहीं होता। कारण निम्नांकित हैं—

उसका कथानक यदि एक ओर अपने गुरुत्व गाम्भीर्य एवं औदात्य के कारण महाकाव्योचित प्रतीत होता है तो दूसरी ओर प्रासंगिक कथाओं एवं घटनाओं की न्यूनता तथा प्रधान कथा की सीमाओं एवं संक्षिप्तता के कारण महाकाव्याभास लघु प्रबन्धोचित।

उसका नायक यदि एक ओर महाकाव्य के प्राचीन भारतीय साहित्यशास्त्रीय लक्षणों के अनुसार धीरोदात्त नायक की कसौटी पर खरा नहीं उतरता तो दूसरी ओर उसमें पर्याप्त बल विक्रम रूप सौन्दर्य राज्योचित संस्कार तथा दृढ़ता एवं ओजस्विता है।

उसके पात्रों की संख्या इतनी कम है कि देखकर आश्चर्य होता है। महाकाव्य के लिये आवश्यक है कि उसके विराट रूपाकार के अनुकूल ही उसमें पात्रों की संख्या तथा उनके जीवन की घटनाओं एवं कार्य व्यापार की सघनता एवं व्यापकता

---

१. डॉ॰ कामेश्वरप्रसाद सिंह कामायनी का प्रवृत्तिमूलक अध्ययन पृ॰ ११ १०७।

२. डा॰ श्यामनन्दन किशोर, आधुनिक हिन्दी महाकाव्यों का शिल्प विधान पृ॰ १४१।

भी पर्याप्त हो। इसके विपरीत उसकी श्रद्धा एव इडा के व्यक्ति वा म इतनी प्रभावो त्पादन-क्षमता है नायक मनु का व्यक्तित्व इतना शक्तिशाली एव स्वाभाविक है कि सहसा उसके महाकाव्यत्व का निषेध भी नही किया जा सकता।

उसम न तो महाकाव्योचित नायक के समान उसके नायक मनु का कोई शक्तिशाली प्रतिद्वंद्वी है और न ही उसके समक्ष कोई अन्य बाह्य सघर्ष जिस पर विजयी घोषित करके उसके व्यक्तित्व की महत्ता की प्रतिष्ठा की जा सकती। इसके विपरीत उसका अन्तसघर्ष तथा अन्त मे उसम उसकी सफलता भी उपेक्ष्य प्रतीत नही होती।

यदि एक ओर अपनी भाषा के मधु-वेष्टन एव प्रभावोत्पादन क्षमता के कारण वह पाठक को अभिभूत कर लेती है तो दूसरी ओर उसके दोष उसके महत्त्व को बहुत कुछ गिरा देते हैं।

यदि एक ओर उसका शैलीगत गुरुत्व गाम्भीर्य एव औदात्त्व उसे महाकाव्य के उच्चातिउच्च आसन पर प्रतिष्ठित करने में सक्षम है तो दूसरी ओर उसकी कतिपय असगतियाँ इसमे व्यवधान उपस्थित करती प्रतीत होती हैं।

यदि एक ओर उसका काव्य वैभव अपनी अप्रतिम महत्ता एव प्रभविष्णुता के कारण अध्येता को मत्र मुग्ध कर लेता है तो दूसरी ओर उसकी दार्शनिक जटिलता महाकाव्योचित गुरु-गम्भीरता से युक्त होते हुए भी उसकी प्रसाद गुण-सम्पन्नता एव प्राजलता मे बाधक होने के कारण 'सरल कवित कीरति विमल, सोइ आदरहिं सुजान' के सिद्धांत के प्रतिकूल प्रतीत होती है।

अत सामान्य अध्येता इन समस्याओं के झाड झखाड मे ऐसा उलझ जाता है आलोचकों के विरोधी मतवादो के भवरों में ऐसा डूबता उतराता है कि प्राय उससे मुक्त नही हो पाता। अत आवश्यक है कि समस्या के विभिन्न पक्षो पर सविस्तर सम्यक विचार किया जाए और महाकाव्य के पूर्व निर्धारित नियमों की कसौटी पर कस कर यह देखा जाए कि कामायनी महाकाव्य पद की अधिकारिणी है अथवा नही।

महाकाव्य के सार्वभौमिक शाश्वत लक्षण जैसा कि 'प्रियप्रवास एव साकेत' के महाकाव्यत्व के सन्दर्भ म कहा जा चुका है निम्नांकित हैं—

१—महान् एव व्यापक कथानक।
२—युग जीवन एव जातीय सस्कृति का व्यापक चित्रण।
३—समाख्यानात्मकता एव प्रबन्ध-कौशल।
४—चरित्र चित्रण क्षमता एव नायक-नायकादि की महत्ता।
५—महान् उद्देश्य एव महती प्रेरणा।
६—महती काव्य प्रतिमा एव निर्बाध रसवत्ता।

७—व्यापक सौन्दर्य सृष्टि।

८—गुरुत्व गाम्भीर्य एवं औदात्य।

९—व्यापक प्रकृति चित्रण एवं अभीष्ट वस्तु वर्णन।

अतः 'कामायनी' के महाकाव्यत्व के निर्धारण के लिए उसे उक्त लक्षणों की कसौटी पर कसना होगा।

## महान् एवं व्यापक कथानक

महाकाव्य के कथानक की महत्ता का कारण बहुत कुछ मनोवैज्ञानिक है। मनुष्य की जीवन प्रवृत्ति उसे येन केन प्रकारेण युग-युगान्तरों तक जीवित रखना चाहती है। अतः वह अपनी इस अभीष्ट सिद्धि के लिए अनेक उपाय खोजता है। महाकाव्य की रचना भी उनमें से एक है। अन्य काव्य रूपों की रचना से वह अपना युग-युगान्तरीण अमरता के विषय में आश्वस्त नहीं हो पाता। अतः महाकाव्य जैसे सर्वविध महान् काव्य रूप की रचना करके वह अपनी जीवन की मनोवैज्ञानिक मूल प्रवृत्ति की तुष्टि करता है। मानव-स्वभाव की यह विशेषता है कि वह महत्ता की ओर सर्वाधिक अग्रसर होता है। अतः मनोविज्ञानवेत्ता महाकाव्यकार अपनी रचना को संसार के आकर्षण का विषय बनाने के लिए उसे सर्वविध महान् बनाने का प्रयत्न करता है। यही कारण है कि महाकाव्य के महान् उपकरणों के अनुरूप ही वह उसके कथानक की महत्ता भी आवश्यक समझता है। कहने की आवश्यकता नहीं कि महाकाव्य संज्ञा की सार्थकता तथा उसकी काव्य रूपगत महत्ता बहुत कुछ उसके कथानक की महत्ता पर निर्भर है।

कामायनी' का कथानक महान् है किन्तु उसकी महत्ता ऐतिहासिक इतिवृत्त में न होकर प्रसाद द्वारा निर्मित एवं प्रस्तुत इतिवृत्त में है। उनकी कल्पना ने न केवल प्राचीन भारतीय साहित्य में इतस्ततः विकीर्ण इतिवृत्त की कड़ियों को सुश्रृंखलित रूप में प्रस्तुत करने का काम किया है प्रत्युत उसने उसके रूप को भी पर्याप्त परिवर्तित कर दिया है। उनका कथानक ऋग्वेद शतपथ ब्राह्मण ऐतरेय ब्राह्मण छान्दोग्य उपनिषद् महाभारत मनुस्मृति, ब्रह्मपुराण, पद्मपुराण विष्णुपुराण अग्निपुराण मार्कण्डेयपुराण श्रीमद्भागवतपुराण देवी भागवत हरिवंशपुराण एवं अवागमों पर समाधारित होते हुए भी यथेष्ट नवीनता लिए हुए है। इड़ा और मनु के सम्बन्धों में महाकाव्यकार ने अपनी कल्पना से अभीष्ट परिवर्तन कर दिया है। ऋग्वेद में उसे मनु अथवा मानवों पर शासन करने वाली तथा धर्मोपदेशिका रूप में चित्रित किया गया है।[1] अतः वहाँ यदि मनु और इड़ा में कोई सम्बन्ध माना जा

---

१ ऋग्वेद १।३१।११।

सकता है तो वह शासिका एवं शासित अथवा उपदेशिका एवं उपदिष्ट वा ही कहा जा सकता है। वस्तुत वह (इडा) वहाँ नारी रूप में नहीं बुद्धि सरस्वती अथवा वाग्देवी के रूप में ही दिखाई देती है।[1] ऐतरेय एवं शतपथ ब्राह्मण में अवश्य उसे नारी में प्रस्तुत किया गया है किन्तु वहाँ वह मनु की हविष्योत्पन्न पुत्री बताई गई है जिसके साथ व्यभिचार करने के कारण देवता कुपित हो उठे और उन्होंने पशुपति रुद्र से कहा— प्रजापति ने अपनी दुहिता और हमारी बहन के साथ बलात्कार करके घोर पाप किया है। अतः उन्हें विद्ध कीजिए। फलतः रुद्र ने निशाना लगा कर प्रजापति को शल्य से विद्ध कर दिया। इसके अनन्तर जब देवताओं का क्रोध शान्त हो गया तो उन्होंने प्रजापति को अच्छा कर दिया।[2] आगे कहा गया है कि उसी से मनु ने आगामी सृष्टि का विस्तार किया।[3] इस प्रकार ऋग्वेद और ब्राह्मण ग्रन्थों में इडा के दो रूप प्राप्त होते हैं—एक रूप में वह शासिका, धर्मोपदेशिका तथा सरस्वती बुद्धि या वाग्देवी है और दूसरे में मनु की पुत्री तथा पत्नी दोनों है और उसी से मनु प्रजा का विस्तार करते हैं। किन्तु निरुक्त तथा मीमांसावार्तिक में प्रजापति द्वारा अपनी पुत्री के साथ मैथुन करने का रूपकात्मक अर्थ ही लिया गया है। मीमांसा वार्तिक के अनुसार प्रजापालन के अधिकार के कारण आदित्य को प्रजापति माना जाता है और अरुणोदय काल में आदित्य का उषा के साथ जो समागम होता है, उसे रूपक की भाषा में प्रजापति का अपनी दुहिता के साथ मैथुन करना कहा गया है।[4] शतपथ ब्राह्मण के सप्तम अध्याय के जिसमें उक्त आख्यान है टीकाकार हरि स्वामी ने भी प्रजापति का अर्थ ब्रह्मा और पुत्री का अर्थ दिवा उषा और रोहिणी किया है और इस आख्यान को इडा और मनु से असम्पृक्त रखा है।[5] किन्तु इस प्रकार के पौराणिक रूपकात्मक वर्णनोंमें ऐतिहासिक सत्य खोजना व्यर्थ है। निरुक्तालोचनकार सत्यव्रत सामश्रमी का भी यही अभिमत है।[6] प्रसाद जी ने यद्यपि उक्त उल्लेखों को ऐतिहासिक तथ्य के रूप में ग्रहण किया है तथापि उन्होंने अपने कथानक में पर्याप्त परिवर्तन कर लिए है। उनकी 'कामायनी' की इडा मनु-पुत्री न होकर सारस्वत प्रदेश की रानी हैं जिसके इंगित पर मनु सारस्वत प्रदेश का शासन सूत्र अपने हाथ में सम्भालते हैं। उसके साथ अनैतिक आचरण का प्रयत्न करके वे अपनी

---

१ ऋग्वेद ५।५।८।

२ शतपथ ब्राह्मण १।७।४।१–५।

३ शतपथ ब्राह्मण १।८।१।६–११।

४ सत्यव्रत सामश्रमी निरुक्तालोचन, पृ० ५४।

५ शतपथ ब्राह्मण (स० सत्यव्रत सामश्रमी), भा० १, ख०१ पृ० ५१८।

६ निरुक्तालोचन (स० सत्यव्रत सामश्रमी) पृ० ५४।

मनोवैज्ञानिक की प्रवृत्ति की मनोवैज्ञानिक दुर्बलता का प्रदर्शन अवश्य करते हैं किन्तु उनके व्यक्तित्व का कलात्मक मार्जन पूर्व इतिवृत्त की अपेक्षा कामायनी में कहीं अधिक हो गया है। महाकाव्य की आवश्यकता नहीं कि कथानक का मूल पात्रों के जीवन की घटनाओं के सहारे बढ़ता है और उसकी महत्ता भी पात्रों की वैयक्तिक महत्ता की द्योतिका घटनाओं पर बहुत कुछ निर्भर है। ऐसी स्थिति में प्रसाद ने मनु एवं इडा के सम्बन्ध सूत्रों में परिवर्तन करके कथानक की महत्ता में पर्याप्त योग दिया है। महाकाव्य की सर्वविध महत्ता के लिए आवश्यक है कि उसका कथानक, पात्र, घटनाएँ वातावरण आदि सभी कुछ महान् हो। अपनी पुत्री के साथ अनैतिक आचरण वाला इतिवृत्त, भले ही वह इतिहासोत्पन्न पुत्री ही क्यों न हो किसी प्रकार भी महाकाव्य की गरिमा के अनुकूल नहीं हो सकता। यही कारण है कि प्रसाद ने अपनी कल्पना से काम लेकर नायक मनु के व्यक्तित्व को ऊँचा उठाने का प्रयत्न किया। किन्तु वस्तुतः कथानक को महाकाव्योचित रूप देने के लिए जिस निर्बाध कल्पना शक्ति द्वारा उसकी काट छाँट की आवश्यकता थी प्रसाद ने उसका उपयोग नहीं किया। पूर्व इतिवृत्त के स्वरूप-परिवर्तन के लिए जिस क्रान्तिकारी कल्पना की आवश्यकता थी, उनके तथ्य-प्रेमी व्यक्तित्व में उसके लिए शायद कोई स्थान न था। फिर भी पूर्व इतिवृत्त में उनके द्वारा किए गये परिवर्तन पर्याप्त श्लाघनीय हैं। अस्तु।

प्रसाद का युग नारी महिमा गान का युग था। नारी के जिस महान् रूप की प्रतिष्ठा प्रियप्रवास तथा साकेत' में हुई और स्वयं प्रसाद जी ने भी नारी महिमानुभूति की जिस प्रवृत्ति से प्रेरित होकर देवसेना देवकी वासवी मल्लिका अलका, मालविका पद्मावती, आदि नारियों के महान् रूप की प्रतिष्ठा की, कामायनी में वे शायद उससे भी आगे बढ़ जाना चाहते थे। यही कारण है कि उन्होंने इस कृति का नामकरण ही परम्परागत साहित्यशास्त्रीय लक्षणों की उपेक्षा करके उसकी नायिका के नाम के आधार पर किया है। कहना न होगा कि श्रद्धा के व्यक्तित्व की महत्ता की द्योतिका घटनाओं की योजना द्वारा भी प्रसाद जी ने कथानक को गरिमामय एवं महान् बनाने का सफल प्रयत्न किया है। मनु आदि मानव तथा प्रजापति है। शक्ति साहस, शौर्य पराक्रम, सौन्दर्य आदि गुणों के वे पुंजीभूत भास्वर रूप हैं। कुलीनता एवं कृतज्ञता भी उनमें पर्याप्त है। श्रद्धा के साथ अन्याय करके उन्हें जो मानसिक ग्लानि होती है वह एक प्रकार से उनकी कृतज्ञता की भावना से ही परिचालित है। अतः अपनी मनोवैज्ञानिक दुर्बलता के बावजूद भी वे महान् हैं। अन्त में श्रद्धा के पथ प्रदर्शन द्वारा ही सही, महत्ता के जिस समुच्च शृंग पर वे प्रतिष्ठित होते हैं सामान्य मानव की वहाँ तक पहुँच कहाँ? सारस्वत प्रदेश के उत्थान के लिए उन्होंने जो कुछ किया वह किस महामानव के महान् कार्य से कम है? अतः उनके जीवन की घटनाएँ एक महामानव के जीवन की घटनाएँ हैं। इसके अतिरिक्त मानवता के विकास की द्योतिका होने के कारण भी उनका अपना विशेष महत्व है। इडा का व्यक्तित्व भी महत्ता में

अपना सानी नहीं रखता। अपनी प्रजा के कल्याण के लिए वह मनु का आश्रय अवश्य लेती है किन्तु औचित्यानौचित्य का उसे जितना ध्यान है कदाचित् अन्य किसी भी पात्र को नहीं। उसके जीवन में त्याग और विराग के अतिरिक्त और है ही क्या ?—

चल रही इड़ा भी वृष के
दूसरे पार्श्व में नीरव,
गैरिक वसना संध्या-सी
जिसके चुप थे सब कलरव।[1]

तथा

तो यह वृष क्यों तू यों ही
वैसे ही चला रही है,
क्या बैठ न जाती इस पर
अपने को थका रही है।'[2]

इस प्रकार कामायनी का कथानक महान् व्यक्तियों की महत्ता की प्रदर्शिका घटनाओं से नियोजित होने के कारण महाकाव्योचित महत्ता से युक्त है इसमें सन्देह नहीं। यही नहीं, मानवता के विकास की गाथा होने के कारण भी उसका पर्याप्त महत्व है। इसके अतिरिक्त उसका मनोवैज्ञानिक एवं रूपकात्मक महत्व भी अपरिमेय है। कथानक का अवसान तथा उसकी परिणति की मंगलमयता और दृष्टिकोण की रचनात्मकता भी उसकी महत्ता की द्योतक है। अन्य दृष्टियों से भी उसके कथानक की महत्ता प्रमाणित की जा सकती है। इस विषय में डा० नगेन्द्र लिखते हैं —

कथानक का अर्थ है घटनाओं का समन्वय। अतः उदात्त या महान् कथानक का अर्थ हुआ महान् घटनाओं का समन्वय। घटनाओं की महत्ता का मापक है उनका प्रबल प्रभाव तथा देशकाल में विस्तार। इस प्रकार महाकाव्य के कथानक का निर्माण ऐसी घटनाओं से होता है जिनका प्रभाव प्रबल एवं स्थायी हो और देश तथा काल दोनों में जिनका विस्तार हो। इसके साथ ही उदात्त कथानक के लिए यह भी आवश्यक है कि उसका स्वरूप प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप में ध्वंसात्मक न होकर रचनात्मक हो—उसकी परिणति शुभ और मंगलमयी हो। इस दृष्टि से विचार करने पर यह सिद्ध करना कठिन नहीं है कि कामायनी की घटनाएं अत्यन्त उदात्त एवं महान् हैं किन्तु उनका क्षेत्र ब्रह्माण्ड नहीं, पिण्ड है—मानव

१— कामायनी आनन्द सर्ग, पृ० २७७
२— वही, वही, पृष्ठ २८१।

मानव आत्मा या मानव चेतना है। परम्परागत महाकाव्यों की आधारभूत घटनाओं युद्ध आदि—की भांति उनका विस्तार भौतिक जगत् में लक्षित नहीं होता—उनका विस्तार होता है मानव चेतना के भीतर जहाँ घटित होकर वे समग्र मानव जीवन पर गहरा और स्थायी प्रभाव डालती हैं।' कहने का अभिप्राय यह है कि कामायनी की घटनाओं में निश्चय ही महाकाव्योचित प्रबलता और आयाम अधिभौतिक अर्थात् बाह्य एवं ऐहिक नहीं है—चेतनागत तथा आध्यात्मिक है।'[१]

संक्षेप में कहा जा सकता है कि अन्तत मनु, श्रद्धा इडा आदि मानव महत्ता के जिस सर्वोच्च शिखर पर प्रतिष्ठित होते हैं मानव जीवन की वह सर्वाधिक महान् उपलब्धि है। अत उससे सम्बद्ध कथानक भी स्वभावत ही महान् है।

कथानक की व्यापकता तथा जीवन के सांगोपांग सूक्ष्म चित्रण की दृष्टि से कामायनी का महाकाव्यत्व संदिग्ध है। महाकाव्य की नवीन सृष्टि में पाठक श्रोता को एक आदर्श संसार के समान प्रत्येक प्रकार की सामग्री उपलब्ध हो और वह उस अनन्त विहार स्थली में भ्रमण करता हुआ किसी अभाव का अनुभव न करके परमानन्द प्राप्त करे आदर्श जीवन की प्रतिच्छाया के समान उसकी वह सृष्टि स्वत पूर्ण हो, महाकाव्यकार इसके लिए प्रत्येक सम्भव प्रयत्न करता है। अत इसके लिए जहां वह एक ओर नायक के मुख्य आख्यान के साथ अन्य सम्बद्ध आख्यानों तथा उनके विभिन्न करुण-सुखद प्रसंगों को उसकी सीमा रेखाओं में समटता हुआ मानव जीवन की विभिन्न मानसिक स्थितियों एवं परिस्थितियों की सृष्टि करता है वहाँ दूसरी ओर उसकी व्यापक समाहार शक्ति का सदुपयोग करता हुआ संसार के विभिन्न रूपों, दृश्यों एवं प्राणियों का समावेश करता है और उन सबका सांगोपांग सूक्ष्म चित्रण करके महाकाव्य के वहदाकार में उस स्थान देता है। किन्तु कामायनी का कथानक महाकाव्य की इस कसौटी पर खरा नहीं उतरता। उसमें न तो परम्परागत महाकाव्योचित विस्तार है और न उपाख्यानों पात्र व्यापारों अथवा प्रासंगिक कथाओं की अभीष्ट योजना। कथानक का सूत्र पात्रों के जीवन की घटनाओं के सहारे बनता है किन्तु कामायनी में उनकी संख्या बहुत कम है, परन्तु उनकी स्वल्पता से कथानक के आकार पर भी प्रभाव पड़ा और उसमें वह विस्तार न आ सका जो एक महाकाव्य के लिए अपेक्षित है। आदि मानव की जीवन-गाथा होने के कारण भी कथानक में अभीष्ट विस्तार को क्षति पहुँची। जीवनगत दृश्यों व्यापारों एवं रूप वैविध्य का जो प्राचुर्य आज दृष्टिगोचर होता है, सृष्टि के आदि काल में स्वभावत ही वह सुलभ नहीं था। अत अपनी कल्पना के

---

१—डा० नगेन्द्र कामायनी का महाकाव्यत्व, कामायनी के अध्ययन की समस्याएं, पृ० १६-१७।

पक्षों को मालकर उसे खोजने का प्रयास यदि प्रसाद ने नहीं किया तो इसमें कोई अनौचित्य नहीं। इसके अतिरिक्त इस विषय में यह भी कहा जा सकता है —

'कामायनी वर्णनात्मक और घटना प्रधान महाकाव्य न होकर छायावादी प्रवृत्ति के अनुकूल अन्तर्मुखी, गीतितत्त्व एवं विश्लेषण प्रधान महाकाव्य है। घटना वैविध्य या विस्तृत इतिवृत्त के अभाव की पूर्ति भावात्मक पक्ष की प्रबलता तथा मानसिक धरातल की विशदता एवं गहराई में हो गई है। इसी कारण कुछ लोगों ने इसे प्रगीतात्मक महाकाव्य कहा है। यों कथा का विस्तार थोड़ा तो है पर सांकेतिक रूप में पूरे मानव जीवन या सृष्टि के इतिहास के रूप में कई करोड़ वर्षों के मानवीय उत्थान पतन को इसमें समेटने का प्रयास है।' [1]

तथा

जहाँ तक कामायनी का प्रश्न है इसमें न तो महाकाव्योचित कथाविस्तार ही है और न पार्श्व व्यापारों की योजना ही। सच तो यह है कि प्रसाद जैसे अन्तर्मुखी व्यक्ति को कथा कहने में उतना रस नहीं मिलता जितना भावना-व्यापार के विश्लेषण और जीवन-समस्याओं के सुलझान में मिलता है।"[2]

एवं

सामासिक रूप से विचार करने पर भी कामायनी के कथानक में प्रचुर आयाम है। वह केवल एक महापुरुष की जीवन-गाथा नहीं है एक राजवंश का वस्तुवर्णन मात्र नहीं है, एक युग या राष्ट्र की कथा नहीं है वह तो सम्पूर्ण मानवता के विकास की गाथा है—अथ से इति तक। अन्य महाकाव्य जहाँ मानवसभ्यता के खण्ड चित्र प्रस्तुत कर रह जाते हैं वहाँ कामायनीकार ने उसका समग्र चित्र प्रस्तुत करने का साहसपूर्ण प्रयास किया है। यह प्रयास पूर्ण नहीं हुआ किन्तु इसका परिधि विस्तार इतना अधिक है कि अपनी अपूर्णता में भी यह अद्भुत है—असामान्य है। [3]

किन्तु वस्तुतः ये सभी कामायनी के पक्ष समर्थन की दलीलें हैं कथानक की व्यापकता के अभाव के प्रश्न का समाधान इनसे नहीं हो सकता। यही कारण है कि निष्पक्षता की स्थिति में कामायनी के महाकाव्यत्व का समर्थक आलोचक भी उसके कथानक के विषय में यह कहे बिना नहीं रहता —

---

१ डा० भोलानाथ तिवारी, कामायनी कवि प्रसाद, पृ० १२८।

२ डा० कन्हैयालाल सहल कामायनी का महाकाव्यत्व, कामायनी-दर्शन पृ० १२२।

३ डा० नगेन्द्र कामायनी का महाकाव्यत्व, कामायनी के अध्ययन की समस्याएं पृ० १८।

"कथानक की मनोरंजकता के लिए जो कामायनी पढ़ना चाहते हैं उन्हें एक प्रकार से निराश ही होना पड़ेगा। इस महाकाव्य की कथा तो इतनी स्वल्प है कि उसे केवल दस वाक्यों में कहा जा सकता है। जलप्लावन, श्रद्धा को छोड़कर मनु का सारस्वत प्रदेश की रानी इड़ा की ओर गमन, मनु और श्रद्धा का पुनर्मिलन तथा अन्त में हिमालय-यात्रा और तत्त्व-दर्शन—मुख्यतः इन्हीं पंच मणिकाओं द्वारा इस काव्यमाला का गुम्फन हुआ है।"[1]

उक्त कथन यद्यपि अतिशयोक्तिपूर्ण है क्योंकि इस प्रकार तो किसी भी महाकाव्य के कथानक को संक्षेप में दस वाक्यों में कहा जा सकता है—वाल्मीकि रामायण एवं महाभारत तक के कथानकों का भी इस प्रकार संक्षेप में प्रस्तुत किया जा सकता है, 'आदौ राम तपोवनादि गमनम्' वाली एक श्लोकी रामायण प्रसिद्ध ही है—तथापि इससे इस तथ्य पर प्रकाश पड़ता है कि कामायनी के कथानक में महाकाव्योचित व्यापकता एवं आकर्षण का अभाव है। किन्तु इस का यह आशय नहीं कि उसके कथानक में वस्तु विस्तार है ही नहीं। वस्तु-विस्तार उसमें है अवश्य पर वह महाकाव्योचित नहीं कहा जा सकता। उसके वर्णनों में महाकाव्योचित विस्तार अवश्य है पर उन्हें देख कर लगता है मानो कवि ने नाटक की दृश्य एवं सूच्य घटनाओं के समान अपनी अभिरुचि के अनुकूल महाकाव्य के वर्ण्य विषयों में से भी कतिपय को सविस्तर वर्णन के लिए और कतिपय को यों ही चालू कर देने के लिए चुन रखा हो। अपनी कल्पना से काम लेकर कवि यदि जीवन को व्यापक रूप में ग्रहण कर उसके सविस्तर चित्रण का प्रयास करता तो कथानक के लिए अभीष्ट पार्श्व-व्यापारों एवं उपाख्यानों की उसमें योजना भी हो जाती और अन्यथा चालू कर दिए गये वर्णनादि को व्यापक रूप में लेने से कथानक में अभीष्ट विस्तार भी आ जाता। मनु के प्रलयोपरान्त एकाकी जीवन से प्रारम्भ होकर उनके पुत्र मानव कुमार की किशोरावस्था तक की अवधि के १५-२० वर्षों के जीवन को चित्रित करने वाले इस महाकाव्य के कथानक का संक्षिप्त रूप निस्सन्देह न केवल आश्चर्य का विषय है प्रत्युत इससे उसके महाकाव्यत्व के समक्ष एक प्रश्न-चिह्न सा लग गया है। अस्तु।

## २-युग जीवन एवं जातीय संस्कृति का व्यापक चित्रण

महाकाव्य की द्वितीय महत्त्वपूर्ण कसौटी युग जीवन एवं जातीय संस्कृति का व्यापक चित्रण है। महाकाव्य का कवि विनिर्मित रूप तथा उसका आधार दोनों ही व्यापक होने चाहिए। ऐतिहासिकता, पौराणिकता अथवा लोकप्रसिद्धि की संकुचित सीमाओं में उसे बाँधना उचित नहीं क्योंकि वह यह सब कुछ न होकर

---

१ डा० कन्हैयालाल सहल: कामायनी का सामान्य परिचय, कामायनी-दर्शन, पृ० ६६।

काल्पनिक हो सकता है। रोमांचक महाकाव्यों का कथानक तो काल्पनिक अथवा अर्द्ध काल्पनिक होता ही है, शास्त्रीय (अलंकृत) महाकाव्यों का कथानक भी पूर्णत अथवा अंशत काल्पनिक हो सकता है। यह बात दूसरी है कि महाकाव्योचित कथानक की काल्पनिक सृष्टि की क्षमता युग युगान्तरों में संसार के कुछ ही कवियों म होती है क्योंकि कल्पना की यह सृष्टि सरल सुकर नहीं, कठोर एव दुष्कर है। ऐसी स्थिति म महाकाव्य के कथानक के निर्माण में कवि यद्यपि विशुद्ध कल्पना का बहुत कम आश्रय लेता है तथापि इस विषय म उसके लिए कोई प्रतिबन्ध नही लगाया जा सकता। इतिहास के स्वल्प इतिवृत्त के कंकाल मे रग भरने के लिए वह अपनी कल्पना की निर्बाध उडान ले सकता है। कामायनीकार के लिए भी इस विषय म पूर्ण स्वतन्त्रता थी किन्तु उसने अपनी स्वतन्त्रता का उतना उपयोग नहीं किया जितना कि युग-जीवन एव जातीय संस्कृति के महाकाव्योचित व्यापक चित्रण क लिए आवश्यक था। फिर भी इस दिशा में कवि ने पर्याप्त ध्यान दिया है। अग्रांकित पंक्तियों से इस कथन की पुष्टि होगी।

युग-जीवन एव जातीय संस्कृति के दो रूप हो सकते हैं—१-कथानककालीन २-कविकालीन। अत दोनो पर पृथक् पृथक् रूप से विचार करना होगा।

### कथानककालीन युग-जीवन एव जातीय संस्कृति

महाकाव्यकार जीवन का गायक एव उन्नायक कलाकार है जिसकी सृष्टि स विश्व-मंगल मे सर्वाधिक योग मिलता है। अपने युग की चेतना एव समस्याओं से उत्प्रेरित महाकाव्यकार अपनी सृष्टि में अपने समसामयिक जीवन से कितना ही प्रभावित क्यों न हो रचनाकालीन युग जीवन की उपेक्षा नहीं कर सकता। इतिहास पुराण एव प्राचीन युग-जीवन तथा जातीय संस्कृति क माध्यम से अपने युग-जीवन को मंगलोन्मुख करने का प्रयत्न वह अवश्य करता है उसके आवरण में यत्र-तत्र समसामयिक जीवन एव जातीय संस्कृति की अभिव्यक्ति देकर तथा परोक्ष रूप में उसकी समस्याओं के निदान प्रस्तुत करके वह अपने रचनाकालीन जीवन के पुनर्निर्माण म अपना महत्त्वपूर्ण योग अवश्य देता है किन्तु उसकी कृति म चित्रित युग जीवन तथा जातीय संस्कृति प्रत्यक्षत एव प्रमुखत कथानककालीन ही होती है। अत कामायनी म चित्रित युग-जीवन एव जातीय संस्कृति भी प्रमुखत एव प्रत्यक्षत कथानककालीन ही है। श्रद्धा एव बुद्धि भौतिकता विलास लिप्सा, इन्द्रिय-लोलुपता एव बहु-पत्नीत्व की प्रवृत्ति तथा निर्बाध अधिकार भावना प्रसाद जी के युग की अपेक्षा कथानककाल के अधिक निकट हैं। अत यह कहना भ्रामक है कि 'प्रश्न को देख उसके मनुकालीन अथवा शाश्वत या ऐतिहासिक पुनरावृत्ति होने का भ्रम हो सकता है। यदि वह शाश्वत या पुनरावृत्ति है तो उसके सम्बन्ध में कुछ कहना ही नहीं है। किन्तु रचना में भौतिकता का जो स्वरूप देखने को मिलता है तथा उसका जो दुष्परिण

दिखलाया जाता है वह निर्विवाद कामायनीकालीन है।' [1]

जैसा कि आगे स्पष्ट किया जाएगा रचनाकालीन युग जीवन एवं जातीय संस्कृति का उसमें उल्लेख अवश्य हुआ है किन्तु वह प्राचीन युग जीवन के संभ्रम एवं आवरण में ही संकेतित है और वह भी प्रत्यक्षत अथवा प्रधानता से न होकर गौण रूप में ही है। अत उक्त कथन समीचीन नहीं माना जा सकता। कथानक में महाकाव्यकार के लिए अपनी निर्बाध कल्पनाशीलता के लिए जो स्वच्छन्दता होती है, उसके आधार पर वह प्राचीन युग जीवन को विशद एवं अभीष्ट अभिव्यक्ति देने के लिए अपनी कल्पना की उडान का उन्मुक्त प्रयोग कर सकता है। प्रसाद जी ने भी यही किया है। अत कामायनी में कथानककालीन युग जीवन एवं जातीय संस्कृति के साथ ही रचनाकालीन जीवन को भी पर्याप्त अभिव्यक्ति मिली है यद्यपि उसमें प्रधानता प्राचीन युग जीवन की ही है। अस्तु।

कामायनी के कथानक का प्रसाद आदि मानव एवं आद्या नारी के जीवन की नींव पर आधारित है अत सृष्टि के विकास के अभाव में उसमें अधिक उपाख्यानों को स्थान नहीं मिल सका है। फिर भी उसमें कथानककालीन युग जीवन की स्वाभाविक अभिव्यक्ति हुई है इसमें सन्देह नहीं। उसमें यदि एक ओर स्मृति रूप में प्रलय पूर्व देवताओं के युग जीवन का वर्णन है तो दूसरी ओर आदि मानव एवं आदि मानवी के युग जीवन एवं तत्कालीन संस्कृति का। उसमें चित्रित देव संस्कृति एवं तत्कालीन युग जीवन प्राचीन भारतीय वाङ्मय में उल्लिखित तथ्यों पर आधारित होने के कारण कथानककालीन देव संस्कृति एवं युग जीवन के पर्याप्त निकट एवं तत्कालीन विशेषताओं से संयुक्त है। महाकाव्यकार की कल्पनात्मक प्रभा से जो चमत्कारोत्पादक सृष्टि उसमें हुई है उसका मूलाधार वेदों एवं पुराणों में विकसित वैदिक परम्परा है। देवताओं के जिस बल वैभव एवं उन्मत्त विलास का वर्णन पुराणों में मिलता है, उसका मूल ऋग्वेद में है। उनकी शक्ति के सामने असुर तो ठहरते ही नहीं, द्यावा पृथ्वी पर भी उनकी धाक रहती है। पर्वत उन्हें देखते ही कम्पायमान हो उठते हैं। मघ वसु तथा रवि के वे स्वामी हैं। [2] स्वर्णाभूषणों से सुसज्जित वे नक्षत्र मण्डित गगन की भाँति चमकते हैं। [3] यह अनन्त विश्व देवराज इन्द्र की मुट्ठी में है। [4] उसके महत्त्व से आकाश और पृथ्वी परिपूर्ण हैं। [5] उनके

---

१ ऋग्वेद २ १२ १३।

२ ऋग्वेद ६ १८, ५, २ १३ ५ ७, १ ३२ १ २, ६ १७ १, ३ ८ ८५ १६, ८ ७८ ५ आदि।

३ वही २ ३४ २ ५ ८५ ११ आदि।

४ वही ३ ३० ५।

५ वही ४, १६, २।

पराक्रम की कहानी सरितायें तक कह रही हैं। [१] उसके जमते ही आकाश कम्पाय मान हो उठता है। [२] अहङ्कार एव उद्दण्डता की भावना तथा प्रशसा की प्रवृत्ति भी उसमे पर्याप्त है। कामायनी के अमृत सतान मनु की गर्वोक्ति उसके उक्त अव गुणो का ही प्रतिबिम्ब प्रतीत होती है—

जो मेरी है सृष्टि उसी से भीत रहू मैं
क्या अधिकार नही कि कभी अविनीत रहू मैं ?
श्रद्धा का अधिकार समपरण दे न सका मैं,
प्रतिपल बढता हुआ भला कब वहाँ रुका मैं। [३]

तथा

आज साहसिक का पौरुष निज तन पर लेखें
राजदण्ड को वज्र बना सा सचमुच देखें। [४]

एव

तुम्हे तृप्तिकर सुख के साधन सकल बताया
मैंने ही श्रम भाग किया फिर वग बनाया। [५]

कहना न होगा कि देवराज इन्द्र एव उनके साथी दवता अपनी शक्ति का उपयोग केवल दासो, दस्युओ एव असुरो के विरुद्ध ही नहीं अपने साथियो एव मित्रों के विरुद्ध भी करते थ। परिणामत उनके इन अवांछित कृत्यो से गृह-कलह, अत्याचार एव अनाचार की अभिवद्धि होती थी। विलास लिप्सा एव कामुकता तो उनकी प्रधान विशेषता ही थी। उनके उन्मत्त विलास का उल्लेख वदिक साहित्य म प्रचुरता से हुआ है। देवताओं के गन्धव-वग म जिनम च द्रमा सूय तथा आदित्य भी आते हैं, कामुकता का तो प्राधान्य ही था। ग धव लोग वरुण एव आदित्य की रूप-यौवन सम्पन्न प्रजा, सौन्दय के उपासक, गन्ध, मोद, एव प्रमोद के मत्त तथा हास्य-विलास, क्रीडा-कौतुक एव मैथुन म अनुरक्त एव सोम वष्णव की प्रजा युवती सुन्दरी एव ग धोपासिका अप्सराओं के चोली दामन के साथी थे। किन्तु यह कामुकता एव विलास लिप्सा सामान्य ग धर्वों अथवा देवताओं की ही नही, सूय, च द्र वायु, इन्द्र आदि प्रतिष्ठित देवताओं की भी विशेषता थी।

---

१ ऋग्वेद ४, १८ ६।
२ वही ४ १७ २।
३ कामायनी सघष सा पृ० २६०।
४ वही, वही, पृ० २००।
५ वही, वही पृ० १९९।

कहने की आवश्यकता नहीं कि 'अमुरत्व विशिष्ट' यह देव सभ्यता अपनी विनाशकारिणी प्रवृत्तियों के कारण ही नष्ट हो गई। कामायनी व मनु की स्मृति रूप में उसका वर्णन कथानककालीन (वस्तुत: कथानक पूर्व) युग जीवन का परिचायक है। निम्नांकित पंक्तियाँ इस विषय में द्रष्टव्य हैं—

कुसुमित कुंजों में वे पुलकित
प्रेमालिंगन हुए विलीन
मौन हुई हैं मूर्छित तानें
और न सुन पड़ती अब बीन।
अब न कपोलों पर छाया सी
पड़ती मुख की सुरभित भाप
भुज मूलों में, शिथिल वसन की
व्यस्त न होती है अब माप।

\+ + + + +

वह अनंग पीड़ा अनुभव सा
अंग भंगियों का नर्तन
मधुकर के मरंद उत्सव सा
मदिर भाव से आवर्तन।
सुरा सुरभिमय वदन अरुण वे
नयन भरे आलस अनुराग
कल कपोल था जहाँ बिछलता
कल्पवृक्ष का पीत पराग
विकल वासना के प्रतिनिधि वे
सब मुरझाए चले गये
आह! जले अपनी ज्वाला से
फिर वे जल में गले गये।[1]

प्राचीन वाङ्मय में देवताओं के मधु, मद्य सोम सुरा आदि पेयों, 'सधमाद' नामक सहभोज तथा पीने के पात्र 'चमस' का उल्लेख मिलता है। इन्द्र के पेट में सोम के लिए सागर सा स्थान है। वृत्र के वध के समय उन्होंने सोम के तीन सरोवर पी लिए और तीन सौ भैंसे खा लिए।[2] यज्ञों में सोम और नशीली वस्तुएँ चढ़ाई जाती थी। कक्षीवान् ऋषि सुरा की प्रशंसा करते हैं।[3] इसी प्रकार मास-

---

१—कामायनी चिन्ता सर्ग पृ० १०-११।
२—ऋग्वेद १, ३० ३ तथा ५ २९ ७।
३—वही, १ ११६ ३, १०, १०७ ६ तथा ६, २, १२।

मसाला, पशु बलि एवं सुरा पान के उल्लेख भी प्राचीन भारतीय वाङमय में मिलते हैं। अतः इस दृष्टि से कामायनी में वर्णित देवताओं तथा देव सन्तान मनु का पशु-बलिदान और सोम एवं सुरा का सेवन कथानककालीन युग जीवन एवं जातीय *संस्कृति की विशेषताएँ हैं—*

(क) देव यजन के पशु यज्ञों की
वह पूर्णाहुति की ज्वाला
जलनिधि में बन जलती कैसी
आज लहरियों की माला।[1]

(ख) यज्ञ समाप्त हो चुका तो भी
धधक रही थी ज्वाला,
दारुण दृश्य ! रुधिर के छींटे !
अस्थि खण्ड की माला !
वेदी की निर्मम प्रसन्नता
पशु की कातर वाणी
मिलकर वातावरण बना था
कोई कुत्सित प्राणी।[2]

(ग) उधर सोम का पात्र लिए मनु
समय देखकर बोले
'श्रद्धे ! पी लो इस बुद्धि के
बन्धन को जो खोले।[3]

कामायनी में वर्णित प्रलय का उल्लेख शतपथ ब्राह्मण महाभारत श्रीमद् भागवत मत्स्यपुराण पद्मपुराण, भविष्यपुराण आदि प्राचीन भारतीय ग्रन्थों में *ही नहीं, यूनानियों एवं यहूदियों के प्राचीन ग्रन्थों में भी मिलता है।* प्रलय के विभिन्न रूपों को दृष्टि में रखते हुए विभिन्न ग्रन्थों में विभिन्न रूपों में उसका वर्णन किया गया है। कामायनी में वर्णित प्रलय नैमित्तिक अथवा आंशिक प्रलय है जिसका आधार शतपथ ब्राह्मण है। प्रलयोपरान्त मनु एवं श्रद्धा का मिलन पाणिग्रहण दाम्पत्य जीवन, मनु द्वारा श्रद्धा का परित्याग, इड़ा मनु सम्पर्क, सारस्वत प्रदेश की भौतिक समृद्धि मनु का इड़ा के साथ बलात्कार, मनु एवं प्रजा का संघर्ष श्रद्धा का वियोग दुःख मनु एवं श्रद्धा का पुनर्मिलन, श्रद्धा द्वारा पथ प्रदर्शन तथा इड़ा मानव

---

१–कामायनी चिंता सर्ग पृ० १३।
२–वही कर्म सर्ग, पृ० ११६।
३–वही वही, पृ० १३४।

कुमार आदि द्वारा तपोधाम की यात्रादि के वर्णन रूपी आवरण भी कल्पना के इन्द्रधनुषी रंगों तथा उनकी मनोमुग्धकारिणी दीप्ति एवं चित्रकारी के हृदयहारी रूप से संयुक्त होते हुए भी कथानककालीन युग जीवन एवं जातीय संस्कृति की विशेषताओं के ताने बाने से निर्मित हैं। इसके अतिरिक्त उसमें संकेतित वर्णाश्रम धर्म व्यवस्था—मनु के ब्रह्मचारी, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ एवं संन्यासी जीवन तथा उनके द्वारा किया गया सारस्वत प्रदेश की प्रजा का वर्ण विभाजन, वासना संग में मनु द्वारा श्रद्धा का कर पकडना तथा लज्जा सर्ग में श्रद्धा द्वारा स्मिति रेखा से संधिपत्र लिखा में पाणिग्रहण और कर्म सर्ग के अन्त में पारस्परिक मनोमालिन्य के मिटने पर श्रद्धा एवं मनु के मिलने से अर्जित गर्भाधान संस्कार, पंचमहायज्ञों के संकेत-देवयज्ञ, पितृयज्ञ, भूतयज्ञ, नृयज्ञ, एवं ब्रह्म यज्ञ की संकेतात्मक योजना सत्य, अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह आदि प्रमुख यम नियमों का समावेश, शिवाराधना की प्रेरणा एवं उनकी उपासना, समन्वयवादी भावना एवं समरसता के प्रचार का प्रयत्न, विश्वप्रेम एवं जागतिक एकता का महत्व प्रदर्शन और कुटुम्ब, कृषि, गृह उद्योग, समाज, धर्म एवं राज्य सम्बन्धी संस्थाओं के उल्लेख कथानककालीन युग जीवन तथा तत्कालीन जातीय संस्कृति के अभिव्यंजक हैं। उनके समन्वयवाद में ऐहिकता एवं आध्यात्मिकता का, इच्छा ज्ञान एवं क्रिया का, भाव एवं अभाव का, बुद्धि एवं हृदय का, प्रवृत्ति एवं निवृत्ति का, श्रेय एवं प्रेय का, भक्ति एवं ज्ञान का, गार्हस्थ्य एवं वैराग्य का, जड़ एवं चेतन का और ईश्वर एवं जगत् का बड़ा ही भव्य समन्वय है। उसमें संकेतित देवासुर संग्राम यदि एक ओर भौतिक बाह्य संघर्ष का द्योतक है तो दूसरी ओर मनुष्य की दैवी एवं आसुरी प्रवृत्तियों के संघर्ष का, जिसका अंत बाह्य जगत् में हारकर मनुष्य का अपना मनोजगत् है। इसके अतिरिक्त उसमें मानव-जीवन के विभिन्न आदर्शों की प्रतिष्ठा भी कथानककालीन युग जीवन एवं जातीय संस्कृति की परिचायिका है।

## रचनाकालीन युग एवं जातीय संस्कृति

समाज के अन्य सदस्यों के समान ही महाकाव्यकार भी उसका एक सदस्य है। समाज की हलचलों के प्रभाव से वह अछूता नहीं रह सकता। कामायनीकार भी इसका अपवाद नहीं है। अतः रचनाकालीन युग जीवन एवं जातीय संस्कृति का उस पर पर्याप्त प्रभाव है। यही कारण है कि आदि मानव एवं आदि मानवी की जीवन गाथा के चित्रण के समय भी उसने उसके पर्याप्त संकेत दिये हैं। किन्तु उसके द्वारा अभिव्यक्त अथवा संकेतित रचनाकालीन युग जीवन की स्वाभाविकता पर कोई विशेष दोष नहीं आया। कारण उसने समरसता से उसका बड़ा कुछ परिहार कर दिया है। [illegible]

### नारी महिमानुभूति

प्रसाद का युग नारी महिमानुभूति तथा उसके महत्त्व के सामगान का युग था। समाज धर्म राजनीति आदि प्राय सभी क्षेत्रों म उसका महत्त्व सर्वमान्य सा हो रहा था। साहित्यकार पर भी इसका प्रभाव पडना स्वाभाविक था। यद्यपि अपनी सृजनात्मक क्षमता एव दृष्टिकोण की भिन्नता के कारण वह समाज की हा म हा तो न मिला सका पर उसने अपनी सृष्टि म नारी-जीवन का जो महत्त्व दिया, वह इस तथ्य का द्योतक है कि उसकी सृष्टि म उसका स्वरूप भिन्न भले ही क्यो न हो पर उसकी महत्ता उसकी दृष्टि म जन सामान्य द्वारा उसे दी जाने वाली महत्ता से कही अधिक है। महाकाव्य के परम्परागत साहित्यशास्त्रीय लक्षणों की उपेक्षा करके नायिका प्रधान महाकाव्यो की रचना का सूत्रपात महाकाव्यकारो ने रचना कालीन युग-जीवन की इसी प्रवृत्ति से प्रेरित होकर किया। कामायनी वैदेही वनवास, 'वनस्थली' 'नूरजहा मीरा भासी की रानी सती हाडी रानी, पाथ पत्नी महासती द्रौपदी 'ककेयी' कल्याणी कैकेयी' आदि प्रब ध काव्यो की रचना इसी प्रवृत्ति की द्योतक है। यही नही प्राचीन काल के नायक प्रधान प्रबन्धकाव्यो के आधार पर लिखे गये प्रबन्धकाव्यो को भी प्रब धकार अपने दृष्टिकोण के साचे मे ढालकर नायिका प्रधान रूप म प्रस्तुत कर रहे हैं। 'साकेत' 'पावती उर्मिला', 'दमयन्ती', आदि प्रबन्धकाव्यो के रचयिताओ ने यही किया है।

कामायनी नायिका प्रधान रचना है। उसकी नायिका श्रद्धा (कामायनी) का महान् व्यक्तित्व तथा उसके नायक मनु के व्यक्तित्व से उसकी अपेक्षाकृत श्रेष्ठता एव उसका नामकरण इसी तथ्य का द्योतक है। 'यत्र नार्यस्तु पूज्य त रमन्ते तत्र देवता' आदि प्राचीन उक्तियो को दृष्टि मे रखते हुए यद्यपि इसे कथानक-कालीन युग जीवन का विरोधी नही माना जा सकता तथापि यह कहने म भी कोई सन्देह नही होना चाहिए कि यह रचनाकालीन युग जीवन एव सस्कृति के प्रभाव का परिणाम है।

### मनोवैज्ञानिक प्रभाव एव यथार्थवादी चित्रण

वतमान युग मनोविज्ञान के व्यापक अध्ययन अनुसधान एव प्रचार प्रसार का युग है। मैक्डूगल प्रभृति प्रवृत्तिवादी मनोवैज्ञानिको द्वारा निर्दिष्ट मनोवैज्ञानिक मूल प्रवृत्ति काम का महत्त्व तथा फ्रायड प्रभृति मनोविश्लेषणवादी मनोवैज्ञानिको द्वारा निर्दिष्ट उसकी व्यापकता साहित्यकारो स छिपी नही है। इसके अतिरिक्त भोगवादी सभ्यता एव सस्कृति म काम की प्रधानता ने भी साहित्यकारो को पर्याप्त प्रभावित किया है किन्तु स्रष्टा प्रसाद अपनी पुरातन भारतीय सस्कृति म जितने प्रभावित हैं, आधुनिक मनोविज्ञान अथवा भोग प्रधान पाश्चात्य सभ्यता एव सस्कृति स उतने नही। महाकाव्य के एतिहासिक इतिवृत्त को कल्पना के साँचे म ढालकर

तथा उसमे मनोनुकूल परिवर्तन करके उन्होने इस प्रकार प्रस्तुत किया है कि वह सर्वमगला श्रद्धा के समान ही समस्त विश्व के लिए मगलमय बन गया है। किन्तु इसके साथ ही मनोवैज्ञानिक काम की प्रधानता तथा यथार्थवादी चित्रण की रचनाकालीन प्रवृत्ति की भी वे उपेक्षा नही कर सके। नायक मनु के चरित्र मे बहुपत्नीत्व की प्रवृत्ति,[1] परिवर्तन की पुकार, ग्रह का महत्त्व[2], काम की प्रधानता पशु एव भावी पुत्र के प्रति ईर्ष्या[3] आदि की योजना इसी तथ्य की द्योतक है।

---

१ बाधा नियमो की न पास मे अब आने दो
इस हताश जीवन मे क्षण सुख मिल जाने दो
राष्ट्र स्वामिनी ! यह लो सब कुछ वैभव अपना
केवल तुमको सब उपाय से कह लूँ अपना।
यह सारस्वत देश या कि फिर ध्वस हुआ सा—
समझो तुम हो अग्नि और यह सभी धुँआ सा।
+ + + + +
और एक क्षण वह प्रमाद का फिर से आया
इधर इडा ने द्वार ओर निज पर बढाया।
किन्तु रोक ली गई भुजाओ से मनु की वह
निस्सहाय हो दीन दृष्टि देखती रही वह।
—कामायनी सघर्ष सर्ग पृ० १६६–१६७।

२ जो मेरी है सृष्टि उसी से भीत रहूँ मैं ?
क्या अधिकार नही कि कभी अविनीत रहूँ मैं ?
श्रद्धा का अधिकार समर्पण दे न सका मैं
प्रतिपल बढ़ता हुआ भला कब वहाँ रुका मैं।
× × × × ×
नियम इन्होने परखा फिर सुख साधन जाना
वशी नियामक रहे न ऐसा मैंने माना।
मैं चिर-बन्धन हीन मृत्यु-सीमा उल्लघन,
करता सतत चलूँगा यह मेरा है दृढ प्रण
महानाश की सृष्टि बीच जो क्षण हो अपना
चेतनता की तुष्टि वही है फिर सब सपना।
—कामायनी सघर्ष सर्ग पृ० १६०—१६१।

३ वह विराग-विभूति ईर्ष्या-पवन से हो व्यस्त
बिखरती थी और खुलते ज्वलन कण जो अस्त।
किन्तु यह क्या ? एक तीखी घूँट, हिचकी आह !

प्रेयसी पत्नी तथा प्रेम, मातृत्व एवं मंगल की दिव्य विभूति श्रद्धा को त्याग कर उनका पलायन तथा इडा के साथ अनाचार यदि एक ओर उनके चरित्र की मनोवैज्ञानिक विशेषताओं का उद्घोषक है तो दूसरी ओर यथार्थवादी चित्रण की रचनायुगीन प्रवृत्ति का किसी सीमा तक समर्थक भी यद्यपि अन्ततः वे आदर्शोन्मुख यथार्थवाद से प्रेरित होकर नायक मनु के चरित्र को भी आदर्श के उच्च धरातल पर प्रतिष्ठित कर देते हैं।

## गांधीवादी प्रभाव

प्रसाद के समय में गांधीवाद का बोलबाला था। अतः उनकी कृति पर उसका भी कुछ न कुछ प्रभाव पड़ना अवश्यम्भावी था। कामायनी के कथानक युग में यद्यपि पशु बलि मृगया तथा हिंसा कार्य सब साधारण में प्रचलित थे तथापि कामायनीकार ने अपने युग के गांधीवादी प्रभाव के कारण श्रद्धा द्वारा पशु-बलि एवं हिंसा का विरोध तथा अहिंसा का समर्थन कराया है—

बेनी की निमम प्रसन्नता
पशु की कातर वाणी
मिल कर वातावरण बना था
कोई कुत्सित प्राणी।

---

कौन देता है हृदय में वेदनामय डाह ?
"आह यह पशु और इतना सरल सुन्दर स्नेह !
पल रहे मेरे दिए जो अन्न से इस गेह।
मैं ? कहाँ मैं ? ले लिया करते सभी निज भाग
और देते फेंक मेरा प्राप्य तुच्छ विराग !
—कामायनी, वासना सर्ग पृ० ८४।

तथा

यह जलन नहीं सह सकती मैं
चाहिये मुझे मेरा ममत्व
इस पंचभूत की रचना में
मैं रमण करूँ बन एक तत्त्व।
यह द्वैत अरे यह द्विविधा तो
है प्रेम बाँटने का प्रकार।
भिक्षुक मैं ? ना, यह कभी नहीं
मैं लौटा लूँगा निज विचार।
—कामायनी, ईर्ष्या सर्ग पृ० १५३।

सोमपात्र भी भरा धरा था
पुरोडाश भी आगे
श्रद्धा वहाँ न थी मनु के तब
सुप्त भाव सब जागे।[1]

तथा

अपनी रक्षा करने में जो
चल जाय तुम्हारा कहीं अस्त्र
वह तो कुछ समझ सकी हूँ मैं
हिंसक से रक्षा करे शस्त्र।
पर जो निरीह जीकर भी कुछ
उपकारी होने में समर्थ
वे क्यों न जियें, उपयोगी बन
इसका मैं समझ सकी न अर्थ।[2]

इसी प्रकार गांधीवाद द्वारा प्रदर्शित घरेलू उद्योग धंधों की उपादेयता की झलक भी कामायनी में मिलती है। तकली कातती तथा अपने हाथ से ऊनी वस्त्र बुनती हुई श्रद्धा के गीतों में गांधीवादी तकली चरखे तथा घरेलू उद्योगों के महत्त्व का स्वर मुखरित प्रतीत होता है —

मैं बैठी गाती हूँ तकली के
प्रतिवर्तन में स्वर विभोर
"चल री तकली धीरे धीरे
प्रिय गये खेलने को अहेर।[3]

तथा

यह क्यों क्या मिलते नहीं तुम्हें
शावक के सुन्दर मृदुल चर्म ?
तुम बीज बीनती क्यों ? मेरा
मृगया का शिथिल हुआ न कर्म।
तिस पर यह पीलापन कैसा
यह क्यों बुनने का श्रम सखेद ?
वह किसके लिए, बताओ तो
क्या इसमें है छिप रहा भेद ?

---

१—कामायनी कर्म सर्ग पृ० ११६।
२—वही, ईर्ष्या सर्ग पृ० १४९।
३—वही वही पृ० १५०।

चमड़े उनके आवरण रहें
ऊनों से मेरा चले काम,
वे जीवित हों मांसल बन कर
हम अमृत दुहें वे दुग्ध धाम।[1]

एवं

उस गुफा समीप पुआलों की
छाजन छोटी सी शांति पुंज
कोमल लतिकाओं की डालें
मिल सघन बनातीं जहां कुंज।
थे वातायन भी कटे हुए
प्राचीर पर्णमय रचित शुभ्र
आवें क्षण भर तो चले जायं
रुक जाय कहीं न समीर अभ्र।
उसमें था झूला पड़ा हुआ
वेतसी लता का सुरुचिपूर्ण
बिछ रहा धरातल पर चिकना
सुमनों का कोमल सुरभि चूर्ण।[2]

विनाश बौद्धिकता एवं यांत्रिक सभ्यता का विरोध भी रचनाकालीन गांधीवादी प्रभाव का सकेतक है। निम्नांकित पंक्तियां इस विषय में द्रष्टव्य हैं—

प्रकृत शक्ति तुमने यन्त्रों से सब की छीनी
शोषण कर जीवनी बना दी जर्जर झीनी।[3]

इसी प्रकार साम्प्रदायिक संकीर्णता तथा जाति एवं वर्गगत भेद भाव के उन्मूलन तथा प्राणिमात्र के प्रति प्रेम एवं सहानुभूति के प्रसार का जो संदेश कामायनीकार ने दिया है वह भी एक प्रकार से रचनाकालीन गांधीवाद के प्रभाव का ही द्योतक है।

**बौद्धिकता एवं भौतिकता**

कामायनीकार का युग बुद्धिवाद, भौतिक समृद्धि, वैज्ञानिक उत्थान तथा निरन्तर वर्द्धमान भोगवादी भावनाओं, महत्वाकांक्षाओं एवं असंतोष का युग था। सुख संतोष की अप्राप्ति से उत्पन्न समस्यायें दिन प्रतिदिन विकट से विकटतर होती जा रही थीं। समाधान कहीं दृष्टिगोचर नहीं हो रहे थे। ऐसी स्थिति में उसने रचनायुगीन उक्त प्रवृत्तियों को अपने महाकाव्य में स्थान देते हुए बुद्धि एवं हृदय तथा भौतिकता एवं आध्यात्मिकता के समन्वयात्मक महत्व प्रतिपादन तथा समरसता,

---

१ कामायनी, ईर्ष्या सर्ग पृ० १४६-१४७।
२ वही वही, पृ० १४६।
३ वही संघर्ष सर्ग, पृ० १९९।

मानवता एवं आनन्दवाद की प्रतिष्ठा द्वारा उनसे उत्पन्न समस्याओं के समाधान प्रस्तुत किए। अत इस दृष्टि से भी कामायनी में चित्रित युग जीवन एवं संस्कृति कथानकयुगीन होते हुए भी महाकाव्यकार के युग जीवन एवं संस्कृति से पर्याप्त स्पन्दित है।

इसके अतिरिक्त पति-पत्नी (मनु एवं श्रद्धा) की एक दूसरे को उनके नामो द्वारा सम्बोधित करने की प्रवृत्ति [1] छायावादी शैली एवं गीति-तत्व की योजना तथा स्वदेश प्रेम एवं राष्ट्रीयता की भावनाएं [2] भी रचनाकालीन संस्कृति एवं युग-जीवन के प्रभाव की अभिव्यंजक हैं।

किन्तु यह सब होते हुए भी युग जीवन एवं जातीय संस्कृति के व्यापक चित्रण की कसौटी पर यह महाकाव्य खरा नही उतरता। फिर भी कथानककालीन युग जीवन एवं जातीय संस्कृति की सीमाओं का ध्यान मे रखते हुए इसे इस दृष्टि से भी महाकाव्य की अभिधा प्रदान की जा सकती है।

## समाख्यानात्मकता एवं प्रबन्ध कौशल

समाख्यानात्मकता एवं प्रबन्ध कौशल की दृष्टि से कामायनीकार की सफलता के विषय म मतभेद है। निम्नांकित अवतरण इस विषय म द्रष्टव्य हैं—

(क) कामायनी म प्रेमचन्द के उपन्यासों की तरह एक ही पद्य क्यों कहीं कहीं पृष्ठ भी प्रक्षिप्त किए जा सकते हैं, और कथा के टूटने का भय नही रहता। लज्जा सर्ग यदि सर्वथा लुप्त भी हो जाय तब भी कामायनी के प्रबन्ध मे बाधा नही उपस्थित होती। सच बात तो यह है कि कथा की क्रमबद्धता पर प्रसाद ने ध्यान ही नहीं

---

१ सुन्दर यह तुमने दिखलाया
किन्तु कौन वह श्याम देश है?
कामायनी! बताओ उसमे
क्या रहस्य रहता विशेष है?'

मनु यह श्यामल कर्म लोक है
धुंधला कुछ कुछ अन्धकार सा
सघन हो रहा अविज्ञात यह
देश मलिन है धूम धार सा।'
—कामायनी, रहस्य सर्ग पृ० २६५ २६६।

२ आह सुखी हो आश्रय न यदि उस छाया म
प्राण सदृश तो रमो राष्ट्र की इस काया म।
—कामायनी स्वप्न सर्ग, पृ० १८३।

रता । कथा की समाप्ति मे भी त्वरा दीख पडती है । मनुकुमार ने इडा की आज्ञा म मानकर सारस्वत देश का शासन किस क्रम से किया, विद्रोह का शमन कैसे हुआ आदि प्रश्न जिज्ञासा ही बने रहते हैं । हम तो उन्हें इडा के साथ सहसा कैलास की ओर प्रभावित मात्र देखते हैं मानो वे भी जनरवमय संसार से त्राण पाने को व्याकुल हो उठे हैं ।[1]

(ख) 'महाकाव्य म नाट्य सन्धियो के गुण धर्म की अवतारणा की भी आवश्यकता होती है । इसमे सन्देह नही कि प्रसादजी हिन्दी के श्रेष्ठ नाटककार हैं तो भी कामायनी म नाटकीय तत्त्व होते हुए भी कथा के गठन म नाटकीय सद्प्रभाव का गुरुत्व स्थापित करने में वे विशेष सफल नही । कहीं वर्णन, कही वार्ता कही कथासूत्र को जोडने वाली सन्धियो की अस्पष्टता के कारण कामायनी की कथा उलझी सी लगती है । इस उलझन के मूल म कल्पना और रूपकत्व का ताना-बाना है । लेकिन यह उलझन ऐसी भी नहीं है जिससे कामायनी की कथा के गठन म अत्यधिक शथिल्य जान पडे । तो कोई काव्य महाकाव्य होने से वंचित भी नही हो सकता यदि उसम कथा का गठन बहुत दृढ नही है । कामायनी की शक्ति पर आघात इस तत्त्व की न्यूनता से पडता है । किन्तु यह लाघव दूसरी ओर कामायनी के रूपकत्व की शक्ति बन गया है । कभी कभी वही की कमजोरी भी अन्यत्र शक्ति बनकर महत्ता को आघात नही पहुचने देती । इसलिए कामायनी की कथा का अपना महत्त्व है ।''[2]

(ग) कथानक की मनोरंजकता के लिए जो कामायनी' पढना चाहते हैं उन्हें एक प्रकार से निराश ही होना पडेगा । इस महाकाव्य की कथा तो इतनी स्वल्प है कि उसे दस वाक्यो म कहा जा सकता है । वेदो तथा उपनिषदो आदि के बिखरे हुए कथासूत्र का सुशृंखलित रूप देने का काव्यात्मक प्रयास प्रसाद जी ने किया है । कामायनी म कार्य की प्रधानता नही है । अंतिम तीन सर्गों मे तो व्यापार का अधिकाश म अभाव है । अन्तर्मुखी वृत्ति वाले पाठक तो इस काव्य की उदात्त गम्भीरता तथा दार्शनिक पुष्टता के कारण बहुत अधिक प्रभावित होते हैं और कार्य व्यापार का अभाव भी उनको नही खटकता किन्तु बहिर्मुखी वृत्ति वाले पाठक इसकी दार्शनिकता से आक्रान्त से होकर न इसे विशेष समझ ही पाते हैं, और न इसके खिलाफ ही अपनी

---

१ विनयमोहन शर्मा, कवि प्रसाद आंसू तथा अन्य कृतिया पृ० १०१ १०४ ।

२ सुधाकर पाण्डेय प्रसाद की कविताए, पृ० २८० ।

आवाज उठा सकते हैं । कई प्रश्नवाचक चिह्न एक साथ उनके मस्तिष्क पर अंकित दिखलाई पड़ते हैं ।' [1]

(घ) कथा में स्वाभाविकता और नवीनता लाने की दृष्टि से प्राचीन ग्रन्थों में वर्णित लघु कथाओं को छोड़ दिया गया है । [2]

(ङ) प्रसाद ने ऐसी सावधानी और कौशल से कामायनी की कथा का वस्तु विन्यास किया है जिससे प्राचीन उलझे हुए और अस्पष्ट कथासूत्रों को सुलझा कर एक सुसंगठित कथानक भी निर्मित हो सके और कथा की ऐतिहासिकता पर भी आंच न आने पावे । इसके लिए उन्होंने आधुनिक साहित्य में प्रचलित मनोवैज्ञानिक शैली का सहारा लिया है । मनोवैज्ञानिक उपन्यासों, कहानियों और नाटकों में स्थूल घटनाओं की अधिकता नहीं होती । उनमें मानसिक वृत्तियों की क्रिया प्रतिक्रिया, संघर्ष और उनकी व्याख्या करते हुए कथा को आगे बढ़ाया जाता है । अतः उनमें कथासूत्र बहुत ही क्षीण होता है ।' [3]

स्पष्ट है कि उक्त मतभेद 'मुण्डे मुण्डे मतिर्भिन्ना' तथा 'भिन्न रुचिर्हि लोक' विषयक तथ्य के कारण है । वस्तुतः इस दृष्टि से कामायनीकार की सफलता असंदिग्ध है । घटनाओं के घटाटोप के अभाव में भी उसका कथानक पर्याप्त जीवन्त एवं सुसंगठित है । वस्तुतः कामायनी घटना प्रधान महाकाव्य न होकर भाव प्रधान महाकाव्य है जिसके अन्तराल में रूपकात्मकता, दार्शनिकता एवं मनोवैज्ञानिकता की त्रिवेणी प्रवहमान है । उसके कर्ता का उद्देश्य कथा कहना उतना नहीं है जितना कि वस्तु वर्णन एवं रस सृष्टि करना । यही कारण है कि उसने वस्तु वर्णन एवं रस सृष्टि पर जितना बल दिया है घटना-योजना एवं समाख्यानात्मकता पर उतना नहीं । घटना विरलता वर्णन विस्तार तथा गीतितत्व की योजना के कारण उसकी प्रबन्धधारा की गति कहीं कहीं कुछ मन्द अवश्य है किन्तु महाकाव्यकार के दृष्टिकोण की भिन्नता के कारण वह क्षम्य है । वर्णन विस्तार महाकाव्य की एक अनिवार्य आवश्यकता है अतः इस दृष्टि से महाकाव्यकार को दोषी नहीं ठहराया जा सकता । घटनाओं की विरलता उसमें अवश्य कुछ खटकती है किन्तु इस विषय में यह कहा जा सकता है कि राम अथवा कृष्णकथा प्रकारों के समान प्रसाद के सामने मनु सम्बन्धी पहले से बनी बनाई कोई कथा नहीं थी । प्राचीन वाङ्मय में

---

१ डा० कन्हैयालाल सहल कामायनी का सामान्य परिचय कामायनी-दर्शन पृ० ९९-१०० ।

२ डा० प्रेमशंकर, कामायनी का ऐतिहासिक आधार और वस्तु योजना प्रसाद का काव्य, पृ० २६६ ।

३ डा० शम्भूनाथसिंह हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास, पृ० ६२७ ।

यत्र-तत्र बिखरे सूत्रो को जोडकर उन्होने अपनी कल्पना के आश्रय से उसे महाकाव्य के कथानक का रूप दिया है जो न केवल अरस्तु आदि पाश्चात्य साहित्यशास्त्रियो की आदि, मध्य एव अवसान की स्पष्टता की कसौटी पर खरा उतरता है प्रत्युत नाटकीय अर्थ-प्रकृतियो, कार्यावस्थाओ तथा सन्धियो की दृष्टि से भी महाकाव्योचित्त प्रमाणित होता है। कथानक की शृ खलाए कहीं स्मृति द्वारा कही वार्तालाप द्वारा और कही ऐतिहासिक शैली में कवि के स्वय के वर्णना द्वारा जोडी गई हैं।

कार्यावस्थाओं की दृष्टि से विचार करने से विदित होता है कि चिन्ताग्रस्त मनु का आनन्द प्राप्त करना कार्य है। उनकी चिन्तातुरता, आशावादिता पाक यज्ञ-सलग्नता, तपस्या एव कर्मशीलता मे प्रारम्भ नामक कार्यावस्था है। इसी प्रकार उनके श्रद्धा से मिलन, सम्भोग गृहत्याग एव पलायन इडा के परामर्शानुसार सारस्वत प्रदेश का समुन्नत बनाने और इडा के साथ बलात्कार प्रजा के साथ सघर्ष तथा युद्ध मे क्षत विक्षत एव मूर्च्छित होकर गिरने मे प्रयत्न' श्रद्धा एव मानव द्वारा उनकी खोज *मिलन तथा साथ रहने के आश्वासन आदि मे प्राप्त्याशा'* मनु-श्रद्धा पुनर्मिलन तथा शिव के ताण्डव नृत्य के दर्शन मे अभिभूत हो मनु के श्रद्धा से कैलास पर ले चलने के आग्रह मे नियताप्ति' और अन्तत आनन्द के रहस्योद्घाटन तथा मनु की आनन्द प्राप्ति मे फलागम है।

पाश्चात्य साहित्य शास्त्र मे निर्दिष्ट कार्यावस्थाओ की खोज भी इसी प्रकार 'कामायनी मे की जा सकती है। मनु की चिन्ताशीलता देव सृष्टि के वैभव विलास एव रगीनियो का स्मरण और उसके विनाश के कारणो का उल्लेख एव प्रलय का का वर्णन—तथा उनकी पाक-यज्ञ सलग्नता तपस्या एव कर्मशीलता आदि 'परिचय (Introduction or exposition) के मनु श्रद्धा मिलन एव वार्तालाप, काम की प्रेरणा तथा वासनोदय एव सम्भोग आदि 'प्रारम्भिक घटना (Initial Incident) के और असुर पुरोहितो द्वारा प्रेरित होकर मनु का पशु यज्ञ करना, श्रद्धा की विरक्ति मनु का गृहत्याग एव पलायन इडा मनु मिलन तथा इडा के परामर्श से मनु का सारस्वत प्रदेश का शासन एव उसे समृद्ध बनाना और इडा के साथ बलात्कार आदि कार्यगत जटिलता अथवा वर्द्धमान कार्य (Complication or Rising Action) के द्योतक हैं। मनु का प्रजा के साथ युद्ध और अन्तत अनेकानेक शास्त्रो के भीषण प्रहार तथा प्रलयकारी ज्वाला वाले भयकर रुद्र-नाराच से क्षत विक्षत एव मुमूर्षु मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिरना चरम सीमा' है। मनु श्रद्धा का पुनर्मिलन मनु का पुनपलायन श्रद्धा द्वारा उनकी खोज तथा दोनो का पुनर्मिलन आदि निगति कार्यावस्था के अभिव्यजक हैं और शिव के ताण्डव नृत्य के दर्शन से अभिभूत मनु का श्रद्धा के साथ कैलास गमन त्रिलोक दर्शन श्रद्धा के मुसकराते ही त्रिलोक इच्छा ज्ञान एव कर्म जगत्-का एकीकरण एव मनु की आनन्दोपलब्धि परिसमाप्ति के प्रकेतक हैं।

प्रथ-प्रकृतियों पर विचार करने से स्पष्ट होगा कि मनु की चिन्तातुरता और सृष्टि के विध्वंस से उत्पन्न विषाद विह्वलता तथा जीवन की असमानता, तरलता एवं क्षणभंगुरता 'बीज' प्रथ प्रकृति के अन्तर्गत है। तदनन्तर मनु श्रद्धा मिलन काम की प्रेरणा लज्जा द्वारा प्रस्तुत व्यवधान वासना का उदय एवं सम्भोग मनु द्वारा की गई पशु बलि तथा उनकी ईर्ष्यालुता गृहत्याग एवं पलायन आदि 'बिन्दु' प्रथ प्रकृति के अन्तर्गत हैं। इडा से सम्बद्ध कथाएं प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष रूप में मनु की आनन्द प्राप्ति में सहायक होने के कारण 'पताका' है। आकुलि, किलात एवं शिव ताण्डव आदि से सम्बद्ध लघु कथायें प्रकरी और श्रद्धा की सहायता से मनु की आनन्द प्राप्ति 'कार्य'।

नाटक सन्धियों की योजना की दृष्टि से भी कामायनीकार का प्रबन्ध-कौशल श्लाघनीय है। आशा सर्ग में जलने लगा निरन्तर उनका अग्नि होत्र सागर के तीर' से लेकर श्रद्धा सर्ग के अन्त तक मुख सन्धि काम सर्ग से लेकर कर्म सर्ग तक प्रति मुख सन्धि, ईर्ष्या और इडा सर्गों में 'गर्भ सन्धि, स्वप्न संघर्ष और निर्वेद सर्गों की घटनाओं में 'विमर्श सन्धि और प्रथम बार शिव के ताण्डव-दर्शन मनु-श्रद्धा की कैलास यात्रा, त्रिपुरदाह और इडा-मानव आदि की कैलास यात्रा आदि प्रसंगों एवं घटनाओं में निर्वहण सन्धि है।

ग्रीक साहित्याचार्य अरस्तू द्वारा निर्दिष्ट कथानक की जीवन्तता की कसौटी[1] पर भी कामायनी का प्रबन्धत्व खरा प्रमाणित होता है। उनके द्वारा अपेक्षित कथानक के आदि मध्य एवं अवसान की स्पष्टता कामायनी के कथानक की विशेषता है। जलप्लावन से लेकर मनु के गृहत्याग एवं पलायन तक की घटनाएं उसके आदि की इडा मनु मिलन से लेकर मनु प्रजा-संघर्ष मनु के क्षत विक्षत एवं मुमूर्षु होकर गिरने, मनु श्रद्धा मिलन तथा मनु के पुनर्पलायन तक की घटनाएं उसके मध्य भाग की और मनु द्वारा शिव के ताण्डव नृत्य दर्शन से लेकर अन्त तक की घटनाएं उसके अवसान अथवा अन्तिम भाग की द्योतक हैं। तीनों भागों की घटनाएं कारण कार्य शृंखला के रूप में एक दूसरे से इस प्रकार सम्बद्ध हैं कि कथानक की कड़ियाँ कहीं भी टूटी अथवा अस्वाभाविक रूप से जुड़ी हुई प्रतीत नहीं होतीं। साथ ही प्रत्येक घटना कथा को गतिशील करने तथा उसे अन्तिम लक्ष्य तक पहुँचाने में प्रत्यक्ष परोक्ष किसी न किसी रूप में योग देती है। अतः कथानक की सरिताधारा के यत्र-तत्र मन्द होते हुए भी समाख्यानात्मकता एवं प्रबन्ध कौशल की दृष्टि से कामायनी का महाकाव्यत्व असंदिग्ध है।

1— With respect to that species of poetry which imitates by narration and in hexameter verse it is obvious that the fable ought to be dramatically constructed like that of a tragedy and that it should have for its subject one entire and perfect action having a beginning a middle and an end
—Aristotle s Poetics part III, Edited by T A Moxon p 46 47

## चरित्र चित्रण क्षमता तथा नायक नायिकादि की महत्ता

महाकाव्य की सफलता उसके रचयिता की पात्र कल्पनाकर्त्री क्षमता तथा उसके प्रस्तुतीकरण की शक्ति पर निर्भर है।[1] उसका कथानक, उसकी घटनाएं तथा उसका कलेवर प्राय सभी कुछ उसके पात्रों की जीवन-गाथा तथा उनकी वैयक्तिक विशेषताओं से सम्बद्ध होता है। अत स्वभावत ही महाकाव्यकार उसके पात्रों के व्यक्तित्व के पूर्णातिपूर्ण एव सर्वाधिक प्रभावोत्पादक रूप की प्रतिष्ठा तथा उनकी चारित्रिक विशेषताओं के निदर्शन पर सर्वाधिक बल देता है। यही नहीं उसकी रचना की प्रेरणा भी महाकाव्यकार को प्राय उसके प्रमुखतम पात्र के वैयक्तिक महत्त्व से मिलती है। इस विषय में विश्व कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर का तो यहा तक कहना है—

'मन मे जब एक महत् व्यक्ति का उदय होता है, सहसा जब एक महापुरुष कवि के कल्पना राज्य पर अधिकार आ जमाता है, मनुष्य-चरित्र का उदार महत्त्व जब मनश्चक्षुओं के सामने अधिष्ठित होता है, तब उसके उन्नत भावो से उद्दीप्त होकर उस परम पुरुष की प्रतिमा प्रतिष्ठित करने के लिए, कवि भाषा का मन्दिर निर्माण करते हैं। उस मन्दिर की भित्ति पृथ्वी के गम्भीर अन्तर्देश मे रहती है और उसका शिखर मेघो को भेदकर आकाश मे उठता है। उस मन्दिर मे जो प्रतिमा प्रतिष्ठित होती है, उसके देवभाव से मुग्ध और उसकी पुण्य किरणो से अभिभूत होकर, नाना दिग्देशो से आ आकर, लोग उसे प्रणाम करते हैं। इसी को कहते हैं महाकाव्य।"[2]

उनकी मान्यता है कि महाकाव्य मे सर्वत्र कवित्व के विकास की आशा नहीं की जा सकती। कारण, किसी बडी रचना मे सर्वत्र वह समभाव से प्रस्फुटित हो ही नहीं सकता अत महाकाव्य मे हम सर्वत्र चरित्र विकास तथा चारित्रिक महत्त्व देखना चाहते हैं। उनके अनुसार 'महाकाव्य में एक महच्चरित्र होना चाहिए और उसी महच्चरित्र का एक महत्काय, महदनुष्ठान होना चाहिए।"[3] इसी प्रकार अरस्तू जोला वेलजोक प्रेमचन्द ज्योतिरीन्द्रनाथ ठाकुर, ज्ञानेन्द्रमोहनदास आदि भी महाकाव्य मे चरित्र चित्रण के महत्त्व को अगीकार करते हैं।

---

१–The Success of an epic poem depends upon the author's power of imagining and representing characters

—C M Bowra, Epic Ard Romance p 17

२ मेघनाद वध, मतामत, पृ० १३७।

३ वही, वही, प० ३८।

प्रम-प्रकृतियों पर विचार करने से स्पष्ट होता है कि मनु की चिन्तातुरता देव सृष्टि के विध्वंस से उत्पन्न निराशा विह्वलता तथा पाप मत समाप्ति, तत्पश्चात् एक नवजीवन प्रारम्भ की आशा 'बीज' अर्थ प्रकृति के अन्तर्गत है। तदनन्तर मनु श्रद्धा मिलन काम की प्रेरणा उसके द्वारा प्रस्तुत उपचार, वासना का उदय एवं सम्भोग, मनु द्वारा की गई पशु बलि तथा उनकी ईर्ष्यातुरता गृहत्याग एवं पलायन आदि 'बिन्दु' अर्थ प्रकृति के द्योतक हैं। इड़ा से सम्बद्ध कथानक प्रासंगिक प्रकरण है, मनु की कामना में बाधक न सहायक होने के कारण 'पताका' है। आकुलि, किलात एवं शिव ताण्डव आदि से सम्बद्ध लघु कथायें प्रकरी और श्रद्धा की सहायता से मनु की प्राप्ति और सिद्धि 'कार्य'।

नाटक सन्धियों की योजना की दृष्टि से भी कामायनीकार का प्रबन्ध-कौशल श्लाघनीय है। चिन्ता सर्ग में जलप्लावन तथा निरन्तर उनका प्रश्न होना 'सागर के तीर' से लेकर श्रद्धा सर्ग में प्रस्तुत हुए मुख सन्धि काम सर्ग से लेकर कर्म सर्ग तक प्रति मुख सन्धि, ईर्ष्या और इड़ा सर्गों में गर्भ सन्धि, स्वप्न संघर्ष और निर्वेद सर्गों की घटनाओं में 'विमर्श सन्धि और प्रथम बार शिव के ताण्डव-दर्शन, मनु-श्रद्धा की कैलास यात्रा, त्रिपुरदाह और इड़ा-मानव आदि की कैलास यात्रा आदि प्रसंगों एवं घटनाओं में निर्वहण सन्धि है।

ग्रीक साहित्याचार्य अरस्तू द्वारा निर्दिष्ट कथानक की जीवन्तता की कसौटी[1] पर भी कामायनी का प्रबन्धत्व खरा प्रमाणित होता है। उनके द्वारा अपेक्षित कथानक के आदि मध्य एवं अवसान की स्पष्टता कामायनी के कथानक की विशेषता है। जलप्लावन से लेकर मनु के गृहत्याग एवं पलायन तक की घटनाएं उसके आदि की इड़ा मनु मिलन से लेकर मनु प्रजा संघर्ष मनु के क्षत विक्षत एवं मुमूर्षु होकर गिरने, मनु श्रद्धा मिलन तथा मनु के पुनर्पलायन तक की घटनाएं उसके मध्य भाग की और मनु द्वारा शिव के ताण्डव नृत्य दर्शन से लेकर अन्त तक की घटनाएं उसके अवसान अथवा अन्तिम भाग की द्योतक हैं। तीनों भागों की घटनाएं कारण कार्य शृंखला के रूप में एक दूसरे से इस प्रकार सम्बद्ध हैं कि कथानक की कड़ियाँ कहीं भी टूटी अथवा अस्वाभाविक रूप से जुड़ी हुई प्रतीत नहीं होतीं। साथ ही प्रत्येक घटना कथा को गतिशील करने तथा उसे अन्तिम लक्ष्य तक पहुँचाने में प्रत्यक्ष परोक्ष किसी न किसी रूप में योग देती है। अतः कथानक की सरिताधारा के यत्र-तत्र मन्द होते हुए भी समाख्यानात्मकता एवं प्रबन्ध कौशल की दृष्टि से कामायनी का महाकाव्यत्व असन्दिग्ध है।

1— With respect to that species of poetry which imitates by narration and in hexameter verse it is obvious that the fable ought to be dramatically constructed like that of a tragedy and that it should have for its subject one entire and perfect action having a beginning a middle and an end '
—Aristotle's Poetics part III, Edited by T A Moxon p 46 41

## चरित्र चित्रण क्षमता तथा नायक नायिकादि की महत्ता

महाकाव्य की सफलता उसके रचयिता की पात्र-कल्पनाकर्षी क्षमता तथा उसके प्रस्तुतीकरण की शक्ति पर निर्भर है। [१] उसका कथानक उसकी घटनाएं तथा उसका कलेवर प्राय सभी कुछ उसके पात्रों की जीवन-गाथा तथा उनकी वैयक्तिक विशेषताओं से सम्बद्ध होता है। अत स्वभावत ही महाकाव्यकार उसके पात्रों के व्यक्तित्व के पूर्णातिपूर्ण एव सर्वाधिक प्रभावोत्पादक रूप की प्रतिष्ठा तथा उनकी चारित्रिक विशेषताओं के निदर्शन पर सर्वाधिक बल देता है। यही नहीं उसकी रचना की प्रेरणा भी महाकाव्यकार को प्राय उसके प्रमुखतम पात्र के वैयक्तिक महत्त्व से मिलती है। इस विषय म विश्व-कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर का तो यहा तक कहना है—

'मन में जब एक महत् व्यक्ति का उदय होता है, सहसा जब एक महापुरुष कवि के कल्पना राज्य पर अधिकार आ जमाता है, मनुष्य चरित्र का उदार महत्त्व जब मनश्चक्षुओं के सामने अधिष्ठित होता है, तब उसके उन्नत भावों से उद्दीप्त होकर उस परम पुरुष की प्रतिमा प्रतिष्ठित करने के लिए कवि भाषा का मन्दिर निर्माण करते हैं। उस मन्दिर की भित्ति पृथ्वी के गम्भीर अन्तर्देश म रहती है, और उसका शिखर मेघों को भेदकर आकाश में उठता है। उस मन्दिर म जो प्रतिमा प्रतिष्ठित होती है, उसके देवभाव से मुग्ध और उसकी पुण्य किरणों से अभिभूत होकर, नाना दिग्देशों से आ आकर, लोग उसे प्रणाम करते हैं। इसी को कहते हैं महाकाव्य।" [२]

उनकी मान्यता है कि महाकाव्य मे सवत्र कवित्व के विकास की आशा नहीं की जा सकती। कारण, किसी बडी रचना में सवत्र वह समभाव से प्रस्फुटित हो ही नही सकता अत महाकाव्य में हम सवत्र चरित्र विकास तथा चारित्रिक महत्त्व देखना चाहते हैं। उनके अनुसार 'महाकाव्य में एक महच्चरित्र होना चाहिए और उसी महच्चरित्र का एक महत्कार्य, महदनुष्ठान होना चाहिए।" [३] इसी प्रकार अरस्तू जोला वेलजोक प्रेमचन्द ज्योतिरीन्द्रनाथ ठाकुर, ज्ञानेन्द्रमोहनदास आदि भी महाकाव्य में चरित्र चित्रण के महत्त्व को अंगीकार करते हैं।

---

१–The Success of an epic poem depends upon the author's power of imagining and representing characters

—C M Bowra, Epic Ard Romance, p 17

२ मेघनाद-वध, मतामत, पृ० १३७।

३ वही, वही, पृ० ३८।

अर्थ-प्रकृतियों पर विचार करने से स्पष्ट होगा कि मनु की चिन्तातुरता, देव सृष्टि के विध्वंस से उत्पन्न विषाद विह्वलता तथा पाक यज्ञ संलग्नता, तपस्या एवं यज्ञशीलता 'बीज' अर्थ प्रकृति के अन्तर्गत हैं। तदनन्तर मनु श्रद्धा मिलन काम की प्रेरणा लज्जा द्वारा प्रस्तुत व्यवधान वासना का उदय एवं सम्भोग, मनु द्वारा की गई पशु बलि तथा उनकी ईर्ष्याकुलता गृहत्याग एवं पलायन आदि 'बिन्दु' अर्थ प्रकृति के द्योतक हैं। इड़ा से सम्बद्ध कथानक प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप में मनु की आनन्दोपलब्धि में सहायक होने के कारण 'पताका' है आकुलि, किलात एवं शिव ताण्डव आदि से सम्बद्ध लघु कथायें 'प्रकरी' और श्रद्धा की सहायता से मनु की आनन्दोपलब्धि 'कार्य'।

नाटय सन्धियों की योजना की दृष्टि से भी कामायनीकार का प्रबन्ध-कौशल श्लाघनीय है। आशा सर्ग के 'जलने लगा निरन्तर उनका अग्नि होत्र सागर के तीर' से लेकर श्रद्धा सर्ग के अन्त तक मुख सन्धि, काम सर्ग से लेकर कर्म सर्ग तक प्रतिमुख सन्धि, ईर्ष्या और इड़ा सर्गों में 'गर्भ सन्धि, स्वप्न संघर्ष और निर्वेद सर्गों की घटनाओं में 'विमर्श सन्धि और प्रथम बार शिव के ताण्डव-दर्शन, मनु-श्रद्धा की कैलाश यात्रा, त्रिपुरदाह और इड़ा-मानव आदि की कैलाश यात्रा आदि प्रसंगों एवं घटनाओं में निर्वहण सन्धि है।

ग्रीक साहित्याचार्य अरस्तू द्वारा निर्दिष्ट कथानक की जीवन्तता की कसौटी[1] पर भी कामायनी का प्रबन्धत्व खरा प्रमाणित होता है। उनके द्वारा अपेक्षित कथानक के आदि, मध्य एवं अवसान की स्पष्टता कामायनी के कथानक की विशेषता है। जलप्लावन से लेकर मनु के गृहत्याग एवं पलायन तक की घटनाएं उसके आदि की इड़ा मनु मिलन से लेकर मनु प्रजा-संघर्ष मनु के क्षत विक्षत एवं मुमूर्षु होकर गिरने, मनु श्रद्धा मिलन तथा मनु के पुनर्पलायन तक की घटनाएं उसके मध्य भाग की और मनु द्वारा शिव के ताण्डव नृत्य दर्शन से लेकर अन्त तक की घटनाएं उसके अवसान अथवा अन्तिम भाग की द्योतक हैं। तीनों भागों की घटनाएं कारण कार्य शृंखला के रूप में एक दूसरे से इस प्रकार सम्बद्ध हैं कि कथानक की कड़ियाँ कहीं भी टूटी अथवा अस्वाभाविक रूप से जुड़ी हुई प्रतीत नहीं होतीं। साथ ही प्रत्येक घटना कथा को गतिशील करने तथा उसे अन्तिम लक्ष्य तक पहुँचाने में प्रत्यक्ष-परोक्ष किसी न किसी रूप में योग देती है। अतः कथानक की सरितधारा के यत्र-तत्र मन्द होते हुए भी समाख्यानात्मकता एवं प्रबन्ध कौशल की दृष्टि से कामायनी का महाकाव्यत्व असंदिग्ध है।

1— With respect to that species of poetry which imitates by narration and in hexameter verse it is obvious that the fable ought to be dramatically constructed like that of a tragedy and that it should have for its subject one entire and perfect action having a beginning a middle and an end

—*Aristotle's Poetics part III, Edited by T A Moxon p 46 41*

ताओं से परे नहीं होते, किसी न किसी दुर्बलता के लक्ष्य अवश्य होते हैं। अतः साहित्य में महान् पात्रों में विनियोजित दुर्बलताएं उन्हें यथार्थ जीवन के निकट लाकर अपेक्षाकृत अधिक स्वाभाविक एवं प्रभविष्णु बना देती हैं। इसी विचारधारा से प्रेरित होकर प्रसाद जी ने अपनी कृतियों में महान् पात्रों में भी दुर्बलताओं की योजना की है। किंतु इसके साथ ही आदर्शवादी विचारधारा से प्रभावित होने के कारण कतिपय पात्रों में उन्होंने दुर्बलताओं की योजना की चिन्ता नहीं की। फिर भी अधिकतर पात्रों के विषय में उनका आदर्शोन्मुख यथार्थवादी सिद्धान्त ही लागू होता है। उनके महान् से महान् पात्र भी किसी न किसी मानवोचित दुर्बलता के लक्ष्य हैं। यह बात दूसरी है कि किसी में दुर्बलताओं एवं मनोवैज्ञानिक यथार्थताओं का आधिक्य है और किसी में अपेक्षाकृत न्यूनता। कामायनी के मनु प्रथम प्रकार के पात्रों के अन्तर्गत आते हैं और इडा द्वितीय प्रकार के पात्रों के अन्तर्गत। दिव्य रूप लावण्यमयी श्रद्धा यद्यपि अनेकानेक गुणों का पुंजीभूत भास्वर रूप है तथापि उसके चरित्र में भी कुछ न कुछ मानवोचित दुर्बलता एवं मनोवैज्ञानिक यथार्थता का यत्र-तत्र आभास मिलता है। श्रद्धा सर्ग में श्रद्धा मनु प्रथम मिलन में उसके द्वारा मनु का उद्बोधन किसी दृष्टि से उसकी महत्ता का अभिव्यंजक भले ही हो किन्तु भिन्न दृष्टि से देखने पर वह उसकी मनोवैज्ञानिक दुर्बलता एवं यथार्थता का उद्घोषक है। इसी प्रकार पशुबलि के कर्ता मनु के साथ उसका असहयोग, मान, रूठना, तथा पश्चात्तापशीला एवं आश्रयदायिनी इडा से उसका यह कथन कि 'सिर चढ़ी रही पाया न हृदय' आदि भी उसके चरित्र के विभिन्न मनोवैज्ञानिक पक्षों का उद्घाटन करते हैं जो उसे आदर्शलोक की किसी दिव्य विभूति के बजाय यथार्थ जीवन की एक महान् नारी सिद्ध करते हैं।

कामायनीकार की चरित्र चित्रण क्षमता का अनुमान केवल इस तथ्य से ही किया जा सकता है कि उसके पात्र जीते जागते मनुष्यों से कम प्रभावशाली नहीं। उनके व्यक्तित्वों की छाप अध्येताओं के हृदय पटल पर सदा सर्वदा के लिए अंकित हो जाती है, उनके कार्य व्यापार उनकी ओर ध्यान जाते ही उनके मनश्चक्षुओं के समक्ष उपस्थित हो जाते हैं, उनके संदेश उनके कानों में गूंजते हुए उनके हृदय को प्रभावित करने लगते हैं और वे उनके स्रष्टा की अप्रतिम प्रतिभा का ध्यान कर अभिभूत हो उठते हैं। उनके चरित्र चित्रण की निम्नांकित विशेषताएं उनकी तद्विषयक कुशलता की अभिव्यंजक हैं —

### महान् सौन्दर्य द्रष्टा

महाकाव्यकार की सबसे बड़ी विशेषता उसकी सौंदर्य-सृजनकर्त्री क्षमता है। प्रसाद सौन्दर्य के सूक्ष्म पारखी ही नहीं, उसके कुशल स्रष्टा भी थे। उनका युग नारी-महिमा गान का युग था और उनके हृदय में नारी जाति के प्रति अगाध श्रद्धा थी। नारी महिमानुभूति से अभिभूत उनका हृदय उसके समक्ष श्रद्धावनत हो उठता था।

प्रसाद जी भारतीय रसवादी परम्परा के कलाकार हैं। अतः रस सिद्धान्त की महत्ता की गहरी छाप है। अतः स्वभावतः ही उनकी दृष्टि में चरित्र चित्रण का पर्याप्त महत्त्व होते हुए भी उसका स्थान रस के उपरान्त आता है। इस विषय में वे लिखते हैं—

"आत्मा की अनुभूति व्यक्ति और उसके चरित्र-वैचित्र्य को लेकर ही अपनी सृष्टि करती है। भारतीय दृष्टिकोण रस के लिए चरित्र और व्यक्ति-वैचित्र्य को रस का साधन मानता रहा, साध्य नहीं। रस में चमत्कार ले आने के लिए रस को बीच का माध्यम ही मानता आया।" [1]

अतः कामायनी में भी उन्होंने रस को साध्य और चरित्र चित्रण को साधन मानकर रस निष्पत्ति के लिए ही अपने पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं को उभारने का प्रयत्न किया। साथ ही अपनी समन्वयवादी भावना एवं दृष्टिकोण के वैशिष्ट्य के कारण उन्होंने यदि एक ओर रचनाकालीन यथार्थवादी चित्रण से प्रभावित होकर मनोवैज्ञानिक यथार्थ की महाकाव्योचित अभिव्यक्ति की तो दूसरी ओर विश्व कल्याण एवं सामाजिक उत्थान के लिए प्राचीन भारतीय संस्कृति एवं उसके द्वारा समर्थित आदर्शवाद का अवलम्ब लिया। दूसरे शब्दों में उन्होंने प्राचीन आदर्शवाद तथा आधुनिक यथार्थवाद के अतिवादी स्वरूपों को त्याग कर दोनों में समन्वय स्थापित करते हुए मध्यम मार्ग का अनुसरण किया। उनकी मान्यता थी—'साहित्य समाज की वास्तविक स्थिति क्या है, इसको दिखाते हुए भी उसमें आदर्शवाद का सामंजस्य स्थिर करता है। दुःख-दग्ध जगत् और आनन्दपूर्ण स्वर्ग का एकीकरण साहित्य है।" [2]

महाकाव्यकार समाज का एक सदस्य है। उसके उद्धार उत्थान अथवा कल्याण की कामना उसके लिए उतनी ही स्वाभाविक है जितनी कि उसके अन्य सदस्यों के लिए कामायनीकार प्रसाद भी इसके अपवाद नहीं हैं। अपने पात्रों द्वारा उन्होंने दुःखदग्ध जगत् को आनन्दपूर्ण स्वर्ग बनाने का जो प्रयत्न किया है वह निस्संदेह श्लाघनीय है। उनके पात्रों का व्यक्तित्व तथा उनकी चरित्रगत विशेषताओं की स्वाभाविकता उनके चरित्र निर्माण कौशल की परिचायिका है। उनकी पात्र कल्पना के मूल में उनका एक विशिष्ट उद्देश्य रहा है। पात्रों की भीड़ की उन्हें आवश्यकता न थी अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्हें जितने पात्रों की आवश्यकता प्रतीत हुई, उनके व्यक्तित्व, स्वरूप एवं चारित्रिक विशेषताओं की सृष्टि उनके कल्पना प्रवण मस्तिष्क एवं चरित्र निर्माण पटु महाकाव्यकार ने कर डाली। उनका यह कथन कि यथार्थवाद क्षुद्रों का ही नहीं, अपितु महानों का भी है," [3] इस तथ्य का द्योतक है कि महान् पात्र भी दुर्बल-

---

१ जयशंकर प्रसाद काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध, पृ० ८५।

२ वही, वही, वही।

३ वही वही पृ० १२२।

ताओं से परे नहीं होते, किसी न किसी दुर्बलता के लक्ष्य अवश्य होते हैं। अत साहित्य में महान् पात्रों में विनियोजित दुर्बलताए उन्हें यथार्थ जीवन के निकट लाकर अपेक्षाकृत अधिक स्वाभाविक एव प्रभविष्णु बना देती हैं। इसी विचारधारा से प्रेरित होकर प्रसाद जी ने अपनी कृतियों म महान् पात्रा में भी दुर्बलताओं की योजना की है। किन्तु इसके साथ ही आदर्शवादी विचारधारा से प्रभावित होने के कारण कतिपय पात्रा म उन्होंने दुर्बलताओं की योजना की चिन्ता नहीं की। फिर भी अधिकतर पात्रों के विषय मे उनका आदर्शोन्मुख यथार्थवादी सिद्धान्त ही लागू होता है। उनके महान् से महान् पात्र भी किसी न किसी मानवोचित दुर्बलता के लक्ष्य हैं। यह बात दूसरी है कि किसी में दुर्बलताओं एव मनोवैज्ञानिक यथार्थताओं का आधिक्य है और किसी म अपेक्षाकृत न्यूनता कामायनी के मनु प्रथम प्रकार के पात्रों के अन्तर्गत आते हैं और इडा द्वितीय प्रकार के पात्रों के अन्तर्गत। दिव्य रूप लावण्यमयी श्रद्धा यद्यपि अनेकानेक गुणो का पु जीभूत भास्वर रूप है तथापि उसके चरित्र मे भी कुछ न कुछ मानवोचित दुर्बलता एव मनोवैज्ञानिक यथार्थता का यत्र-तत्र आभास मिलता है। श्रद्धा सर्ग में श्रद्धा मनु प्रथम मिलन म उसके द्वारा मनु का उद्बोधन किसी दृष्टि से उसकी महत्ता का अभिव्यजक भले ही हो किन्तु भिन्न दृष्टि से देखने पर वह उसकी मनोवैज्ञानिक दुर्बलता एव यथार्थता का उद्घोषक है। इसी प्रकार पशुबलि के कर्ता मनु के साथ उसका असहयोग, मान, रूठना, तथा पश्चात्तापशीला एव आश्रयदायिनी इडा से उसका यह कथन कि सिर चढ़ी रही पाया न हृदय" आदि भी उसके चरित्र के विभिन्न मनोवैज्ञानिक पक्षो का उद्घाटन करते हैं जो उसे आदर्शलोक की किसी दिव्य विभूति के बजाय यथार्थ जीवन की एक महान् नारी सिद्ध करते हैं।

कामायनीकार की चरित्र चित्रण क्षमता का अनुमान केवल इस तथ्य से ही किया जा सकता है कि उसके पात्र जीते जागते मनुष्यो से कम प्रभावशाली नही। उनके व्यक्तित्वों की छाप अध्येताओ के हृदय पटल पर सदा सर्वदा के लिए अकित हो जाती है उनके कार्य व्यापार उनकी ओर ध्यान जाते ही उनके मनश्चक्षुओ के समक्ष उपस्थित हो जाते हैं उनके सदेश उनके कानो में गू जते हुए उनके हृदय को प्रभावित करने लगते हैं और वे उनके स्रष्टा की अप्रतिम प्रतिभा का ध्यान कर अभिभूत हो उठते हैं। उनके चरित्र चित्रण की निम्नांकित विशेषताए उनकी तद्विषयक कुशलता की अभिव्यजक हैं —

## महान् सौन्दर्य द्रष्टा

महाकाव्यकार की सबसे बडी विशेषता उसकी सौन्दर्य सृजनकर्त्री क्षमता है। प्रसाद सौन्दर्य के सूक्ष्म पारखी ही नहीं, उसके कुशल स्रष्टा भी थ। उनका युग नारी-महिमा गान का युग था और उनके हृदय म नारी जाति के प्रति अगाध श्रद्धा थी। नारी महिमानुभूति से अभिभूत उनका हृदय उसके समक्ष श्रद्धावनत हो उठता था।

यही कारण है कि अपने साहित्य में उन्हें नारी-पात्रों के चरित्र चित्रण में जितनी सफलता मिली, पुरुष पात्रों के चरित्र चित्रण में उतनी नहीं। नारी सौन्दर्य के जो भव्य मार्मिक एवं अविस्मरणीय चित्र प्रसाद जी ने अंकित किए हैं, उन्हें देखकर पाठक उनकी महती सौन्दर्य सृजनकर्त्री क्षमता का ध्यान कर विस्मय विमुग्ध हो उठता है। उनकी श्रद्धा का रूप चित्र विश्व साहित्य की अनुपम निधि है —

नील परिधान बीच सुकुमार
  खुल रहा मृदुल अधखुला अंग
खिला हो ज्यों बिजली का फूल
  मेघ वन बीच गुलाबी रंग।
आह! वह मुख! पश्चिम के व्योम
  बीच जब घिरते हों घनश्याम,
अरुण रवि मण्डल उनको भेद
  दिखाई देता हो छविधाम।
या कि, नव इन्द्र नील लघु शृंग
  फोड़ कर धधक रही हो कान्त
एक लघु ज्वालामुखी अचेत
  माधवी रजनी में अश्रान्त।
घिर रहे थे घुंघराले बाल
  अंस अवलम्बित मुख के पास।
नील घन शावक से सुकुमार
  सुधा भरने को विधु के पास।
और उस मुख पर वह मुसक्यान
  रक्त किसलय पर ले विश्राम।
अरुण की एक किरण अम्लान
  अधिक अलसाई हो अभिराम।[1]

यही नहीं उनके सौन्दर्य चित्र स्वाभाविकता वैविध्य एवं औचित्य में भी अपना सानी नहीं रखते। श्रद्धा, लज्जा तथा इडा तीनों की अपनी पृथक पृथक विशेषताएं हैं। लज्जा गौण पात्र है और पात्र से भी कहीं अधिक एक मनोवृत्ति के रूप में चित्रित हुई है। अतः उसके बाह्य रूपाकार के चित्रण का प्रश्न ही नहीं उठता। फिर भी उन्होंने उसके कार्य व्यापारों एवं स्वरूप निर्देशक लक्षणों का जो चित्र प्रस्तुत किया है, वह बड़ा ही स्वाभाविक एवं प्रभावोत्पादक है इडा बुद्धि की प्रतीक ही नहीं, महत्त्वपूर्ण नारी पात्र भी है। अतः स्वभावतः ही महाकाव्यकार ने उसके बाह्य

---

१ कामायनी श्रद्धा सर्ग पृ० ४६-४७।

रूपाकार के चित्रण का प्रयत्न किया है। कहने की आवश्यकता नहीं कि उसके नाम एवं व्यक्तित्व के अनुरूप ही प्रसाद जी ने उसके बाह्य रूपाकार एवं सौंदर्य की भी कल्पना की है —

बिखरीं अलकें ज्यों तर्क जाल।
वह विश्व मुकुट सा उज्ज्वलतम शशिखण्ड सदृश था स्पष्ट भाल,
दो पद्म पलाश चषक से दृग देते अनुराग विराग ढाल।
गुंजरित मधुप से मुकुल सदृश वह आनन जिसमें भरा गान
वक्षस्थल पर एकत्र धरे संसृति के सब विज्ञान ज्ञान।
था एक हाथ में कर्म कलश वसुधा जीवन रस सार लिए,
दूसरा विचारों के नभ को था मधुर अभय अवलम्ब दिए।
त्रिवली थी त्रिगुण तरंगमयी, आलोक वसन लिपटा अराल,
चरणों में थी गति भरी ताल।[1]

पुरुष सौंदर्य की अपनी कुछ पृथक विशेषताएं हैं। नारी सौंदर्य की अभिव्यक्ति के लिए अपेक्षित उपकरण उसके लिए आवश्यक नहीं। कामायनीकार इस तथ्य से परिचित है। यही कारण है कि उसने मनु के व्यक्तित्व में पुरुषोचित गुणों एवं विशेषताओं की योजना करके उसे स्वाभाविक पुरुषोचित रूप में प्रस्तुत किया है। किन्तु इस विषय में तात्पर्य है कि पुरुष पात्रों के रूप चित्रण में कामायनीकार की वृत्ति रमी नहीं। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी यह स्वाभाविक ही है। 'मोह न नारि नारि के रूपा' वाली तुलसी की उक्ति भी यही कहती है।

## सफल चरित्र स्रष्टा

कामायनीकार "प्रयोजनमनुद्दिश्य मूढोऽपि न प्रवर्तते" सिद्धान्त का समर्थक मानवतावादी कलाकार है। साहित्य द्वारा विश्वमंगल में योग देना वह अपना कर्तव्य समझता है। यही कारण है कि अपने उद्देश्य की सिद्धि के लिए उसके अनुकूल ही उसने अपने पात्रों का भी स्वरूप निर्माण किया है। उसकी नायिका श्रद्धा सेवा, त्याग सहिष्णुता, करुणा क्षमा, ममत्व, सारल्य पातिव्रत्य, निष्कपटता विश्वास आदि अनेकानेक गुणों का पुंजीभूत भास्वर रूप, नारीत्व का चरम आदर्श, मातृत्व की विमल विभूति तथा वस्तुतः सर्वमंगला है। वह केवल मानव जगत् की ही नहीं, समस्त प्राणि-जगत् की मंगलाकांक्षिणी है। उसका महान् व्यक्तित्व कामायनीकार की महती व्यक्ति व निर्माण क्षमता का द्योतक है। अपने उद्देश्य के अनुकूल उसकी महत्व प्रतिष्ठा में प्रसाद जी को जो सफलता मिली है, वह वस्तुतः आश्चर्य स्तब्ध कर देने वाली है। इसी प्रकार मनु, इडा, मानव आदि पात्रों को भी अभीष्ट रूप देकर महाकाव्यकार ने अपनी तद्विषयक प्रतिभा का परिचय दिया है।

---

१ कामायनी इडा सर्ग, पृ० १६८।

औरों को हंसते देखो मनु
हंसो और सुख पाओ
अपने सुख को विस्तृत करलो
सब को सुखी बनाओ।
रचना मूलक सृष्टि यज्ञ यह
यज्ञ पुरुष का जो है,
संसृति सेवा भाग हमारा
उसे विकसने को है।[1]

अपने इसी महान् व्यक्तित्व तथा उसके त्याग, सहिष्णुता क्षमाशीलता, पातिव्रत्य, उदारता, करुणा आदि गुणों के बल पर वह मनु की पथ प्रदर्शिका बन कर उन्हें कैलास यात्रा कराती है और त्रिलोक का दर्शन कराकर परमानन्द की प्राप्ति में योग देती है।

नायक मनु चरित्र चित्रण विषयक प्रसाद की समन्वयवादी भावना की सृष्टि हैं। अत यथार्थवाद एवं आदर्शवाद दोनों से ही प्रभावित होने के कारण उनमें दोनों का ही पुट है। उनमें यदि एक ओर मनोवैज्ञानिक दुर्बलताएं, परिवर्तन की कामना, बहुपत्नीत्व की प्रवृत्ति कामुकता ईर्ष्या अधिकार लिप्सा अहंवाद तथा अधिनायकवादी प्रवृत्तियां हैं तो दूसरी ओर आदर्श रूपाकार बल वीर्य, शक्ति सामर्थ्य एवं अपार पराक्रम है। उनकी दृढता कठोरता, प्रशासनिक क्षमता एवं तत्परता पुरुषोचित एवं युगानुकूल है किन्तु उनका श्रद्धा के प्रति दुर्व्यवहार तथा इडा के प्रति बलात्कार खटकता है और ऐसी स्थिति में वे नायकत्व के अधिकारी प्रतीत नहीं होते किन्तु उनकी पश्चात्तापशीलता एवं विरक्ति उन्हें जिस पथ का पथिक बना देती है उस पर चलकर वे श्रद्धा के सहयोग से वस्तुत महान् बन जाते हैं। उनका व्यक्तित्व कामायनीकार द्वारा अपनाई गई चरित्र चित्रण की मनोवैज्ञानिक पद्धति का प्रतिफल है। अत स्वभावत ही वह महाकाव्यो चित नायक की महत्ता की कसौटी पर खरा नहीं उतरता है। साधारणीकरण एवं तादात्म्य स्थापन के लिए आवश्यक था कि उनके व्यक्तित्व में अनेकानेक महान् गुणों की योजना की जाती। यही नहीं ऐतिहासिक दृष्टि से उनके व्यक्तित्व में जिन गुणों का होना संदिग्ध भी होता उनकी योजना भी उसे महान् रूप प्रदान करने के लिए आवश्यक थी। नायकत्व की महत्त्व प्रतिष्ठा के लिए ऐतिहासिक प्रमाणों के अभावों में भी इस प्रकार की सृष्टि प्राचीन काल से की जाती रही है और इसके लिए महाकाव्यकार अपनी कल्पना के आश्रय से अन्य महापुरुषों के

---

१— कामायनी, कर्म सर्ग, पृ० ११२।

महान् गुणों की योजना भी एक ही नायक में करके अपना अभीष्ट सिद्ध करते हैं।[1]

ऐतिहासिक दृष्टि से अपने मूल रूप में उनके व्यक्तित्व के दो रूप थे १ अनाचार का दमनकर्ता दण्डनीति का विधायक तथा शांति एवं सुव्यवस्था का प्रतिष्ठाता २ वेदाध्ययनकर्ता ज्ञान विज्ञान सम्पन्न स्मृतिकार। प्रथम प्रजापति रूप है जो कामायनी में भी मनु इडा प्रसंग में मिलता है। द्वितीय वैदिक कर्मकाण्डी ऋषि रूप है जिसकी योजना कामायनी में भी जलप्लावन से श्रद्धा-त्याग तक मानी जा सकती है और जिसके दो पक्ष हैं—प्रथम किलाताकुलि के आने से पूर्व तपस्वी मनु का एवं द्वितीय हिंसक यजमान मनु का। किन्तु महाकाव्यकार की चरित्र चित्रण क्षमता एवं कल्पना शक्ति ने कामायनी में उनके व्यक्तित्व के एक नए रूप की भी सृष्टि की है और वह है आनन्द पथ के पथिक मनु का। कामायनीकार ने जहाँ एक ओर उनके व्यक्तित्व के कलंक मार्जन के लिए ऐतिहासिक दृष्टि से उनकी हविष्योत्पन्न पुत्री इडा को सारस्वत प्रदेश की रानी के रूप में प्रस्तुत किया है, वहाँ दूसरी ओर उनके व्यक्तित्व की मनोवैज्ञानिक यथार्थताओं एवं दुर्बलताओं के प्रदर्शन का लोभ संवरण न कर सकने के कारण उनका उद्घाटन भी किया है। अतः मनोवैज्ञानिक एवं यथार्थवादी दृष्टिकोण से महान् माने जाने पर भी[2] उनके व्यक्तित्व में महाकाव्योचित नायक की दृष्टि से कतिपय खटकने वाली बातें भी हैं

---

1–A hero is known by his name and certain marked characteristics in his behaviour The result is that poets tend to create a single recognizable figure and to include in it traits which come from other men This is all the more easier when the hero shares a name with other historical figures

—C M Bowra Heroic Poetry, Page 524

२–'आधुनिक युग में चरित्र की मान्यता में परिवर्तन हो गया है। आज तो यह माना जाता है कि चरित्रों को मनुष्य पहले होना चाहिए और आदर्श या यथार्थवाद में। उसी तरह आज आदर्शवाद का अर्थ मानवतावादी आदर्शवाद हो गया है जिसमें कोई व्यक्ति मानव सहज दुर्बलताओं से संघर्ष करता हुआ बार बार पापपंक में फँसकर उससे निकलता हुआ मानव पूर्णता की ओर अग्रसर होता है और लक्ष्य प्राप्त करता है। अतः महान् या आदर्श व्यक्ति आज वही है जिसका चरित्र स्थिर नहीं गतिशील और विकासोन्मुख है और जो अपने को अधिक से अधिक नि:स्व करके लोकहित के लिए आत्मार्पण कर देता है। इस तरह मानवतावादी आदर्शवाद में यथार्थ और आदर्श का अत्यन्त सुन्दर समन्वय है। कामायनी के चरित्रों की सृष्टि इसी मानवतावादी आदर्शवाद की प्रेरणा से

यद्यपि उनका बल पराक्रम, शक्ति सामर्थ्य, आदर्श रूप आकार, प्रशासनिक क्षमता, सहानुभूतिशीलता आदि महान् गुणों का पुंजीभूत व्यक्तित्व तथा आनन्द के चरम सोपान पर अधिष्ठित विश्वकल्याणकामी एवं 'वसुधैवकुटुम्बकम्' की भावना से भावित उसका परिष्कृत एवं तप पूत रूप निस्सन्देह महान् है।

श्रद्धा के समान ही इडा के व्यक्तित्व की महत्ता भी निर्विवाद है। उसके व्यक्तित्व के विभिन्न गुण—रूप-सौन्दर्य, बुद्धि विवेकशीलता क्षमा, सहिष्णुता पश्चात्तापशीलता, त्याग, विरक्ति एवं विनम्रता आदि—उसकी महत्त्व प्रतिष्ठा में कोई कमी नहीं रहने देते। उसका शुचि दुलारमय वात्सल्य, मौन साधन, सकोच शीलता, सेवाशीलता कष्ट सहिष्णुता श्रद्धाशीलता एवं "गैरिकवसना सन्ध्या सा"[१] रूप सभी उसके व्यक्तित्व की महत्ता के अभिव्यंजक हैं।

इस प्रकार कामायनीकार की चरित्र चित्रण क्षमता के विभिन्न पक्षों के उद्-घाटन तथा उक्त प्रमुख पात्रों के व्यक्तित्व विश्लेषण से स्पष्ट है कि चरित्र चित्रण क्षमता तथा नायक-नायकादि की महत्ता की कसौटी पर कामायनी का महाकाव्यत्व पर्याप्त खरा प्रमाणित होता है।

## महान् उद्देश्य एवं महती प्रेरणा

'प्रयोजनमनुद्दिश्य मूढोऽपि न प्रवर्तते" के अनुसार बिना प्रयोजन के मूर्ख भी कोई कार्य नहीं करता। महाकाव्यकार भी इसका अपवाद नहीं है। अपनी महासृष्टि के अनुरूप ही वह किसी महान् उद्देश्य को लेकर चलता है जो उसकी सम्पूर्ण सृष्टि में मानव शरीर की धमनियों में प्रवहमान रक्त धारा के समान परिव्याप्त रहता है। पौरस्त्य एवं पाश्चात्य, प्राचीन एवं अर्वाचीन सभी साहित्यकार प्रधान अथवा गौण किसी न किसी रूप में इसे मान्यता देते हैं। प्राचीन यूनानी जाति तो साहित्यकारों

---

हुई है। उसमें कोई भी चरित्र ऐसा नहीं है जिसका व्यक्तित्व आदर्शों के बोझ से दब कर पंगु हो गया हो या जिसका मानव सुलभ सहज विकासोन्मुख और गतिशील जीवन न हो।"

———डा॰ शम्भूनाथसिंह हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास,

पृ॰ ६३७-६३८।

चल रही इडा भी वृष के
दूसरे पार्श्व में नीरव,
गैरिक वसना सन्ध्या सी
जिसके चुप थे सब कलरव।
—कामायनी आनन्द सर्ग, पृ॰ २७१।

को सार्वजनिक उपदेशक ही समझती थी।[1] किन्तु यदि ऐसा न भी माना जाए तो भी कम से कम इतना तो कहा ही जा सकता है कि महाकाव्यकार अपनी गुरु गम्भीर रचना के अनुरूप ही उसमें विभिन्न मंगलकारी मूल्यों की प्रतिष्ठा के उद्देश्य को लेकर चलता है। धर्म की अधर्म पर, न्याय की अन्याय पर, सत् की असत् पर, विवेक की अविवेक पर, सद्वृत्ति की दुर्वृत्ति पर विजय दिखा कर वह अपनी कृति की महत्त्व-वृद्धि करता है और इस प्रकार 'कीरति भनिति भूति भलि सोई। सुरसरि सम सब कहँ हित होई॥'[2] उक्ति का परिपोष करता हुआ विश्व मंगल में योग देता है। कामायनीकार भी साहित्य द्वारा समाज के निर्माण का प्रबल समर्थक है। युग जीवन के विशुद्ध रूप के परिष्करण एवं श्रेष्ठ मानवता के पथ प्रदर्शन, ज्वलन्त सामयिक एवं शाश्वत समस्याओं के समाधान तथा अनुत्तरित प्रश्नों के उत्तरों द्वारा समाज राष्ट्र एवं मानवता के कल्याण में योग देना उनके साहित्यिक जीवन का परम लक्ष्य है। यही कारण है कि कामायनी में स्थान-स्थान पर जीवन के मांगलिक तत्त्वों का अभिनिवेश है। यही नहीं, उसकी रचना की मूल प्रेरणा भी जीवन के विकृत रूप के संशोधन, परिष्करण एवं पुनर्निर्माण का सबल अथवा स्थायी भाव है। उसके मनु मन अथवा सामान्य मानव के प्रतीक हैं, जिसकी मनोवैज्ञानिक यथार्थता एवं दुर्बलता मानव मात्र की यथार्थता एवं दुर्बलता है जिसके निराकरण के अनन्तर ही वह श्रद्धा एवं बुद्धि (हृदय एवं मस्तिष्क) के सहयोग, प्रेरणा एवं पथ प्रदर्शन द्वारा इच्छा, ज्ञान एवं कर्म का समन्वय स्थापित करता हुआ अखण्ड आत्मानन्द की प्राप्ति कर सकता है। दुर्बलताओं से मुक्त मनु भौतिकता से विरक्त होकर श्रद्धा के पथ प्रदर्शन, सहयोग एवं सम्बल द्वारा इसी स्थिति में पहुँच जाते हैं—

महा ज्योति रेखा सी बनकर
श्रद्धा की स्मिति दौड़ी उनमें,
वे सम्बद्ध हुए फिर सहसा
जाग उठी थी ज्वाला जिनमें।

---

1–The Greeks regarded writers as public teachers not in any pompous or an arid sense but with a lively conviction that the highest lessons about men are best conveyed by poets in a noble and satisfying form The writers respondent to this confidence thought that they owed to their p ople the best that they could give

—C M Bowra, Introduction, Landmarks in Greek Literature, P 19

२–तुलसी, रामचरितमानस, बालकाण्ड पृ० ४६।

नीचे ऊपर लचकीली वह
विषम वायु म धधक रही सी,
महाशून्य मे ज्वाल सुनहली,
सबको कहती 'नही नहीं' सी ।
शक्ति तरग प्रलय पावक का
उस त्रिकोण मे निखर उठा सा
शृग और डमरू निनाद बस
सकल विश्व म बिखर उठा सा ।
चितिमय चिता धधकती अविरल
महाकाल का विषम नृत्य था
विश्व रन्ध्र ज्वाला से भरकर
करता अपना विषम कृत्य था ।
स्वप्न स्वाप, जागरण भस्म हो
इच्छा क्रिया ज्ञान मिल लय थे
दिव्य अनाहत पर निनाद में
श्रद्धायुत मनु बस तन्मय थे ।

यही अखण्ड आत्मानन्द प्राप्ति प्रमाद के अनुसार जीवन का चरम साध्य है । कवि ने जिस त्रिपुर का दर्शन कराया है और जिसे उसने कर्मभूमि, भावभूमि और ज्ञानभूमि की सज्ञा दी है वे क्रमश भौतिक मानसिक और आध्यात्मिक जगत् के द्योतक हैं । पृथक-पृथक होने के कारण तीनो अपूर्ण भ्रमित एव अशान्त हैं । इसी अत या त्रिगुण का पुराणो म त्रिपुर का रूप दिया गया है जिससे सृष्टि मात्र पीडित है और जिसका वध करके शिव सृष्टि की रक्षा करते हैं । कहने की आवश्यकता नही कि आत्मानन्द की प्राप्ति की इस स्थिति मे सासारिक जीवन-सघर्ष-मारकाट, नोच-खसोट, छीना झपटी, अशान्ति असन्तोष, कलह कोलाहल, विद्रोह विद्वेष का मूल कारण भेद-बुद्धि तिरोहित हो समरसता एव अद्वैत भाव का रूप धारण कर लेती है और प्राप्तिकर्ता परमोल्लसित हो पुकार उठता है—

बोले देखो कि यहाँ पर
कोई भी नही पराया ।
हम अन्य न और कुटुम्बी
हम केवल एक हमीं हैं,
तुम सब मेरे अवयव हो
जिसम कुछ नहीं कमी है ।

१—कामायनी रहस्य सर्ग, पृ० २७३ ।

शापित न यहाँ है कोई
तापित पापी न यहाँ है
जीवन वसुधा समतल है
समरस है जो कि जहाँ है।
चेतन समुद्र में जीवन
लहरों सा बिखर पड़ा है,
कुछ छाप व्यक्तिगत अपना
निर्मित आकार खड़ा है।
इस ज्योत्स्ना के जलनिधि में
बुदबुद सा रूप बनाये,
नक्षत्र दिखायी देते
अपनी आभा चमकाये।
वैसे अभेद सागर में
प्राणों का सृष्टि क्रम है
सब में घुल मिल कर रसमय
रहता यह भाव चरम है।
अपने दुख सुख से पुलकित
यह मूर्त विश्व सचराचर,
चिति का विराट वपु मंगल
यह सत्य सतत चिर सुंदर।[1]

दूसरे शब्दों में यह कह कहा जा सकता है कि जीव एवं जगत्, जड़ एवं चेतन, शक्ति एवं शिव, जीवात्मा एवं आनन्दघन शिव की भेद-बुद्धि के तिरोभाव के साथ ही सामरस्य की स्थिति उत्पन्न होती है और उसी सामरस्य से अखण्ड आनन्द की प्राप्ति होती है —

समरस थे जड़ या चेतन
सुन्दर साकार बना था,
चेतनता एक विलसती
आनन्द अखण्ड घना था।[1]

स्पष्ट है कि प्रसाद का यह सामरस्य एवं आनन्दवाद प्रमुखतः शैव दर्शन पर आधारित है। भारत में प्रमुखतः चार शैव-दर्शन विकसित हुए—१ नकुलीश पाशुपत दर्शन २ शैव दर्शन ३ लिंगायत दर्शन ४ प्रत्यभिज्ञा दर्शन। इन चारों में भी प्रसाद का सम्बन्ध प्रधानतः प्रत्यभिज्ञा दर्शन से ही है। इसके प्रमुख ग्रन्थ

---

१— कामायनी, आनन्द सर्ग, पृ० २८७–२८८।

तन्त्रालोक, शिवसूत्र विमर्शिनी, प्रत्यभिज्ञाहृदय नेत्र तन्त्र तन्त्रसार आदि हैं। कश्मीर मे विकसित होने के कारण इसे 'कश्मीरी शैव दर्शन,' स्पन्दशास्त्र एव प्रत्यभिज्ञा शास्त्र के आधार पर विकसित होने के कारण 'स्पन्दर्शन' एव प्रत्यभिज्ञा दर्शन,' तीन पदार्थों—पति पशु और पाश—के विवेचन के कारण 'त्रिक्' या षडधदर्शन' और ईश्वर एव जगत् की अद्वतता के निरूपण के कारण ईश्वराद्वयवाद या 'अभेदवाद' भी कहते हैं। इस दर्शन में परम शिव को अन्तिम एव परम तत्त्व, परब्रह्म, चिति सत्य, आनन्द, इच्छा ज्ञान एव क्रिया रूप, देश कालादि से परे विश्वोत्तीर्ण तथा परम स्वतन्त्र माना गया है। जब वे सृष्टि की कामना करते हैं तब वे विश्वोत्तीर्ण से विश्वरूप बन जाते हैं और जब उनमे सृष्टि के निर्माण की अनुभूति जाग्रत होती है तब उन्हें शिव तत्त्व की सज्ञा से अभिहित किया जाता है। उन्ही से क्रमश शक्ति, सदाशिव, ईश्वर, सद्विद्या, माया काल, नियति कला विद्या, राग पुरुष, प्रकृति आदि अन्य ३५ तत्त्वो का विकास होता है। जीवात्मा परम शिव का सीमित रूप है जो कचुको एव मलो के आवृत रहने के कारण अपने वास्तविक रूप को नही जान पाता। किन्तु जब उसे अपने वास्तविक स्वरूप का परिज्ञान हो जाता है, तब वह शिव रूप को प्राप्त होकर चैतन्य गुण युक्त एव अनन्त शक्ति-सम्पन्न हो जाता है। यह सारा विश्व उसी शिव का रूप है, उसी का आभास या प्रतिबिम्ब है और जिस प्रकार शिव सत्य एव चिरन्तन हैं उसी प्रकार ससार भी। ससार की उत्पत्ति या प्रलय उसी की इच्छा से होती है। इस दर्शन में निरूपित चिति को ही प्रसाद जी ने 'महाचिति' सज्ञा से अभिहित करते हुए लीलामय आनन्द करने वाली इच्छा ज्ञान एव क्रियारूपिणी तथा स्वेच्छा से सृष्टि का निर्माण करने वाली माना है —

कर रही लीलामय आनन्द
महा चिति सजग हुई सी व्यक्त,
विश्व का उन्मीलन अभिराम
इसी में सब होते अनुरक्त।
काम मगल से मण्डित श्रेय
सर्ग, इच्छा का है परिणाम।[1]

तथा

इस त्रिकोण के मध्य बिन्दु तुम
शक्ति विपुल क्षमता वाले ये
एक एक को स्थिर हो देखो
इच्छा ज्ञान क्रिया वाले ये।[2]

---

१— कामायनी, श्रद्धा सर्ग पृ० ५३।
२— वही, रहस्य सर्ग, पृ० २६२।

एव

चितिमय चिता धधकती अविरल
महाकाल का विषम नृत्य था
विश्व रन्ध्र ज्वाला से भर कर
करता अपना विषम कृत्य था।
स्वप्न स्वाप, जागरण भस्म हो
इच्छा क्रिया ज्ञान मिल लय थे।[1]

मनु मर्लो एव कटुओं से आवत जीव के प्रतीक हैं जो अपने वास्तविक स्वरूप को भूलकर चतुर्दिक भ्रमित होते हैं पर अन्तत श्रद्धा के पथ प्रदशन, सहयोग एव सम्बल से भेद बुद्धि के परिहार एव समरसता की स्थिति म अखण्ड आनन्द का अनुभव करते हैं।

किन्तु कामायनीकार द्वारा निर्दिष्ट दुःख-दग्ध मानवता की चिरन्तन समस्याओं का यह निदान आध्यात्मिक, वैयक्तिक एव पारलौकिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण होते हुए भी लौकिक दृष्टि से कतिपय विद्वानों को पर्याप्त प्रतीत नहीं होता। इस विषय में पन्त जी की निम्नांकित पक्तियाँ द्रष्टव्य हैं —

'इडा श्रद्धा त्रिपुर और उनके पारस्परिक सम्बन्ध में तथा आनन्द की स्थिति के उद्घाटन क बीच अनेक प्रकार की जो छोटी मोटी असगतियाँ तथा कल्पना का आरोप मिलता है उस पर विचार न करते हुए भी जिस अभेद चतन्य के लोक म पहुचकर विश्व जीवन के सुख दुःखमय सघर्ष से मुक्त होने का सदेश कामायनी म मिलता है वह मुझे पर्याप्त नहीं लगता। मैं मानव चेतना का आरोहण करवा कर उसे वहीं मानस-तट पर अथवा अधिमानस भूमि पर कलास शिखर के सान्निध्य में छोड़कर सन्तोष नहीं करता। वह आनन्द चतन्य तो है ही और जीवन सघर्ष से विरक्त होकर मनुष्य व्यक्तिगत रूप से उस स्थिति पर पहुच भी सकता है। पर यह तो विश्व-जीवन की समस्याओं का समाधान नहीं है। मनुष्य के सामने प्रश्न यह नहीं है कि वह इडा श्रद्धा का समन्वय कर वहाँ तक कैसे पहुचे—

उसके सामने जो चिरन्तन समस्या है वह यह है कि उस चतन्य का उपयोग मन, जीवन तथा पदार्थ के स्तर पर कैसे किया जा सकता है। परम चतन्य तथा मनश्चतन्य के बीच का, इहलोक परलोक के बीच का धरती स्वर्ग, एक वह समरस या बहुरग के बीच के व्यवधान को मिटाकर यह अन्तराल किस प्रकार भरा जाय उसके लिए निःसन्देह ही इडा श्रद्धा का सामञ्जस्य पर्याप्त नहीं। श्रद्धा की सहायता से समरस

---

१—कामायनी रहस्य सर्ग, पृ० २३१।

स्थिति प्राप्त करें लेने पर भी मनु लोक जीवन की ओर नहीं लौट आये । आने पर भी शायद वे कुछ नहीं कर सकते । ससार की समस्याओं का यह निदान तो चिर पुरातन, पिष्टपेषित निदान है, किन्तु व्याधि कैसे दूर हो ? क्या इस प्रकार सम स्थिति मे पहुच कर और वह भी व्यक्तिगत रूप से ?

यही पर कामायनी कला प्रयोगो में आधुनिक होने पर भी और कुछ अ शों मे भाव परिधान से भी आधुनिक होने पर भी वास्तव मे जीवन के नवीन यथार्थ तथा चैतन्य को अभिव्यक्ति नहीं दे सकी और अभिव्यक्ति देना तो दूर उसकी ओर दृष्टिपात कर उसकी सम्भावना की ओर भी ध्यान आकर्षित नही कर सकी । यह केवल आधुनिक युग के विकासवाद से काल्पनिक एव मनोवैज्ञानिक स्तर पर प्रेरणा ग्रहण कर तथा अध्यात्म की दृष्टि से वही चिर प्राचीन व्यक्तिवादी विकसित एव समरस नित्य आनन्द चैतन्य का आरोहण मूलक आदर्श उपस्थित कर भारतीय पुनर्जागरण के काव्य युग की अन्तिम स्वर्णिम परिच्छद की तरह समाप्त हो जाती है ।'[१]

कहना न होगा कि प्रसाद जी ने भौतिकता से अधिक आध्यात्मिकता पर बल दिया है और उनका यह दृष्टिकोण अपनी गुरुता, गम्भीरता व्यापकता एव औदात्य के कारण अपेक्षाकृत अधिक उपयुक्त एव महाकाव्योचित है । लौकिक जीवन की सामयिक सामाजिक, आर्थिक, राष्ट्रीय, राजनीतिक एव वयक्तिक समस्याओं के समाधान भी कामायनी में कवि ने यत्र-तत्र प्रस्तुत किए हैं, किन्तु वे उसके दृष्टिकोण के अनुरूप हैं, किसी विशिष्ट विचारधारा के अनुरूप नही । उसका समन्वयवादी सिद्धान्त कितना व्यापक है, यह कदाचित् कहने की आवश्यकता नहीं । उसमे निवृत्ति एव प्रवृत्ति का, दुःख एव सुख का, वासना एव सयम का लज्जा एव समर्पण का, यथार्थ एव आदर्श का, श्रद्धा एव बुद्धि का मस्तिष्क एव हृदय का, भावना एव विवेक का भौतिकता एव आध्यात्मिकता का लौकिकता एव अलौकिकता का, राजा एव प्रजा का शोषक एव शोषित का, अधिनायकवाद एव प्रजातन्त्रवाद का, व्यक्ति एव समाज का प्राचीनता एव नवीनता का इच्छा ज्ञान एव क्रिया का, भारतीय एव विश्व सस्कृति का तथा राष्ट्रीयता एव अन्तर राष्ट्रीयता जो अद्भुत समन्वय है उसमे भौतिक अथवा आध्यात्मिक, सामयिक अथवा चिरन्तन किसी भी समस्या का समाधान मिल सकता है ।

परिवर्तन सृष्टि का शाश्वत नियम है । क्या देवता, क्या मनुष्य और क्या जड चेतन प्रकृति सभी अहर्निश उसके चक्र के नीचे पिसते रहते हैं कोई उसके प्रभाव से बचता नहीं, गर्वीले से गर्वीला व्यक्ति भी उसके चगुल म फसे बिना नहीं रहता ।

---

१ सुमित्रानन्दन पन्त यदि मैं कामायनी लिखता, युगमनु-प्रसाद, पृ०

कहने की आवश्यकता नहीं कि प्रसाद द्वारा परिवतन का यह महत्त्वोद्घोष नवीनता के प्रति उनके अनुराग तथा उसकी महत्ता का अभिव्यजक है और प्राचीन भारतीय सांस्कृतिक परम्पराओं एव दार्शनिक मान्यताओं के प्रति उनका आकषण प्राचीनता के मगलकारी रूप के महत्त्व का। इस प्रकार दोनों के मागलिक तत्त्वों के ताने ब ने से प्रसाद जी ने जिस अनिंद्य मगल वस्त्र को बुना है, वह निस्सन्देह मानवता के लिए प्रत्येक प्रकार से सुख शान्ति प्रदायक एव कल्याणकारी है।

भोग प्रधान देव सस्कृति के विध्वस प्रदशन के अन तर अस्थिर वृत्ति परिवतनकारी अहवादी, निरकुश, अनाचारी श्रद्धा-विरहित पथ भ्रष्ट तथा बहुपत्नीत्व की प्रवृत्ति वाले मनु को प्रजा एव देव शक्तियो का कोप भाजन बनाकर धराशायी करके प्रसाद जी ने अवगुणो के अनिष्टकारी रूप की व्यजना तथा कमफल की महत्ता एव आदर्शों के मगलकारी रूप की प्रतिष्ठा की है। कहना न होगा कि इस प्रकार उन्होंने यह प्रदर्शित करने का प्रयत्न किया है कि कामुकता, विलासिता अवाछित परिवतना काक्षिणी प्रवृत्ति बहुपत्नीत्व की प्रवृत्ति की दुबलता ईर्ष्या एव विद्वषजन्य भावनाए, अहवादी प्रवृत्ति असीमित अधिकार भोग की बलवती वृत्ति, नियमो की अवहलना तथा उनका विरोध, सधमगला पत्नी का परित्याग तथा अन्य स्त्री के साथ बलात्कार आदि प्रवत्तिया प्राणी के लिए घातक एव विनाशकारिणी हैं। अत इनसे मुक्त होकर स्वधम पालन करते हुए आदश माग पर चलने वाला व्यक्ति ही अपने वयक्तिक कल्याण के साथ समाज राष्ट एव विश्व के कल्याण में योग दे सकता है।

श्रद्धा द्वारा मनु की निममता हिंसात्मकता तथा उनके द्वारा की जाने वाली पशु बलि की भत्सना [1] और समस्त सृष्टि के प्रति अनुराग प्रदशन एव

---

१ यह विराग सम्बन्ध हृदय का
कसी यह मानवता !
प्राणी को प्राणी के प्रति बस
बची रही निममता !
—कामायनी कम सग, पृ० १२४।

तथा

और किसी की फिर बलि होगी
किसी देव के नाते
कितना धोखा ! उससे तो हम
अपना ही सुख पाते।
+ + + +
मनु ! क्या यही तुम्हारी होगी
उज्ज्वल नव मानवता ?
जिसमें सब कुछ ले लेना हो
हन्त ! बची क्या शवता !
—कामायनी कम सग, पृ० १२९-१३०।

कर्तव्य पालन का उन्हें दिया गया उपदेश यह द्योतित करता है कि मनुष्य को अपनी स्वार्थांधता का परित्याग करके व्यापक विश्व धर्म के परिपालन तथा सृष्टि-प्रेम के महत्त्व पर बल देते हुए आत्म विस्तार द्वारा समस्त सृष्टि को अपना अंग मानकर संसार के सुख में ही अपना सुख मानना चाहिए—

अपने में सब कुछ भर कैसे
व्यक्ति विकास करेगा ?
यह एकान्त स्वार्थ भीषण है
अपना नाश करेगा !
औरों को हँसते देखो मनु
हँसो और सुख पाओ
अपने सुख को विस्तृत कर लो
सब को सुखी बनाओ ।[१]

जब समस्त सृष्टि ही अपनी है तो भिन्नता अथवा स्वार्थपरता का प्रश्न ही क्यों ? अपनी सेवा और संसार की सेवा में फिर अन्तर ही क्या है ? संसार की सेवा द्वारा वह अपनी ही तो सेवा करता है —

सब की सेवा न पराई
वह अपनी सुख संसृति है
अपना ही अणु अणु कण कण
द्वयता ही तो विस्मृति है ।[२]

मनुष्य के लिए निराश होने की आवश्यकता नहीं । सुख दुःख जीवन के सत्य तथा विश्वात्मा की मधुर देन हैं । दुःख के अनन्तर सुख का आना अवश्यम्भावी है व्यथा की नीली लहरियों में सुख के दीप्तिमान् मणि रत्न इतस्ततः विकीर्ण रहते हैं —

नित्य समरसता का अधिकार
उमड़ता कारण जलधि समान
व्यथा से नीली लहरों बीच
बिखरते सुख मणि गण द्युतिमान ।[३]

यही नहीं, स्वयं दुःख जिसे मनुष्य संसार की ज्वालाओं का मूल तथा अभिशाप मानता है, परमात्मा का महान् वरदान है जिसके बिना न तो व्यक्ति का कल्याण ही सम्भव है और न मानवता का उत्थान ही । इसी तथ्य को दृष्टि में

---

१ कामायनी कर्म सर्ग, पृ० १३२ ।
२ वही, आनन्द सर्ग, पृ० २८६ ।
३ वही श्रद्धा सर्ग ५४ ।

रखते हुए यह कहा जाता है कि जिस व्यक्ति का 'जीवन-सुमन' जितने ही कष्ट रूपी कांटों में खिलता है उतना ही उसे संसार में गौरव प्राप्त होता है और उतना ही वह अपने यश सौरभ को दिग्दिगन्त में विकीर्ण करके वैयक्तिक एवं सामाजिक कल्याण में योग दे सकता है। कष्ट और विपत्तियों में जो आनन्द है वह अन्यत्र सुलभ नहीं। अंग्रेजी कहावत के अनुसार फांसी के तख्ते व सोपान हैं जो मनुष्य को स्वर्ग पहुँचाते हैं प्रसाद की मान्यता है कि मनुष्य को दुःख से निराश न होकर अपनी शक्ति सामर्थ्य एवं पौरुष में विश्वास रखना चाहिए और उसका सदुपयोग करके अपनी कर्मण्यता द्वारा उसे सुख में परिवर्तित करने का प्रयत्न करना चाहिए। सामर्थ्यवान व्यक्ति अपने प्राणों का उत्सर्ग करके भी जिन्दगी की बाजी जीतता है। अवसाद, विषाद एवं निराशा क्षणिक हैं। केवल तपस्या ही जीवन का शाश्वत सत्य नहीं है अन्य सत्य भी उसके समान ही चिरन्तन एवं महान् हैं। पृथ्वी का भोग कर्मण्य पराक्रमी एवं साहसी व्यक्ति ही कर सकते हैं हताश एवं बल वीर्य विहीन व्यक्ति नहीं। सृष्टि विकास में योग देना भी मनुष्य का परम कर्त्तव्य है और इस दृष्टि से सृजनात्मक काम उतना ही महत्त्वपूर्ण है जितने कि संसार के अन्य मंगल काम तत्त्व, आदर्श अथवा धर्म एवं मोक्ष के योगवाही उपकरण।

आकर्षण सृष्टि का विधाता है और विकर्षण उसका विनाशकर्ता। आकर्षण की प्रबलता में सृष्टि की स्थिति है और विकर्षण की प्रबलता में प्रलय होती है। "इस समावस्था में जब कि विश्व में विकर्षण (घृणा) और आकर्षण (प्रेम) दोनों के ही लिए स्थान है पदार्थों तथा मानव शरीरांगों की सत्ता है किन्तु विकर्षण की पूर्ण विजय के समय जब उक्त चतुष्तत्त्व विघटित हो जाते हैं किसी भी पदार्थ अथवा प्राणी की सत्ता नहीं रह जाती। पुनः परिस्थिति परिवर्तित होने पर आकर्षण (प्रेम) का प्रवेश होता है और पदार्थों की सृष्टि होती है। तदनन्तर पृथक्करण की प्रक्रिया पुनः प्रारम्भ होती है और पुनः विकर्षण की विजय के समय पदार्थादि का विनाश होता है।"[1] कहने की आवश्यकता नहीं कि पाश्चात्य दार्शनिक एम्पेडाक्लिस की उक्त मान्यता और प्रसाद जी के विचारों में बहुत साम्य है। सृष्टि विकास एवं मानवता के व्यापक कल्याण के लिए यह उचित ही है कि शक्ति के जो विद्युत्कण अथवा सृष्टि के जो निर्माता तत्त्व विकर्षण (घृणा) की प्रबलता के कारण इतस्ततः बिखरे हुए पड़े हैं और जिनका इस स्थिति में कोई उपयोग नहीं, प्रेम एवं आकर्षण द्वारा एकत्र एवं समठित किए जाएं। मानवता की कल्याण साधना महत्त्व प्रतिष्ठा तथा दुर्दमनाद के ये महत्त्वपूर्ण उपकरण हैं इसमें सन्देह नहीं —

शक्ति के विद्युत्कण जो व्यस्त
विकल बिखरे हैं, हो निरुपाय

---

1—A History of Western Philosophy by Bertrand, p 74

समन्वय उनका करे समस्त
विजयिनी मानवता हो जाय ।[1]

इस प्रकार काम के सन्देश, श्रद्धा के उद्बोधन, जीवन के विभिन्न मंगलकारी आदर्शों एवं वृत्ति-व्यापारों और कवि के स्वदेश प्रेम एवं राष्ट्रीयता विषयक उद्गारों गांधीवादी प्रभावों के परिणामस्वरूप गृह उद्योग धन्धों के महत्त्व प्रदर्शन, यन्त्रवाद की भर्त्सना इडा (बुद्धि) तथा विज्ञान की सीमाओं के उल्लेख और समरसता एवं नियति वादी सिद्धान्तों, रहस्यवादी संकेतों तथा बौद्ध दर्शन की मान्यताओं की अभिव्यक्ति के प्रसंगों में भी कामायनीकार के ऐसे अनेकानेक सन्देश रत्न विनियोजित हैं, जिनसे मानवता के व्यापक कल्याण में पर्याप्त योग मिल सकता है।

शास्त्रीय दृष्टि से कामायनी का उद्देश्य प्रधानतः धर्म एवं मोक्ष प्राप्ति है और गौणतः काम का महत्त्व प्रदर्शन। मनु का अखण्ड आनन्द प्राप्त करना मोक्ष प्राप्ति का द्योतक है और सर्वमंगला श्रद्धा के व्यक्तित्व एवं वृत्ति-व्यापारों द्वारा धर्म के विभिन्न आदर्शों की प्रतिष्ठा धर्म संस्थापन की। इसके अतिरिक्त चतुर्थ फल अर्थ का संकेत भी स्वप्न एवं संघर्ष सर्ग में मिलता है।

कहने की आवश्यकता नहीं कि व्यक्ति समाज एवं विश्व की विभिन्न सामयिक एवं चिरन्तन समस्याओं के समाधान की आवश्यकता तथा दुःख दग्ध मानवता के परित्राण एवं उत्कर्ष की बलवती आकांक्षा जलप्लावन एवं आदि मानव तथा आद्या मानवी की जीवन-गाथा सृष्टि रचना के क्रम तथा विश्व-साहित्य में उसकी व्यापकता के प्रदर्शन की उत्कण्ठा और प्राचीन भारतीय सांस्कृतिक परम्पराओं एवं दार्शनिक मान्यताओं के महत्त्वोद्घोष की स्पृहा की जो घटाएं प्रमाद के हृदयाकाश का आच्छन्न किये थीं उन्हीं की मंगल वृष्टि का परिणाम यह रचना है जिसके कारण इसके रचयिता का यश सौरभ दिग्दिगन्त में परिव्याप्त है। अतः स्पष्ट है कि इस तत्त्व की कसौटी पर कामायनी का महाकाव्यत्व सर्वथा सफल प्रमाणित होता है क्योंकि इस दृष्टि से उसमें कोई अभाव नहीं दीखता।

**महती काव्य-प्रतिभा**
**एवं**
**निर्बाध रसवत्ता**

महाकाव्य यदि महान् सृष्टि है तो महाकाव्यकार महान् कलाकार। उसकी रचना के लिए एक-दो वर्षों की ही नहीं दशाब्दियों की अपेक्षा है[2] और उसमें

---

१—कामायनी श्रद्धा सर्ग, पृ० २९।

२ 'I should not think of devoting less than twenty years to an epic poem ten years to collect materials and warm my mind to universal science .. the next five in the composition of the poem and five last in the correction of it'
—Coleridge Quoted from the Epic (Abercrombie) p 37

सफलता विरले ही कलाकारो को प्राप्त होती है।[1] उसकी प्रबन्धात्मकता मे भले ही कोई शिथिलता क्यो न हो, उसकी काव्यात्मकता चरमोत्कर्ष को पहुँची हुई होनी चाहिए। कहने की आवश्यकता नहीं कि इस विषय मे महाकाव्यकार चरित्र चित्रण से भी अधिक उसकी कलात्मकता पर बल देता है। इसी तथ्य से प्रेरित होकर श्री द्विजेन्द्रलाल राय ने लिखा है— 'महाकाव्य एक या एक से अधिक चरित्र लेकर रचे जाते हैं। लेकिन, महाकाव्य मे चरित्र–चित्रण प्रसग मात्र है। कवि का मुख्य उद्देश्य होता है उस प्रसग क्रम मे कवित्व दिखाना।'[2] आशय की दृष्टि से भी महाकाव्य महान् काव्य है यद्यपि महाकाव्य और महान् काव्य में अन्तर है क्योंकि महान् काव्य के लिए समाख्यानात्मक होना आवश्यक नही, जबकि महाकाव्य की समाख्यानात्मकता उसकी एक अनिवार्य आवश्यकता है। अत स्वभावत ही किसी कृति के महाकाव्य होने के लिए यह परमावश्यक है कि उसमे कलाकार की महती काव्य प्रतिभा का ऐसा देदीप्यमान रूप दृष्टिगोचर हो जिसकी रश्मियाँ उसके अध्येताओ के हृदय जगत् को आलोकित कर दें। कामायनीकार भी इस तथ्य से परिचित है। यही कारण है कि उसने कामायनी के काव्य पट को भाव-पक्ष के बहुरगी ताने बाने से बुनकर कलात्मकता के अभिवद्धक विभिन्न उपकरणो के बेल बूटो से सुसज्जित करके अत्यधिक मनोहारी बना दिया है। किन्तु इस कथन की सत्यता प्रमाणित करने के लिए काव्यात्मा रस तथा कलात्मक समृद्धि के विभिन्न उपकरणो पर पृथक पृथक रूप से विचार करना होगा।

**रसात्मकता**

साहित्य शास्त्र मे रस को ब्रह्मानन्द सहोदर कहकर जो महत्त्व दिया गया है वह बहुत कुछ आज भी सुरक्षित है। काव्यात्मा के सम्बन्ध मे भले ही अनेक सम्प्रदाय अपनी अपनी डफली अपना अपना राग अलापते रहें किन्तु इस विषय में रस सिद्धान्त के समक्ष कोई नही टिकता। प्रसाद जी भी रसवादी कलाकार हैं। आधुनिक काल मे महाकाव्य मे चरित्र चित्रण की महत्ता के दुन्दुभिनाद के बावजूद भी वे रस का ही प्रमुख स्थान मानते रहे।[3] यही कारण

---

१ Indeed you might include all the epics of Europe in this definition without loosing your breath for the epic poet is the rarest kind of artist

—*Abercrombie, The Epic* p 41

२ द्विजेन्द्रलाल राय, कवि प्रसाद आँसू तथा अन्य कृतियाँ (वि० शर्मा) पृ० १०२ से उद्धृत।

३—'आत्मा की अनुभूति व्यक्ति और उसके चरित्र-वैचित्र्य को लेकर ही अपनी सृष्टि करती है। भारतीय दृष्टिकोण रस के लिए इन चरित्र और व्यक्ति-वैचित्र्यों को रस का साधन मानता रहा साध्य नहीं। रस मे चमत्कार ले आने के लिए इसको बीच का माध्यम ही मानता आया।'

—प्रसाद काव्य और कला तथा [illegible]

है कि उनकी कामायनी भी रसात्मकता की जिन तरल स्निग्ध एवं मधुमयी लहरियों से आप्लावित है, उनका आनन्द प्राप्त करके अध्येता अपने को कृतकृत्य समझता है। उसमें यद्यपि शान्त रस प्रधान है तथापि उसके साथ ही उसमें शृंगार एवं करुण का भी लगभग उतना ही महत्व है। यही नहीं, कभी-कभी यह निर्णय करना भी कठिन हो जाता है कि उसका अंगी रस शान्त है अथवा शृंगार अथवा करुण। यही कारण है कि यदि कोई उसका प्रधान रस शृंगार मानता है तो कोई करुण और कोई शान्त। निम्नांकित अवतरण इस विषय में द्रष्टव्य हैं —

(क) 'कामायनी में प्रधान रस शृंगार है पर उसकी अंतिम परिणति शान्त रस में दिखाई देती है।'[1]

तथा

इस शृंगार से कामायनी में अन्य रसों की निष्पत्ति होती है—वात्सल्य, वीर करुण और शान्त रस इसी शृंगार से कामायनी में उद्भूत हैं।[2]

(ख) 'कामायनी में कौन से रस का प्राधान्य है इसको लेकर शास्त्रीय विद्वान् चाहे परस्पर वाद विवाद करते रहें किन्तु ऊपर के विश्लेषण के अनुसार यदि इस महाकाव्य के कथानक की स्वाभाविक समाप्ति वहीं हो जाती है जहां मूर्च्छित होकर मनु गिर पड़ते हैं तब तो करुण रस ही इस काव्य का अंगी रस माना जाएगा।'[3]

(ग) "प्रस्तुत रचना में शान्त रस की प्रधानता तो अवश्य है, किन्तु शृंगार और करुण रसों की अभिव्यक्ति भी व्यापक रूप में है।"[4]

किन्तु इस विषय में डा० नगेन्द्र ने अंगी रस के तीन लक्षण निर्धारित करते हुए[5] कामायनी का अंगी (प्रधान) रस "आनन्द रस" या "व्यापक शान्त रस" माना है। इस विषय में वे लिखते हैं —

'इस प्रकार आनन्द रस या व्यापक शान्त रस को अंगी रस मान लेने पर सभी समस्याओं का समाधान सहज हो जाता है। इस रस का स्वरूप इतना व्यापक और परिपूर्ण है कि इसमें शान्त और शृंगार का विरोध नहीं है, वस्तुतः शृंगार

---

१—डा० गोविन्दराम शर्मा हिन्दी के आधुनिक महाकाव्य पृ० २७७।

२—सुधाकर पाण्डेय, प्रसाद की कविताएं, पृ० ३६६।

३—कन्हैयालाल सहल कामायनी दर्शन पृ० १०२—१०३।

४—डा० कामेश्वर प्रसाद सिंह, प्रसाद की काव्य प्रवृत्ति, पृ० ४९३।

५—उनके अनुसार अंगीरस का प्रथम लक्षण उसकी बहुव्याप्ति द्वितीय लक्षण प्रमुख पात्र की मूल वृत्ति को प्रतिफलित करने की सामर्थ्य और तृतीय सारभूत प्रभाव के अभिव्यंजन की क्षमता है।
—कामायनी के अध्ययन की समस्याएं, कामायनी का अंगीरस पृ० २८—२९।

ग्रोर शात इसकी दो कोटिया हैं। स्वय प्रसाद के शब्दों म 'शवागम के ग्रानन्द सम्प्रदाय के ग्रनुयायी रसवादी रस की दोनो सीमाग्रो, शृ गार ग्रोर शात, को स्पश करते थे। भरत ने कहा है—

भावा विकारा रत्याद्या शान्तस्तु प्रकृतिमत ।
विकार प्रकृतेजति पुनस्तत्रव लीयत ।

यह शा त रस निस्तरग महोदधि-कल्प समरसता ही है।'
(काव्य ग्रोर कला तथा ग्रन्य निबन्ध, पृ० ७८)

कामायनी के पूर्वाद्ध म शृ गार ग्रोर उत्तराद्ध म शात के प्राधान्य का यही रहस्य है। पूर्वाद्ध के उद्दाम शृ गार का उत्तराद्ध के शात मे निलय सामान्य काव्यशास्त्रीय ग्रथ मे सम्भव नहीं क्योंकि शृ गार शात का विरोधी रस है शान्तस्तु वीर शृ गाररौद्रहास्यभयानक (साहित्यदपण। ३।२४६) ग्रर्थात् शात का वीर, शृ गार, रौद्र, हास्य ग्रोर भयानक से विरोध है। पर यहा तो शृ गार ग्रोर शात दोनो परस्पर-विरोधी न होकर सामरस्य-रूप ग्रानन्द या शात रस की दो सीमाए हैं।"[1]

किन्तु सूक्ष्म रूप से विचार करने से विदित होगा कि इस विषय मे डा० नगेन्द्र की मान्यता ही तथ्य के सर्वाधिक निकट है। कामायनी का प्रधान रस करुण ही नहीं सकता क्योंकि उसकी योजना पर कवि ने कही बल नही दिया सघष सग मे मनु का इडा के साथ दुर्व्यवहार तथा प्रजा के साथ सघष उनके चरित्र को इतना पतित कर देता है कि ग्रध्येता न तो उनके साथ तादात्म्य स्थापित करता है ग्रोर न ही वे उसकी सहानुभूति के पात्र रह पाते हैं। इसके ग्रतिरिक्त वे उसमे केवल मुमूर्षु होकर धराशायी हो जाते हैं मृत्यु को प्राप्त नही होते। फिर भी यदि उनकी शोचनीय स्थिति से उस (सघष सग) के ग्रन्त में करुण रस की योजना मान भी ली जाए तो भी उसकी समाप्ति वहा क्स मानी जा सकती है? पुन निर्वेद एव 'चिन्ता सर्गों म भी कई कारणों से उसकी निर्बाध निष्पत्ति नहीं होती ग्रोर ग्रोर यदि ऐसा न भी माना जाए—दोनों सर्गों म उसकी निष्पत्ति मान भी ली जाए—तो भी समग्र ग्रन्थ में उसका प्राधान्य प्रमाणित नहीं किया जा सकता। इसी प्रकार शृ गार रस की बहुव्याप्ति के बावजूद भी सारभूत प्रभाव को दृष्टि मे रखते हुए ग्रन्थ म उसकी प्रधानता स्वीकार नहीं की जा सकती। ग्रानन्द रस का ग्रौचित्य भी प्रमाणित नहीं किया जा सकता। कारण रस स्वय ब्रह्मानन्द सहोदर एव ग्रलौकिक ग्रानन्द स्वरूप है। इसके साथ ही यह भी कहा गया है कि ब्रह्म स्वय रसस्वरूप है। रस का एकता की मान्यता के ग्राधार पर ग्रानन्द रस की मान्यता देना उचित नहीं ग्रोर न

---

१—डा० नगेन्द्र कामायनी के ग्रध्ययन की समस्याए, कामायनी का ग्रङ्गी रस, पृ० ३१-३६।

हो इस आधार पर आनन्द रस को कामायनी का अंगीरस स्वीकार किया जा सकता है क्योंकि ऐसी स्थिति में शृंगार करुण अथवा शान्त की रसात्मक भिन्नता के लिए कोई स्थान ही नहीं रहेगा। अतः शान्त रस को ही उसका प्रधान रस स्वीकार करना होगा।

कामायनी का प्रधान रस यद्यपि शान्त ही है तथापि उसमे शृंगार के संयोग एवं विप्रलम्भ रूपों की प्रचुर योजना है। किन्तु इस विषय मे प्रसाद जी ने विभावों, अनुभावों एवं संचारियों आदि रस के शास्त्रीय उपकरणों की योजना पर उतना बल नहीं दिया जितना स्वतन्त्र एवं मौलिक रस सृष्टि पर। कामायनी शान्त रस प्रधान रचना अवश्य है, पर उसमें शृंगार रस की योजना में प्रसाद जी की वृत्ति जितनी रमी है शान्त रस की योजना में उतनी नहीं। कारण वे वस्तुतः प्रेम सौन्दर्य एवं शृंगार के कलाकार हैं। इनके वर्णन के समय वे इतने भाव विभोर एवं तन्मय हो जाते हैं कि उन्हें वास्तविकता का ध्यान नहीं रहता। श्रद्धा का सौंदर्य कितना तरल, स्निग्ध, मादक, मधुर एवं मोहक है, प्राचीनता एवं परम्परा पर आधारित होते हुए भी वह कितना नवीन, मौलिक एवं प्रभावोत्पादक है, यह कदाचित् कहने की आवश्यकता नहीं। कामायनी में शृंगार रस के यद्यपि दोनों ही प्रमुख रूपों—संयोग एवं विप्रलम्भ—की कुशल योजना है तथापि उसके संयोग वर्णन को पढ़ कर पाठक को ऐसा लगता है मानों सौन्दर्य, प्रेम एवं शृंगार स्वयं ही मूर्तिमान् होकर उसके समक्ष उपस्थित हो। निम्नांकित अवतरण इस विषय मे द्रष्टव्य हैं —

सृष्टि हसने लगी आँखों मे खिला अनुराग,
राग रंजित चन्द्रिका थी, उड़ा सुमन पराग।
और हसता था अतिथि मनु का पकड़ कर हाथ,
चले दोनों, स्वप्न पथ में स्नेह सम्बल साथ।
देवदारु निकुंज गह्वर सब सुधा मे स्नात
सब मनाते एक उत्सव जागरण की रात।
आ रही थी मधुर भीनी माधवी की गन्ध
पवन के घन घिरे पड़ते थे बने मधु अन्ध।
शिथिल अलसाई पड़ी छाया निशा की कान्त
सो रही थी शिशिर कण की सेज पर विश्रान्त।
उसी झुरमुट में हृदय की भावना थी भ्रान्त,
जहा छाया सृजन करती थी कुतूहल कान्त।

\+ \+ \+ \+ \+

मधु बरसता विधु किरन है कांपती सुकुमार
पवन म है पुलक मन्थर चल रहा मधु भार।

श्रौर शान्त इसकी दो कोटियां हैं। स्वयं प्रसाद के शब्दों में 'शवागम के आनन्द सम्प्रदाय के अनुयायी रसवादी रस की दोनों सीमाओं, शृंगार और शान्त, को स्पर्श करते थे। भरत ने कहा है—

भावा विकारा रत्याद्या शान्तस्तु प्रकृतिमत ।
विकार प्रकृतेर्जात पुनस्तत्रैव लीयते ।

यह शान्त रस निस्तरंग महोदधि-कल्प समरसता ही है।'

(काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध, पृ० ७८)

कामायनी के पूर्वार्द्ध में शृंगार और उत्तरार्द्ध में शान्त के प्राधान्य का यही रहस्य है। पूर्वार्द्ध के उद्दाम शृंगार का उत्तरार्द्ध के शान्त में विलय सामान्य का शास्त्रीय अर्थ में सम्भव नहीं, क्योंकि शृंगार शान्त का विरोधी रस है शान्तस्तु वीर शृंगाररौद्रहास्यभयानक (साहित्यदर्पण। ३।२४६) अर्थात् शान्त का वीर, शृंगार, रौद्र, हास्य और भयानक से विरोध है। पर यहां तो शृंगार और शान्त दोनों परस्पर-विरोधी न होकर सामरस्य-रूप आनन्द या शान्त रस की दो सीमाएं हैं।"[1]

किन्तु सूक्ष्म रूप से विचार करने से विदित होगा कि इस विषय में डा० नगेन्द्र की मान्यता ही तथ्य के सर्वाधिक निकट है। कामायनी का प्रधान रस करुण ही नहीं सकता क्योंकि उसकी योजना पर कवि ने कहीं बल नहीं दिया सघर्ष सर्ग में मनु का इडा के साथ दुर्व्यवहार तथा प्रजा के साथ संघर्ष उनके चरित्र को इतना पतित कर देता है कि अध्येता न तो उनके साथ तादात्म्य स्थापित करता है और न ही वे उसकी सहानुभूति के पात्र रह पाते हैं। इसके अतिरिक्त वे उसमें केवल मुमूर्षु होकर धराशायी हो जाते हैं, मृत्यु को प्राप्त नहीं होते। फिर भी यदि उनकी शोचनीय स्थिति से उस (संघर्ष सर्ग) के अन्त में करुण रस की योजना मान भी ली जाए तो भी उसकी समाप्ति वहां के मे मानी जा सकती है? पुन 'निर्वेद' एवं 'चिन्ता' सर्गों में भी कई कारणों से उसकी निर्बाध निष्पत्ति नहीं होती और और यदि ऐसा न भी माना जाए—दोनों सर्गों में उसकी निष्पत्ति मान भी ली जाए—तो भी समग्र ग्रन्थ में उसका प्राधान्य प्रमाणित नहीं किया जा सकता। इसी प्रकार शृंगार रस की बहु व्याप्ति के बावजूद भी सारभूत प्रभाव को दृष्टि में रखते हुए ग्रन्थ में उसकी प्रधानता स्वीकार नहीं की जा सकती। आनन्द रस का औचित्य भी प्रमाणित नहीं किया जा सकता। कारण रस स्वयं ब्रह्मानन्द सहोदर एवं अलौकिक आनन्द स्वरूप है। इसके साथ ही यह भी कहा गया है कि ब्रह्म स्वयं रसस्वरूप है। रस की एकता की मान्यता के आधार पर आनन्द रस की मान्यता देना उचित नहीं और न

---

१—डा० नगेन्द्र कामायनी के अध्ययन की समस्याएं कामायनी का अंगी रस, पृ० ३१-३६।

हो इस आधार पर आनन्द रस को कामायनी का अंगीरस स्वीकार किया जा सकता है क्योंकि ऐसी स्थिति में शृंगार, करुण अथवा शान्त की रसात्मक भिन्नता के लिए कोई स्थान ही नहीं रहेगा। अतः शान्त रस को ही उसका प्रधान रस स्वीकार करना होगा।

कामायनी का प्रधान रस यद्यपि शान्त ही है तथापि उसमे शृंगार के संयोग एवं विप्रलम्भ रूपों की प्रचुर योजना है। किन्तु इस विषय में प्रसाद जी ने विभावो, अनुभावो एवं संचारियो आदि रस के शास्त्रीय उपकरणो की योजना पर उतना बल नहीं दिया जितना स्वतंत्र एवं मौलिक रस सृष्टि पर। कामायनी शान्त रस प्रधान रचना अवश्य है पर उसमे शृंगार रस की योजना में प्रसाद जी की वृत्ति जितनी रमी है शान्त रस की योजना मे उतनी नहीं। कारण वे वस्तुतः प्रेम सौन्दर्य एवं शृंगार के कलाकार हैं। इनके वर्णन के समय वे इतने भाव विभोर एवं तन्मय हो जाते हैं कि उन्हें वास्तविकता का ध्यान नहीं रहता। श्रद्धा का सौन्दर्य कितना तरल, स्निग्ध मादक, मधुर एवं मोहक है, प्राचीनता एवं परम्परा पर आधारित होते हुए भी वह कितना नवीन, मौलिक एवं प्रभावोत्पादक है, यह कदाचित् कहने की आवश्यकता नहीं। कामायनी में शृंगार रस के यद्यपि दोनो ही प्रमुख रूपों—संयोग एवं विप्रलम्भ—की कुशल योजना है तथापि उसके संयोग वर्णन को पढ़ कर पाठक को ऐसा लगता है मानों सौन्दर्य, प्रेम एवं शृंगार स्वयं ही मूर्तिमान् होकर उसके समक्ष उपस्थित हो। निम्नांकित अवतरण इस विषय में द्रष्टव्य हैं —

> सृष्टि हसने लगी आंखो में खिला अनुराग,
> राग रंजित चन्द्रिका थी, उड़ा सुमन पराग।
> और हसता था अतिथि मनु का पकड़ कर हाथ,
> चले दोनो, स्वप्न पथ में स्नेह सम्बल साथ।
> देवदारु निकुंज गह्वर सब सुधा में स्नात
> सब मनाते एक उत्सव जागरण की रात।
> आ रही थी मधुर भीनी माधवी की गन्ध
> पवन के घन घिरे पडते थे बने मधु अन्ध।
> शिथिल अलसाई पड़ी छाया निशा की कान्त
> सो रही थी शिशिर कण की सेज पर विश्रान्त।
> उसी झुरमुट में हृदय की भावना थी भ्रान्त
> जहा छाया सृजन करती थी कुतूहल कान्त।
> \+ \+ \+ \+ \+
> मधु बरसती विधु किरन हैं कांपती सुकुमार
> पवन में है पुलक मन्थर चल रहा मधु

तुम समीप, अधीर इतने आज क्यों हैं प्राण ?
छक रहा है किस सुरभि से तृप्त होकर घ्राण ?
आज क्यों सन्देह होता रूठने का व्यर्थ,
क्यों मनाना चाहता सा बन रहा असमर्थ !
धमनियों में वेदना सा रक्त का सचार,
हृदय में है काँपती धड़कन लिए लघु भार !
चेतना रंगीन ज्वाला परिधि में सानन्द
मानती सी दिव्य सुख कुछ गा रही है छन्द !
अग्नि कीट समान जलती है भरी उत्साह
और जीवित है न छाले हैं न उसमें दाह !
कौन हो तुम विश्व माया कुहुक सी साकार,
प्राण सत्ता के मनोहर भेद सी सुकुमार !
हृदय जिसकी कान्त छाया में लिए निश्वास
थके पथिक समान करता व्यजन ग्लानि विनाश।

\+ — + + +

मनु निखरने लगे ज्यों ज्यों यामिनी का रूप,
वह अनन्त प्रगाढ़ छाया फलती अपरूप
बरसता था मदिर कण-सा स्वच्छ सतत अनन्त
मिलन का संगीत होने लगा था श्रीमन्त।
छूटती चिनगारियाँ उत्तेजना उद्भ्रान्त,
धधकती ज्वाला मधुर, था वक्ष विकल अशान्त।
वात चक्र समान कुछ था बाँधता आवेश,
धैर्य का कुछ भी न मनु के हृदय में था लेश।[१]

शास्त्रीय दृष्टि से उक्त अवतरण में श्रद्धा आलम्बन है और मनु आश्रय। प्रकृति के मादक रूप एवं वस्तिव्यापार—जड़ चेतन सृष्टि का उल्लासोत्पादक हास्य तथा उसके नेत्रों में दृश्यमान अनुराग कलिकाएं, रागारुण चन्द्रिका, उड़ता हुआ पुष्प-पराग, चन्द्र-रश्मियों की सुधा-वृष्टि तथा जागरणोत्सव मनाते हुए उसमें सद्य *स्नात भव्य श्वेत-शुभ्र-शीतल एवं सविकरुण देवदारु वक्ष, वासन्ती लता मण्डप एवं* गह्वर के विश्राम-स्थल माधवी का उन्मादक सौरभ, मकरन्द भाराक्रान्त मधु-छकित पवन के मन्द-मन्द झोंके हिम-विन्दुओं की शय्या पर सोती हुई निशा की सुन्दर शिथिल आलस्यमयी छाया आदि—बाह्य उद्दीपन हैं। श्रद्धा का उन्मादक हास्य मनु का हाथ पकड़ कर प्रेम के सम्बल के साथ स्वप्निल संसार में

१- कामायनी वासना सर्ग पृ० ८८-९२।

विचरण, कुंज में विश्रामशीला निशा की शान्त छाया के कुतूहलोत्पादक एवं अन्य उन्मादक प्रकृति रूपों से उद्दीप्त एवं भाव विह्वल होकर मदोन्मत्त व्यक्ति सा आचरण, द्रष्टा को भाव विह्वल एवं आनन्द-विभोर कर देने वाला विश्व-माया के इन्द्रजाली प्रभाव-सा उसका मधुर-मदिर रूप-वैभव एवं आत्मा के सुरम्य रहस्य सी उसकी सुकुमारता आलम्बनगत उद्दीपन हैं। मनु का श्रद्धा का हाथ अपने हाथ में लेकर प्रेम से स्वप्न-संसार में विचरण, भ्रान्त आचरण तथा उनकी व्याकुलता मादकता एवं तृप्ति, श्रद्धा के रूठने का व्यर्थ सन्देह तथा उसे मनाने की आकांक्षा रखते हुए भी मना सकने की असमर्थता का अनुभव, धमनियों में वेदना सी उत्पन्न करता हुआ रक्त का संचार, हृदय की कम्पायमाना धड़कन तथा किसी मन्दिर-मधुर भार का अनुभव, अग्नि-कीट के समान वासना की रंगीन ज्वाला की परिधि में उनकी चेतना का दिव्य आनन्दानुभव एवं मादक गान, मदोन्मत्त कर देने वाली उत्तेजना, कामाग्नि के स्फुलिंगों का छूना एवं उसकी प्रज्वलित मधुर ज्वाल, विकल अशान्त हृदय तथा विह्वलता एवं कामावेश का अनुभव आदि अनुभाव हैं। आवेग मद हर्ष मति उन्माद औत्सुक्य आदि संचारी भाव हैं। इस प्रकार मनु के हृदय में सुषुप्तावस्था में विद्यमान स्थायी भाव रति आलम्बन-रूपा श्रद्धा के संयोग से जाग्रत उक्त विभिन्न बाह्य एवं आलम्बनगत उद्दीपनों से उद्दीप्त तथा अनुभावों से व्यक्त और संचारियों से पुष्ट होकर रसावस्था को पहुंच गया है।

कहने की आवश्यकता नहीं कि संयोग शृंगार की यह सृष्टि साहित्य में अपना सानी नहीं रखती। इसको पढ़कर पाठक ऐसे कल्पना लोक में पहुँच जाता है जहाँ सब कुछ भव्य एवं आनन्दोत्पादक है कहीं कोई अभाव नहीं श्रद्धा का रूप वैभव तथा मनु की काम चेष्टाएं एवं रति व्यापार प्रकृति के रूपोत्कर्ष एवं प्रणय व्यापारों से होड़ सी करते प्रतीत होते हैं।

इसके अतिरिक्त अन्य स्थलों पर भी संयोग शृंगार के चित्रण में प्रसाद की कला का उत्कर्ष दृष्टिगोचर होता है। इस विषय में वे इतने सिद्धहस्त हैं कि सामान्य भावों के चित्रण द्वारा भी उन्होंने शृंगार के अन्य अवयवों का संकेत मात्र करके ऐसी रस सृष्टि की है और उसके द्वारा ऐसा मादक वातावरण प्रस्तुत कर दिया है कि अध्येता मन्त्र मुग्ध एवं आश्चर्य-स्तब्ध हो उठता है। प्रणयिनी श्रद्धा के अनुभावों के चित्रण द्वारा संयोग शृंगार के निष्पत्तिकर्ता अन्य अवयवों का संकेत मात्र करके उन्होंने जो रस सृष्टि की है वह अपनी जैसी आप ही है —

गिर रही पलकें, झुकी थी नासिका की नोक।
भ्रू-लता थी कान तक चढ़ती रही बेरोक।
स्पर्श करने लगी लज्जा ललित कर्ण कपोल,
खिला पुलक कदम्ब-सा था भरा गद्गद बोल।
किन्तु बोली क्या समर्पण आज का हे देव!

तुम समीर, अधीर इतने आज क्यों हो प्राण ?
छक रहा है किस सुरभि से तृप्त होकर घ्राण ?
आज क्यों सन्देह होता रूठने का व्यर्थ,
क्यों मनाना चाहता सा बन रहा असमर्थ !
धमनियों में वेदना सा रक्त का संचार,
हृदय में है काँपती धड़कन, लिए लघु भार !
चेतना रंगीन ज्वाला परिधि में सानन्द
मानती सी दिव्य सुख कुछ गा रही है छन्द !
अग्नि कीट समान जलती है भरी उत्साह
और जीवित है, न छाले हैं न उसमें दाह !
कौन हो तुम विश्व माया कुहुक सी साकार,
प्राण सत्ता के मनोहर भेद सी सुकुमार !
हृदय जिसकी कान्त छाया में लिए निश्वास
थके पथिक समान करता व्यजन ग्लानि विनाश।

\+ — + + +

मनु निखरने लगे ज्यों ज्यों यामिनी का रूप,
वह अनन्त प्रगाढ़ छाया फैलती अपरूप,
बरसता था मदिर कण-सा स्वच्छ सतत अनन्त
मिलन का संगीत होने लगा था श्रीमन्त।
छूटती चिनगारियाँ उत्तेजना उद्भ्रान्त,
धधकती ज्वाला मधुर, था वक्ष विकल अशान्त।
वात चक्र समान कुछ था बाँधता आवेश,
धैर्य का कुछ भी न मनु के हृदय मे था लेश।[1]

शास्त्रीय दृष्टि से उक्त अवतरण मे श्रद्धा आलम्बन है और मनु आश्रय। प्रकृति के मादक रूप एवं वस्तुव्यापार—जड चेतन सृष्टि का उल्लासोत्पादक हास्य तथा उसके नेत्रो म दृश्यमान अनुराग कलिकाए, रागारुण चन्द्रिका, उडता हुआ पुष्प-पराग, चन्द्र-रश्मियो की सुधा-वृष्टि तथा जागरणोत्सव मनाते हुए उसमे सद्यस्नात भव्य श्वेत-शुभ्र-शीतल एव सचिक्कण देवदारु वृक्ष, वासन्ती लता मण्डप एव गह्वरा के विश्राम-स्थल, माधवी का उन्मादक सौरभ, मकरन्द भाराक्रान्त मधु-छकित पवन के मन्द-मदान्ध झोके हिम-विन्दुओ की शय्या पर सोती हुई निशा की सुन्दर शिथिल, आलस्यमयी छाया आदि—बाह्य उद्दीपन हैं। श्रद्धा का उन्मादक हास्य मनु का हाथ पकड कर प्रेम के सम्बल के साथ स्वप्निल ससार म

---

१- कामायनी वासना सर्ग पृ० ८८-९२।

विचरण कुंज में विश्रामशीला निशा की कांत छाया के कुतूहलोत्पादक एवं अन्य उन्मादक प्रकृति रूपों से उद्दीप्त एवं भाव विह्वल होकर मदोन्मत्त व्यक्ति सा आचरण, द्रष्टा को भाव विह्वल एवं आनन्द-विभोर कर देने वाला विश्व-माया के इन्द्रजाली प्रभाव-सा उसका मधुर-मदिर रूप-वैभव एवं आत्मा के सुरम्य रहस्य सी उसकी सुकुमारता आलम्बनगत उद्दीपन हैं। मनु का श्रद्धा का हाथ अपने हाथ में लेकर प्रेम से स्वप्न-संसार में विचरण, भ्रांत आचरण तथा उनकी व्याकुलता मादकता एवं तृप्ति, श्रद्धा के रूठने का व्यर्थ सन्देह तथा उसे मनाने की आकांक्षा रखते हुए भी मना सकने की असमर्थता का अनुभव, धमनियों में वेदना सी उत्पन्न करता हुआ रक्त का संचार, हृदय की कम्पायमाना धड़कन तथा किसी मदिर-मधुर भार का अनुभव, अग्नि-कीट के समान वासना की रंगीन ज्वाला की परिधि में उनकी चेतना का दिव्य भ्रान्त्यानुभव एवं मादक गान, मदोन्मत्त कर देने वाली उत्तेजना, कामाग्नि के स्फुलिंगों का छूना एवं उसकी प्रज्वलित मधुर ज्वाल, विकल प्रशान्त हृदय तथा विह्वलता एवं कामावेश का अनुभव आदि अनुभाव हैं। आवेग, मद, हर्ष, मति, उन्माद, औत्सुक्य आदि संचारी भाव हैं। इस प्रकार मनु के हृदय में सुषुप्तावस्था में विद्यमान स्थायी भाव रति आलम्बन-रूपा श्रद्धा के संयोग से जाग्रत उक्त विभिन्न बाह्य एवं आलम्बनगत उद्दीपनों से उद्दीप्त तथा अनुभावों से व्यक्त और संचारियों से पुष्ट होकर रसावस्था को पहुँच गया है।

कहने की आवश्यकता नहीं कि संयोग शृंगार की यह सृष्टि साहित्य में अपना सानी नहीं रखती। इसको पढ़कर पाठक ऐसे कल्पना लोक में पहुँच जाता है जहाँ सब कुछ भव्य एवं आनन्दोत्पादक है वहाँ कोई अभाव नहीं श्रद्धा का रूप वैभव तथा मनु की काम चेष्टाएं एवं वृत्ति व्यापार प्रकृति के रूपात्मक एवं प्रणय व्यापारों से होड़ सी करते प्रतीत होते हैं।

इसके अतिरिक्त अन्य स्थलों पर भी संयोग शृंगार के चित्रण में प्रसाद की कला का उत्कर्ष दृष्टिगोचर होता है। इस विषय में वे इतने सिद्धहस्त हैं कि सामान्य भावों के चित्रण द्वारा भी उन्होंने शृंगार के अन्य अवयवों का संकेत मात्र करके रमणीय रस सृष्टि की है और उसके द्वारा ऐसा मादक वातावरण प्रस्तुत कर दिया है कि अध्येता मन्त्र मुग्ध एवं आश्चर्य-स्तब्ध हो उठता है। प्रणयिनी श्रद्धा के अनुभावों के चित्रण द्वारा संयोग शृंगार के निष्पत्तिकर्ता अन्य अवयवों का संकेत मात्र करके उन्होंने जो रस सृष्टि की है, वह अपनी जैसी आप ही है —

> गिर रहीं पलकें, झुकी थी नासिका की नोक।
> भ्रू-लता थी कान तक चढ़ती रही बेरोक।
> स्पर्श करने लगी लज्जा ललित कर्ण कपोल
> खिला पुलक कदम्ब-सा था भरा गद्‌गद बोल।
> किन्तु बोली क्या समर्पण आज का हे देव!

कोगा फिर धगप भारी हृदय हेतु शून्य ।
आह मैं दुर्बल कहो क्या ले सकूँगी दान !
वह, जिसे उपभोग करने में विकल हों प्राण ?"[१]

शास्त्रीय दृष्टि से विप्रलम्भ शृंगार के चार भेद माने गए हैं—पूर्वराग, मान, प्रवास एवं सकरुण विप्रलम्भ । पूर्वराग एवं सकरुण विप्रलम्भ का चित्रण प्रसाद ने नहीं किया । मान एवं प्रवास हेतुक विप्रलम्भ शृंगार का चित्रण उन्होंने बड़ा ही मर्मस्पर्शी किया है । सूर, बिहारी आदि कवियों की भांति उनके इन वर्णनों में ऊहात्मकता के लिए कोई स्थान नहीं है । विरह में नायिका की शारीरिक कृशता एवं क्षीणता के ऊहात्मक प्रदर्शन, वियोग-वह्नि में जलती नायिका की जलन के अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन तथा उसकी नाप जोख का प्रयत्न करने की उन्होंने आवश्यकता नहीं समझी । इसी प्रकार विरह-वर्णन के प्रसंग में षट् ऋतुओं अथवा बारहमासे के वर्णन द्वारा उस पर पड़ने वाले उनके प्रभाव की व्यंजना का भी उन्होंने कोई महत्व नहीं दिया । उनकी विरह वर्णन पद्धति संकेतात्मक है जिसमें पर्याप्त मौलिकता, नवीनता एवं मार्मिकता है । निम्नांकित अवतरण इस विषय में द्रष्टव्य हैं —

**मान विप्रलम्भ**

अद्धा अपनी शयन गुहा में
दुखी लौट कर आयी
एक विरक्ति बोझ सी ढोती
मन ही मन बिलखायी
+ × × +
मधुर विरक्ति भरी आकुलता
घिरती हृदय गगन में,
अन्तर्दाह स्नेह का तब भी
होता था उस मन में ।
वे असहाय नयन थे खुलते
मुँदते भीषणता में,
आज स्नेह का पात्र खड़ा था,
स्पष्ट कुटिल कटुता में । [२]

---

१ कामायनी, वासना सर्ग, पृ० ६४ ।
२ वही, कर्म सर्ग पृ० ११८–११९ ।

प्रवास विप्रलम्भ

कामायनी कुसुम वसुधा पर पड़ी, न वह मकरन्द रहा,
एक चित्र बस रेखाओं का अब उसमें हैं रग कहा।
वह प्रभात का हीन कला शशि, किरन कहां चांदनी रही,
वह सन्ध्या थी, रवि शशि तारा ये सब कोई नहीं जहा।
जहा तामरस इन्दीवर या सित शतदल हैं मुरझाये,
अपने नालों पर वह सरसी श्रद्धा थी, न मधुप आये।
वह जलधर जिसमे चपला या श्यामलता का नाम नही
शिशिर कला की क्षीण स्रोत वह जो हिमतल मे जम जाये।[1]

तथा

वन बालाओ के निकुज सब भरे वणु के मधु स्वर से,
लौट चुके थे आने वाले सुन पुकार अपने घर से।
किन्तु न आया वह परदेसी युग छिप गया प्रतीक्षा में,
रजनी की भीगी पलकों से तुहिन बिन्दु कण कण बरसे।
मानस का स्मृति शतदल खिलता, झरते बिन्दु मरन्द घने,
मोती कठिन पारदर्शी थे, इनमे कितने चित्र बने।
आसू सरल तरल विद्युत्कण, नयनालोक विरह तम में,
प्राण पथिक यह सम्बल लेकर लगा कल्पना जग रचने।[2]

इसके अतिरिक्त शान्त, वीर, रौद्र, वीभत्स, करुण, अद्भुत और वात्सल्य रसों की स्वाभाविक एव उत्कृष्ट व्यजना भी कामायनी में यथास्थान हुई है। उदाहरणाथ निम्नांकित अवतरण प्रस्तुत हैं —

शान्त

सोच रहे थे, "जीवन सुख है?
ना, यह विकट पहेली है
भाग अरे मनु ! इन्द्रजाल से
कितनी व्यथा न झेली है ?
\+ \+ \+
श्रद्धा के रहते यह सम्भव
नही कि कुछ कर पाऊगा,
तो फिर शान्ति मिलेगी मुझको
जहा खोजता जाऊगा।"[3]

———

१–कामायनी स्वप्न सग पृ० १७५।
२–वही, वही पृ० १७८।
३–वही निर्वेद सर्ग, पृ० २२६–२३०।

**वीर**

यों कह मनु ने अपना भीषण अस्त्र सम्हाला,
देव 'आग' ने उगली त्योंही अपनी ज्वाला।
छूट चले नाराच धनुष से तीक्ष्ण नुकीले,
टूट रहे नभ धूमकेतु अति नीले-पीले।
\+ \+ \+ \+
तो फिर आओ देखो कैसे होती है बलि,
रण यह यज्ञ पुरोहित! ओ किलात औ आकुलि!
और धराशायी थे असुर पुरोहित उस क्षण,
इड़ा अभी कहती जाती थी बस रोको रण—[1]

**भय**

"तो फिर मैं हूँ आज अकेला जीवन रण मे
प्रकृति और उसके पुतलों के दल भीषण मे।
आज साहसिक का पौरुष निज तन पर लेलें
राजदण्ड को वज्र बना सा सचमुच देखें।"[2]

**रौद्र**

अन्तरिक्ष म हुआ रुद्र हुकार भयानक हलचल थी,
अरे आत्मजा प्रजा! पाप की परिभाषा बन शाप उठी।
उधर गगन म क्षुब्ध हुई सब देव शक्तियां क्रोध भरी
रुद्र नयन खुल गया अचानक, व्याकुल कांप रही नगरी
अतिचारी था स्वय प्रजापति, देव अभी शिव बने रहें।
नही, इसी से चढी शिंजिनी अजगव पर प्रतिशोध भरी।[3]

**वीभत्स**

यज्ञ समाप्त हो चुका तो भी
धधक रही थी ज्वाला
दारुण दृश्य! रुधिर के छींटे!
अस्थि खण्ड की माला!
वेदी की निमम प्रसन्नता
पशु की कातर वाणी,

---

१ कामायनी सघर्ष सग पृ० २००-२०१।
२ वही, वही, पृ० २००।
३ वही, स्वप्न सग प० १८५।

मिल कर वातावरण बना था
कोई कुत्सित प्राणी ।[१]

**भयानक**

प्रकृति त्रस्त थी, भूतनाथ ने नृत्य विकम्पित पद अपना,
उधर उठाया, भूत सृष्टि सब होने जाती थी सपना ।
आश्रय पाने को सब व्याकुल स्वयं कलुष में मनु सन्दिग्ध,
फिर कुछ होगा यही समझ कर वसुधा का थर थर कंपना ।[२]

**करुण**

वे सब डूबे, डूबा उनका
विभव, बन गया पारावार
उमड़ रहा है देव सुखों पर
दुःख जलधि का नाद अपार ।

× × ×

स्वयं देव थे हम सब, तो फिर
क्यों न विशृंखल होती सृष्टि,
अरे अचानक हुई इसी से
कड़ी आपदाओं की वृष्टि ।
गया सभी कुछ गया, मधुरतम
सुर बालाओं का शृंगार
उषा ज्योत्स्ना सा यौवन स्मित
मधुप सदृश निश्चिन्त विहार ।[३]

**अद्भुत**

बन गया तमस था अलक जाल
सर्वांग ज्योतिमय था विशाल,
अन्तर्निनाद ध्वनि से पूरित,
थी शून्य भेदिनी सत्ता चित्,
नटराज स्वयं थे नृत्य निरत,
था अन्तरिक्ष प्रहसित मुखरित,
स्वर लय होकर दे रहे ताल
थे लुप्त हो रहे दिशाकाल ।[४]

---

१ कामायनी, कर्म, सर्ग, पृ० ११६ ।
२ वही स्वप्न सर्ग पृ० १८५ ।
३ वही चिन्ता सर्ग पृ० ८-९ ।
४ वही, दर्शन सर्ग, पृ० २५२ ।

**वात्सल्य**

> 'मैं रूठू मा और मना तू कितनी अच्छी बात कहा
> ले मैं सोता हूँ अब जाकर, बोलूंगा मैं आज नहीं।
> पके फलों से पेट भरा है नींद नहीं खुलने वाली।
> श्रद्धा चुम्बन ले प्रसन्न कुछ, कुछ विषाद से भरी रही।'[1]

कहना न होगा कि निर्बाध रसवत्ता महाकाव्य की कठोर कसौटी है। उत्कृष्ट से उत्कृष्ट युग निर्माता महाकाव्य भी इस पर पूर्णत खरे प्रमाणित नहीं होते। कामायनी भी इसका अपवाद नहीं है। फिर भी दार्शनिक जटिलता दुरूहता एव तद्विषयक गम्भीरता के बावजूद भी उसमे अगाध रसवत्ता तथा उसका पर्याप्त नैरन्तर्य बना रहता है। काव्य शास्त्रीय लक्षणों की दृष्टि से रस के विभिन्न अवयवों की योजना उसमें भले ही यत्र तत्र प्रतीत न हो पर कवि की सकेतात्मक पद्धति द्वारा उनका उसमे अध्याहार अवश्य है। लज्जा जसे मनोभाव के वर्णन के प्रसग मे भी उसकी अपनी मोहक तरलता एव स्निग्धता के कारण किसी प्रकार का अभाव प्रतीत नहीं होता। ऐसी स्थिति में कामायनी' के महाकाव्यत्व म इस दृष्टि से किसी प्रकार के सन्देह के लिए कोई स्थान नहीं।

**कलात्मकता**

कलात्मक समृद्धि की दृष्टि से कामायनीकार का प्रयत्न स्तुत्य है। यही कारण है कि उसके विरोधी भी उसकी इस विशेषता की प्रशसा किये बिना नहीं रहते।[2] काव्यशास्त्रीय दृष्टि से कलात्मक समृद्धि के उपकरणों का उसमे जो

---

१– कामायनी स्वप्न सर्ग, पृ० १८८।

२– कला चेतना की दृष्टि से कामायनी छायावादी युग का प्रतिनिधि-काव्य कहा जा सकता है। रत्नच्छाया व्यतिकर की तरह उसकी कला भावों की धूमिल वाष्प भूमि में प्रस्फुटित होकर नेत्रों को चकित किए बिना नहीं रहती। उसमे प्राणों का मम मधुर उन्मन गुजार भावनाओं का आरोहण तथा व्यापक सौन्दर्य बोध की नवोज्वलता है। कुछ सर्गों म प्रसाद जी की कला हिमशिखरों पर फहराती हुई ऊपर की स्वर्णिम आभा की तरह हृदय को विस्मयाभिभूत कर देती है। लेकिन ऐसा बहुत कम होता है। अधिकतर वह भाव धुले भाव छिपे मुग्धा के अवगुण्ठित मुख की तरह मन से आँख मिचौनी खेलती रहती है। वह हृदय को तन्मय नहीं करती, केवल प्राणों में रस सचरण करती है।"
—सुमित्रानन्दन पन्त, मैं मैं कामायनी लिखता, युगमनु—प्रसाद (मिश्र एव त्रिपाठी), पृ० ११०।

विनियोग है, वह उसे एक सफल महाकाव्य प्रमाणित करता है। उसकी भाषागत विशेषताए—शब्द चयन कौशल मधु वेष्टन एव महाकाव्योचित गम्भीरता भाव रस एव मनोवेगानुकूलता परिस्थिति एव परिवेश निर्माण-सामर्थ्य, अर्थध्वनन क्षमता, नादात्मक सौन्दर्य, माधुर्य कान्ति एव सौकुमार्यादि गुणो की योजना शब्द शक्तियो के समुचित उपयोग—, अलकारो की स्वाभाविकता एव प्रभविष्णुता, उपमान एव प्रतीक-योजनागत वशिष्ट्य, बिम्ब निर्माण क्षमता एव चित्रात्मकता, वर्ण विन्यास पद पूर्वार्द्ध वाक्य, प्रकरण एव प्रबन्ध वक्रतागत सौष्ठव औचित्य के विभिन्न रूपो की सुष्ठु योजना, ध्वन्यात्मकता एव छन्दयोजनागत वशिष्ट्य आदि सभी उसकी कलात्मक समृद्धि एव महत्ता के अभिव्यजक तथा महाकाव्यत्व की सफलता के सकेतक हैं। उसम यद्यपि इस दृष्टि से कतिपय दोष अथवा महाकाव्यत्व के बाधक तत्त्व भी हैं तथापि समष्टि रूप से वह इस दृष्टि से इतना सफल प्रमाणित होता है कि उसके महाकाव्यत्व मे कोई सन्देह नही रहता। इस विषय मे यद्यपि श्री रामधारीसिंह दिनकर का कथन उसकी एक दूसरी ही मूर्ति प्रस्तुत करता है तथापि उस कोई महत्त्व देने की आवश्यकता इसलिए प्रतीत नही होती क्योकि बहुमत की गम्भीर जल धारा में उसका सरलता से निलय हो जाता है। फिर भी इस दृष्टि स कामायनी के महाकाव्यत्व की सफलता का उद्घोष करने से पूव अपने कथन के पोषण, स्पष्टीकरण एव तथ्योद्घाटन के लिए कतिपय बिन्दुओ पर पृथक सविस्तर प्रकाश डालना होगा।

## भाषागत महत्ता

यदि रस कविता-कामिनी की आत्मा है तो भाषा उसका शरीर। अत प्रतिभाशाली कवि स्वभावत ही जहाँ एक ओर रसात्मक सौन्दय की महत्ता पर बल देकर अपनी काव्य-कृति की आत्मा को अभिनव सौन्दय प्रदान करने का प्रयत्न करता है, वहा दूसरी ओर वह उसके शारीरिक सौन्दय की महत्ता की प्रतिष्ठा के लिए उसके निर्माणक शब्दों के अभीष्ट सौष्ठव चयन एव कुशल सयोजन पर बल देता है। कामायनीकार कुशल एव प्रतिभाशाली कलाकार है, अत निसर्गत ही उसने शब्दों के अभीष्ट सौष्ठव चयन एव कुशल सयोजन द्वारा अपनी कृति को अभूतपूर्व शारीरिक रूप सौन्दर्य प्रदान किया है। कहने की आवश्यकता नहीं कि इस क्षेत्र में उसका अपना एक विशिष्ट दृष्टिकोण तथा उसकी अपनी कुछ निजी अभिरुचियाँ एव विशेषताएँ हैं और यही कारण है कि कामायनी की भाषा म व्याकरणात्मक अशुद्धियों एव च्युत सस्कृति आदि दोषो के बावजूद भी अध्येताओं के लिए एक अपूर्व आकर्षण है। उसका मधु वेष्टन साहित्य ससार म अपना सानी नहीं रखता। उसके मोहक आकर्षण पाश म आबद्ध पाठक कामायनी की दार्शनिक दुरूहता, जटिलता एव गम्भीरता तथा कथानक की मनोरजकता के अभाव में भी उसके सम्यक समग्र के आनन्द-लाभ का लोभ सवरण नहीं कर पाता। उसका एक एक शब्द पाठक की

आत्मा, मन एवं हृदय के लिए मधु वर्षण की ऐसी क्षमता रखता है कि उसका ध्यान करके वह आह्लाद विभोर हुए बिना नहीं रहता। निम्नांकित अवतरण इस विषय में द्रष्टव्य है—

हो नयनों का कल्याण बना
आनन्द सुमन सा विकसा हो
वासन्ती के वनवैभव में
जिसका पंचम स्वर पिक सा हो।[1]

तथा

मैं रति की प्रतिकृति लज्जा हूं
मैं शालीनता सिखाती हूँ,
मतवाली सुन्दरता पग में
नूपुर सी लिपट मनाती हूँ।
लाली बन सरल कपोलों मे
आंखों मे अंजन सी लगती,
कुंचित अलकों सी घुंघराली
मन की मरोर बन कर जगती।
चंचल किशोर सुन्दरता की
मैं करती रहती रखवाली,
मैं वह हलकी सी मसलन हूँ
जो बनती कानों की लाली।[2]

एवं

विमल मतवाली प्रकृति का आवरण वह नील
शिथिल है, जिस पर बिखरता प्रचुर मंगल खील
राशि राशि नखत कुसुम की अर्चना अश्रान्त
बिखरती है तामरस सुन्दर चरण के प्रान्त।"[3]

इसी तथ्य को दृष्टि मे रखते हुए फारसी के किसी कवि ने शब्द चयन कौशल की महत्ता पर बल देते हुए यह घोषणा की थी —

बराय पाकिये लफजे शबे बरोज आरन्द।
कि मुर्ग माहीओ बाशन्द खुफता ऊ बेदार।[4]

---

१– कामायनी, लज्जा सर्ग, पृ० १०१।
२– वही वही, पृ० १०३।
३– वही वासना सर्ग पृ० ६१।
४– वदेही–वनवास (हरिऔध), वक्तव्य, पृ० ९ से उद्धृत।

(अर्थात् काव्य में एक मनोरम शब्द की प्रतिष्ठा के लिए कवि उस रात्रि को, जागरण करके दिन में परिवर्तित कर देता है, जिसमें पक्षी से लेकर मछली तक सभी प्राणी निद्रा में बेसुध रहते हैं ।)

शब्द-समूह की दृष्टि से विचार करने से विदित होता है कि उसमें संस्कृत तत्सम शब्दों की प्रधानता है । दूसरा स्थान खड़ी बोली हिन्दी शब्दों का है । इसके अतिरिक्त नादात्मक सौन्दर्य-विधान के लिए कवि ने खड़ी बोली हिन्दी के तद्भव शब्दों का पर्याप्त प्रयोग किया है । कहने की आवश्यकता नहीं कि इस प्रकार के शब्दों के प्रयोग से कामायनी में जहाँ एक ओर नादात्मक सौन्दर्य की स्वाभाविक सृष्टि हुई है वहाँ दूसरी ओर उससे भाषा में माधुर्य गुण की भी यथेष्ट योजना हुई है 'किरण' के स्थान पर 'किरन', 'प्राण' के स्थान पर 'प्रान', 'स्वप्न' के स्थान पर 'सपना' 'सन्ध्या' के स्थान पर 'साँझ' आदि ऐसे ही शब्द हैं । शब्दों को विकृत करने की प्रवृत्ति कामायनीकार में बहुत कम है । विदेशी शब्दों के प्रयोग के पक्ष में भी वह नहीं है । समस्त ग्रन्थ में खोजने से ही एक-दो शब्द मिलेंगे परम्परागत साधारण बोल चाल के शब्दों का प्रयोग अवश्य उसने कुछ अधिक किया है । साथ ही उसने कुछ ऐसे शब्दों को भी प्रश्रय दिया है जिनका निर्माण उसने भावाभिव्यक्ति की संक्षिप्तता के लिए स्वयं किया । शब्द शक्तियों का उचित उपयोग तथा लक्षक व्यंजक प्रतीकात्मक, चित्र विधायक एवं ध्वन्यर्थ-व्यंजक शब्दों के प्रयोग में भी कामायनीकार पर्याप्त पटु है । साथ ही अपने स्वर-संयोजन-कौशल द्वारा स्वर लहरी (चित्र-राग) तथा स्वर-मैत्री की सृष्टि करने में भी उसकी यथेष्ट गति है ।

भाव मनोवेग, रस पात्र एवं परिस्थिति की दृष्टि से भी प्रसाद की भाषा का शब्द चयन कौशल स्पृहणीय है । प्राचीन भारतीय संस्कृति के विधाता एवं उन्नायक महामानव मनु तथा महिमामयी आद्या नारी श्रद्धा की जीवन गाथा और उनके भावों, मनोवेगों जीवन की विभिन्न परिस्थितियों मनोवैज्ञानिक स्थितियों तथा पृष्ठभौमिक परिवेश की अनुकूलता का ध्यान करने से उनके इस कौशल का महत्त्व और भी स्पष्ट होने लगता है । उनकी भाषा इस दृष्टि से कितनी स्वाभाविक एवं उपयुक्त है यह कदाचित् कहने की आवश्यकता नहीं । यद्यपि इस विषय में यह नहीं कहा जा सकता कि यह भाषा उस काल की भाषा जैसी अथवा उसके पर्याप्त निकट है क्योंकि ऐसा होना न तो सम्भव है और न करने की आवश्यकता ही है। कवि ने हिंदी में तत्कालीन कथानक को अभिव्यक्ति दी है । अतः उसकी भाषा हिन्दी के अतिरिक्त अन्य कोई हो ही नहीं सकती । पर उसकी स्वाभाविकता एवं महत्ता इसी में है कि वह तत्कालीन परिस्थितियों भावों मनोवेगों एवं परिवेश आदि के चित्रण में सक्षम है और उसमें इस दृष्टि से कोई अस्वाभाविकता प्रतीत नहीं होती । उसकी संस्कृतनिष्ठता एवं कोमलकान्त पदावली यदि एक ओर कामायनी के दार्शनिक विचारों को सम्यक् अभिव्यक्ति देने में समर्थ है तो दूसरी ओर वह मनोवेगों

को संस्कृत भाषा के निकट ले जाती है जो कदाचित् मूल भारोपीय भाषा से विकसित होने के कारण मनुकालीन भाषा की ओर कुछ संकेत कर सकती है। महाकाव्योचित गम्भीरता के कारण भी कामायनी की भाषा पर्याप्त स्वाभाविक है। साथ ही कवि ने अपने कथानक में जिस दार्शनिकता को प्रश्रय दिया है, उसके संवहन में भी वह समर्थ है। इसके अतिरिक्त उसमें निहित दार्शनिक विचारधारा की युगानुरूपता की दृष्टि से भी उसमें कोई अनौचित्य प्रतीत नहीं होता। लोकोक्तियों एवं मुहावरों की उछल-कूद तथा हल्की-फुल्की भाषा का प्रयोग उसमें प्रायः देखने में नहीं आता और यह एक प्रकार से उचित ही है क्योंकि महाकाव्य जैसी गुरु गम्भीर विधा के लिए उनके प्रयोग की आवश्यकता नहीं है। फिर भी इसका यह आशय नहीं है कि जान-बूझ कर उससे सर्वत्र उनका बहिष्कार अथवा भावाभिव्यक्ति के लिए अपेक्षित होने पर भी उनकी उपेक्षा की गई है। आवश्यकता होने पर यत्र तत्र कवि ने उसमें उनका प्रयोग किया है यद्यपि ऐसे स्थल बहुत कम हैं। इस दृष्टि से 'खटका छूट जाना', 'अंधेर मचना', 'जीवन का दाँव हार बैठना' 'छाती जलना' 'पाप का स्वयं पुकार उठना' आदि मुहावरों का उसमें प्रयोग पर्याप्त स्वाभाविक है।

## दोष

किन्तु यह सब होते हुए भी 'कामायनी' की भाषा सर्वथा निष्कलङ्क नहीं है। उसकी व्याकरणात्मक शुद्धता पर कामायनीकार ने उतना बल नहीं दिया जितना कि इस दृष्टि से उसके महाकाव्यत्व के लिए अपेक्षित था। यही कारण है कि उसकी भाषा में च्युतसंस्कृति दोष उत्पन्न करने वाली यत्र तत्र कतिपय अशुद्धियाँ भी रह गई हैं। कहीं उसमें बहुवचन के स्थान पर एकवचन का प्रयोग किया गया है, कहीं एकवचन के स्थान पर बहुवचन का कहीं पुल्लिंग के स्थान पर स्त्रीलिंग का और कहीं स्त्रीलिंग के स्थान पर पुल्लिंग का। निम्नांकित प्रयोग इसी प्रकार के हैं —

### बहुवचन के साथ एकवचन

(i) 'अरी आँधियों ! ओ बिजली की
दिवा-रात्रि तेरा नर्तन
उसी वासना की उपासना,
वह तेरा प्रत्यावर्तन।'[1]

(ii) अरे अमरता के चमकीले

1—कामायनी, चिन्ता सर्ग, पृ० ७।

पुतलो ! तेरे वे जयनाद ।[१]

(iii) शक्ति के विद्युत्कण जो व्यस्त,
विकल बिखरे है हो निरुपाय,
समन्वय उसका कर समस्त
विजयिनी मानवता हो जाय ।[२]

एकवचन के स्थान पर बहुवचन

नक्षत्रो, तुम क्या देखोगे
इस ऊषा की लाली क्या है ?
सकल्प भर रहा है उनमे
सन्देहों की जाली क्या है ? [३]

स्त्रीलिंग के स्थान पर पुल्लिंग

(i) एक सजीव तपस्या जैसे
पतझड़ में कर वास रहा । [४]

(ii) सुख दु ख का मधुमय धूपछांह
तूने छोड़ी वह सरल राह । [५]

पुल्लिंग के स्थान पर स्त्रीलिंग

जलता छाती का दाह रहा ।[६]

इसी प्रकार 'कष्ट सह हो' [७] आती चूम चूम चल जाती [८] जैसे अशुद्ध वाक्य तथा 'मुसक्यान के स्थान पर 'मुसक्यान मुसकाते' के स्थान पर' मुसक्यात, प्रकट के स्थान पर प्रगट' जैसे शब्दो के विकृत प्रयोग भी खटकते हैं । साथ ही बयार, मल 'सर्राटे जैसे शब्दो के प्रयोग से उत्पन्न ग्राम्य तथा 'महाचिति त्रिकोण' एवं 'अनाहत नाद शब्दो से उत्पन्न अप्रतीत दोष भी भाषा की सब सामर्थ्य एव निष्कलकता में बाधक हैं । फिर भी ये कति पय दोष तृण उसके गुणो की अगाध सरिता धारा मे तिरोहित अथवा प्रवाहित ही होते रहते हैं उसके अव्याहत प्रवाह म कोई व्यवधान उपस्थित नही कर पाते ।

---

१- कामायनी चिन्ता सर्ग, पृ० ७ ।
२- वही श्रद्धा सर्ग, पृ० ५६ ।
३- वही काम सर्ग, पृ० ६९
४- वही आशा सर्ग, पृ० ३३ ।
५- वही दर्शन सर्ग, पृ० २४१ ।
६- वही वही, पृ० २४२ ।
७- वही, कर्म सर्ग पृ० ११४ ।
८- वही आशा सर्ग, पृ० ३९ ।

काव्य-गुण

गुणों की सख्या के सम्बन्ध म साहित्याचार्यों म मतभेद है। यदि एक ओर भरत उनकी सख्या दस मानत हैं तो दूसरी ओर आचाय दण्डी बीस। किन्तु अधि काश आचाय उनकी सख्या तीन मानते हुए अन्य गुणो का पृथक अस्तित्व स्वीकार नहीं करते। उनक अनुसार भरत, दण्डी आदि आचार्यों द्वारा मान्य गुणो म से कतिपय गुण तो वस्तुत दोषा के अभाव रूप हैं और कतिपय का अन्तर्भाव उनके द्वारा निर्दिष्ट माधुय, प्रसाद एव ओज गुणो म हो जाता है। उदाहरणाथ सौकुमाय गुण का लक्षण उसे श्रुतिकटुत्व दोष का अभाव मात्र तथा माधुय गुण का समानधर्मा और अथ-व्यक्ति का लक्षण उसे प्रसाद गुण का पर्यायवाची सिद्ध करता है। अस्तु।

गुणों का महत्त्व कविता कामिनी के लिए वही है जो किसी कामिनी के लिए उसके गुणा का होता है। काव्यशास्त्रीय दृष्टि से वे रस के उपकारक तथा उसके उत्कप के साधक हैं। काव्य म उनकी स्थिति अचल मानी गई है और उनकी अचलता का आशय यह लिया जाता है कि उनका अस्तित्व रस के अभाव म नहीं हो सकता।

कामायनीकार मधुचर्या मधुवेष्टन एव माधुय का प्रेमी है। अन्य महा काव्यों के समान उसक कथानक म युद्ध के लिए कोई स्थान विशष नहीं है उसम या तो सारभूत प्रभाव की दृष्टि से शान्त रस का प्राधान्य माना जा सकता है या व्यापकता के आधार पर शृगार रस का। युद्ध के लिए कोई महत्त्वपूण स्थान न होने के कारण वीर रौद्र तथा भयानक रसो को उसम केवल सघष एव स्वप्न सर्गो मे ही स्थान मिल सका है। अत स्वभावत ही उसमे ओज गुण की भी बहुत कम योजना हो सकी है। प्रधानता एव व्यापकता दोनो ही दृष्टियो से माधुय गुण का उसम सर्वाधिक महत्त्व है। उसका कर्ता माधुय गुण का इतना प्रेमी है कि उसने उसकी योजना के लिए कहीं सस्कृत की कोमलकान्त पदावली को स्थान दिया है कहीं सस्कृत तत्सम शब्दो को तद्भव रूप म प्रयुक्त किया है और कहीं चुन चुन कर ऐसे शब्द रखे हैं जो स्वभावत ही माधुय गुण की सृष्टि करने मे पर्याप्त समथ हैं। मधु वेष्टन के प्रसग में इस विषय म विचार किया जा चुका है। यहा केवल इतना ही कहना अलम् होगा कि अपनी अभिरुचि एव दृष्टिकोण विशष के कारण कामायनीकार ने माधुय गुण की योजना पर जितना बल दिया है अन्य गुणों की योजना पर उतना नहीं। यही कारण है कि कामायनी में इसक उदाहरण न जाने कितने भरे पडे हैं। निम्नाकित अवतरण इस विषय म द्रष्टव्य हैं —

और देखा वह सुदर दृश्य
नयन का इन्द्रजाल अभिराम

कुसुम वमव म लता समान
चन्द्रिका स लिपटा घनश्याम ।[1]

तथा

वासना की मधुर छाया ! स्वास्थ्य बल विश्राम !
हृदय की सौन्दर्य प्रतिमा ! कौन तुम छवि धाम !
कामना की किरन का जिसमे मिला हो ओज
कौन हो तुम इसी भूले हृदय की चिर खोज ![2]

दार्शनिक जटिलता दुरूहता, महाकाव्योचित गम्भीरता तथा छायावादी शैली के कारण कामायनी मे यद्यपि प्रसाद गुण सम्पन्नता उतनी नहीं है जितनी कि अन्यथा हो सकती थी तथापि उसम उसको पर्याप्त स्थान मिला है। भावावेग के स्थलों पर भी उसमें उसका सुष्ठु विधान मिलता है। उदाहरणार्थ निम्नांकित अवतरण प्रस्तुत हैं —

कहा आगन्तुक ने सस्नेह—
'अरे तुम इतने हुए अधीर !
हार बैठे जीवन का दाव,
जीतते मर कर जिसको वीर ।[3]

तथा

रूठ गया था अपने पन से
अपना सकी न उसको मैं
वह तो मेरा अपना ही था
भला मनाती किसको मैं ।
यही भूल अब शूल सदृश हो
साल रही उर म मेरे
कैसे पाऊँगी उसको मैं
कोई आकर कह दे रे ।'[4]

जैसा कि कहा जा चुका है युद्ध-वर्णन को प्राधान्य न देने के कारण कामायनी मे ओज गुण की योजना यद्यपि अधिक नहीं हुई है तथापि 'सघर्ष' सर्ग म यत्र-तत्र उसका उत्कृष्ट विनियोग है —

ताण्डव म थी तीव्र प्रगति परमाणु विकल थे,
नियति विकर्षणमयी त्रास से सब व्याकुल थे ।
\+ \+ \+ \+

---

१—कामायनी, श्रद्धा सर्ग पृ० ४६ ।
२—वही, वासना सर्ग, पृ० ८७ ।
३—वही श्रद्धा सर्ग पृ० ५५ ।
निर्वेद सर्ग, पृ० २१२ ।

उठा तुमुल रणनाद, भयानक हुई अवस्था
बढ़ा विपक्ष समूह मौन पददलित व्यवस्था।
आहत पीछे हटे, स्तम्भ से टिक कर मनु ने
श्वास लिया, टंकार किया दुर्लक्ष्यी धनु ने।[१]

## अलंकरण क्षमता

अलंकरण की प्रवृत्ति मानव मात्र की विशेषता है। महाकाव्यकार भी इसका अपवाद नहीं हो सकता। अतः निसर्गतः ही वह जिस प्रकार अपने व्यक्तित्व को अलंकृत करके समाज को उससे प्रभावित करने का प्रयत्न करता है उसी प्रकार अपनी कविता-कामिनी अथवा भाषा भामिनी को भी अभीष्ट अलंकारों से सुसज्जित करके अध्येताओं के समक्ष प्रस्तुत करता है। कामायनीकार ने भी यही किया है। वह यद्यपि रीतिकालीन कवियों के समान अपनी कविता को अलंकारों से लाद देने के पक्ष में नहीं है तथापि उसने वांछित स्वाभाविक अलंकारों से उसे अलंकृत करने में भी कोई कृपणता नहीं की। इसके अतिरिक्त अपने समन्वयवादी दृष्टिकोण के कारण उसने इस क्षेत्र में भी प्राचीनता को महत्त्व देने के साथ ही नवीनता पर भी पर्याप्त बल दिया है। यही कारण है कि उसके अलंकारों में जितनी नैसर्गिकता, मार्मिकता, प्रभविष्णुता एवं सम्प्रेषण क्षमता है उतनी अन्य कवियों में प्रायः देखने में नहीं आती। स्थानाभाव के कारण यद्यपि उनका विस्तृत विवेचन यहाँ सम्भव नहीं तथापि अपने कथन के पोषण, स्पष्टीकरण एवं तथ्योद्घाटन के लिए उनका संक्षिप्त निदर्शन आवश्यक है।

स्थूल रूप से अलंकारों को प्रायः तीन वर्गों में विभक्त किया जाता है—शब्दालंकार, अर्थालंकार तथा शब्दार्थालंकार अथवा उभयालंकार। शब्दालंकारों में अलंकरण का सौन्दर्य उनमें प्रयुक्त शब्दों पर निर्भर रहता है। अतः उनके स्थान पर अन्य पर्याय वाची शब्दों के रख देने से वह प्रायः नष्ट हो जाता है। अर्थालंकारों में सौन्दर्य किसी प्रयुक्त शब्द विशेष पर निर्भर न रहकर उसके अर्थ में होता है। शब्दार्थालंकारों में सौन्दर्य जहाँ एक ओर उनमें प्रयुक्त शब्दों पर निर्भर रहता है वहाँ दूसरी ओर उसका अस्तित्व उसके अर्थ में भी होता है। दूसरे शब्दों में शब्दालंकारों में शब्द सौन्दर्य, अर्थालंकारों में अर्थ सौन्दर्य और शब्दार्थालंकारों में शब्द एवं अर्थ दोनों के ही सौन्दर्य की योजना पर बल दिया जाता है। स्पष्टीकरण के लिए तीनों पर पृथक् पृथक् रूप से विचार करना होगा।

## शब्दालंकार

शब्दालंकारों का सौन्दर्य कुछ विशिष्ट वर्णों, शब्दों, वाक्यों अथवा वाक्यांशों की आवृत्ति अथवा योजना पर निर्भर रहता है। अतः इस दृष्टि से उनके कई भेद किए जाते हैं। अनुप्रास, यमक, श्लेष, वक्रोक्ति, पुनरुक्तिप्रकाश एवं वीप्सा अलंकारों के पृथक्करण का यही आधार है। नादात्मकता पर बल देने वाले अलंकार काव्य में

---

१– कामायनी संघर्ष सर्ग पृ० २००।

इनकी योजना के लिए कोई प्रयत्न नहीं करते। काव्य निर्माण प्रक्रिया के समय स्वभावत ही उसम जिनकी योजना हो जाती है, उन्हीं को वे उसके लिए अलम् समझते हैं। कामायनीकार का भी यही दृष्टिकोण रहा है। यही कारण है कि सजन प्रक्रिया के समय स्वाभाविक रूप में उसमे जिन शब्दालकारो की योजना हो गई है, उनसे अधिक के लिए उसने कोई प्रयत्न नही किया। अत उसमें न तो यमक श्लेष जैसे प्रयत्न प्रसूत अलकारो की अधिक योजना हो सकी है और न उनम कोई कृत्रिमता ही है। उदाहरणार्थ निम्नाकित अवतरण द्रष्टव्य हैं —

छेकानुप्रास

ककण क्वणित रणित नूपुर थे,
हिलते थे छाती पर हार।[1]

वृत्यनुप्रास

कोकिल की काकली वृथा ही अब कलियो पर मडराती।[2]

यमक

मैं सुरभि खोजता भटकूँगा
वन वन बन कस्तूरी कुरग।[3]

श्लेष

(i) द रहा हो कोकिल सानन्द
सुमन को ज्यों मधुमय सन्देश—[4]

(ii) इन्द्रनील मणि महा चषक था
सोम रहित उलटा लटका।[5]

पुनरुक्तिप्रकाश

वरुण व्यस्त थे, घनी कालिमा
स्तर स्तर जमती पीन हुई।[6]

वीप्सा

सब कहते हैं खोलो खोलो
छवि देखूगा जीवन धन की।[7]

अर्थालकार

अर्थालकारो का महत्त्व शब्दालकारों की अपेक्षा कहीं अधिक है। उनमे उस कृत्रिमता के लिए स्थान नहीं, जो शब्दालकारो मे होती है। यही कारण है कि प्रतिभाशाली कवि उनका अपेक्षाकत अधिक प्रयोग करते हैं। कामायनीकार भी इसका अपवाद नहीं है। उसके अर्थालकारों के औचित्य, स्वाभाविकता एव प्रभावोत्पादन-क्षमता से अभिभूत पाठक उनके महत्त्व का हृदयगम कर पन्त जी के इस कथन का समर्थक हो जाता है—

---

१ कामायनी, चिन्ता सर्ग पृ० ११।
२ वही स्वप्न सर्ग पृ० १७५।
३ वही, ईर्ष्या सर्ग पृ० १५३।
४ वही, श्रद्धा सर्ग पृ० ५०।
५ वही आशा सर्ग पृ० २४।
६ वही चिन्ता सर्ग पृ० १४।
७ वही, काम सर्ग पृ० ६८।

"अलंकार केवल वाणी की सजावट के लिए नहीं, वे भाव की अभिव्यक्ति के विशेष-द्वार हैं। भाषा की पुष्टि के लिए, राग की परिपूर्णता के लिए आवश्यक उपादान हैं, वे वाणी के आचार व्यवहार रीति नीति हैं पृथक स्थितियों के पृथक स्वरूप भिन्न अवस्थाओं के भिन्न चित्र हैं।"[१]

अर्थालंकारों को स्थूलत ५ वर्गों में विभक्त किया जाता है—(१) साम्यमूलक (२) विरोधमूलक (३) शृंखलामूलक (४) न्यायमूलक (५) गूढार्थ प्रतीतिमूलक अथवा वस्तुमूलक। किन्तु काव्य में सामान्यतया साम्य एवं विरोधमूलक वर्गों के प्रमुख एवं अधिक प्रचलित अलंकारों का ही प्रयोग किया जाता है। 'कामायनी' भी इसका अपवाद नहीं है। अत कामायनीकार की अलंकरण क्षमता के मूल्यांकन के लिए इन दो प्रमुख वर्गों के अलंकारों पर ही विचार करने की आवश्यकता है।

## साम्यमूलक अलंकार

इस वर्ग के अलंकारों में दो वस्तुओं में समता की भावना को दृष्टि में रखते हुए उक्ति के सौन्दर्य-वर्द्धन का प्रयत्न किया जाता है। इसे सादृश्य या साधर्म्यमूलक वर्ग की संज्ञा से भी अभिहित किया जाता है काव्य के अधिकांश अलंकार इसी वर्ग के अन्तर्गत आते हैं। इसके पुन ६ उप-वर्ग किये जाते हैं—(१) अभेदप्रधान (२) भेदप्रधान (३) भेदाभेदप्रधान (४) प्रतीतिप्रधान (५) गम्यप्रधान (६) अपरवैचित्र्य-प्रधान।

### (१) अभेदप्रधान साम्यमूलक

इसमें दो समान वस्तुएं किसी प्रकार के भेद से रहित पूर्णत एक सी वर्णित की जाती हैं। इसके अन्तर्गत रूपक उल्लेख सन्देह भ्रान्तिमान, अपह्नुति और परिणाम अलंकार आते हैं। किन्तु कामायनीकार की अभिरुचि इनमें केवल रूपक तथा सन्देह में विशेष है। उसके रूपक इतने भव्य एवं उत्कृष्ट हैं उनमें इतनी स्वाभाविकता चित्र निर्माण क्षमता एवं प्रभविष्णुता है कि पाठक उनकी प्रतिभा पर मन्त्र मुग्ध हो उठता है। कहने की आवश्यकता नहीं कि इस विषय में प्रसाद जी इतने कुशल हैं कि किसी भी स्थिति में उनकी उत्कृष्टातिउत्कृष्ट सृष्टि कर सकते हैं। क्या नारी रूप चित्रण क्या प्रकृति सौन्दर्यांकन क्या परिस्थिति-निरूपण क्या मनोवृत्ति चित्रण और क्या तथ्योद्घाटन जिस किसी भी क्षेत्र में दृष्टि जाती है वहीं उनके रूपकों की सृष्टि उनकी तद्विषयक क्षमता का उद्घोष करती प्रतीत होती है —

#### नारी रूप चित्रण

(१) स्मित मधुराका थी श्वासों से
पारिजात कानन खिलता।[२]

---

१ पल्लव प्रवेश, पृ० १६।
२ कामायनी निर्वेद सर्ग, पृ० २२

(ii) और देखा वह सुंदर दृश्य
नयन का इन्द्रजाल अभिराम ।[१]

प्रकृति सौन्दर्यांकन

(i) विश्व कमल की मृदुल मधुकरी
रजनी तू किस कोने से
आती चूम चूम चल जाती
पढ़ी हुई किस टोने से ।[२]

(ii) अवकाश सरोवर का मराल
कितना सुंदर कितना विशाल ।[३]

परिस्थिति निरूपण

(i) अनवरत उठे कितनी उमंग
चुम्बित हो आंसू जलधर से अभिलाषाओं के शैल शृंग
जीवन नद हाहाकार भरा, हो उठती पीड़ा की तरंग
+ + + + +
फलगा स्वजनों का विरोध बन कर तम वाली श्याम अमा
दारिद्र्य दलित बिलखाती हो यह शस्य श्यामला प्रकृति रमा
दुःख नीरद में बन इन्द्रधनुष बदले नर कितने नये रंग
बन तृष्णा ज्वाला का पतंग ।[४]

(ii) हृदय बन रहा था सीपी सा
तुम स्वाती की बूंद बनी
मानस शतदल झूम उठा जब
तुम उसमें मकरन्द बनीं ।[५]

(iii) भुज लता फंसा कर नर तरु से
झूले सी झोंके खाती हूं ।[६]

मनोवृत्ति चित्रण

(i) हे अभाव की चपल बालिके,
री ललाट की खल लेखा !

---

१ कामायनी श्रद्धा सर्ग पृ० ४६ ।
वही आशा सर्ग, पृ० ३६ ।
३ वही, दर्शन सर्ग, पृ० २३५ ।
४ वही इड़ा सर्ग, पृ० १६४ ।
५ वही निर्वेद सर्ग पृ० २२३ ।
६ वही, लज्जा सर्ग पृ० १०५ ।

हरी मरो सी दौड़ धूप, ओ
जल माया की चल रेखा ।
इस ग्रह कक्षा की हलचल री !
तरल गरल की लघु लहरी
जरा अमर जीवन की और न
कुछ सुनने वाली बहरी । [1]

(ii) मैं यह हलकी सी मसलन हूँ
जो बनती कानों की लाली । [2]

(iii) मैं रति की प्रतिकृति लज्जा हूँ
मैं शालीनता सिखाती हूँ
मतवाली सुन्दरता पग में
नूपुर सी लिपट मनाती हूँ । [3]

तथ्य निरूपण

दुख की पिछली रजनी बीच
विकसता सुख का नवल प्रभात
एक परदा यह भीना नील
छिपाये है जिस में सुख गात । [4]

स देह का आलंकारिक सौन्दर्य कामायनी में यद्यपि अधिक नहीं दीखता है
जहाँ भी उसकी सृष्टि हुई है, उसका अभिनव कलात्मक रूप देखते ही बनता है

सिकुड़न कौशेय वसन की
थी विश्व सुन्दरी तन पर
या मादन मृदुतम कम्पन
छायी सम्पूर्ण सृजन पर । [5]

तथा

आह ! वह मुख ! पश्चिम के व्योम
बीच जब घिरते हों घनश्याम
अरुण रवि मण्डल उनको भेद
दिखाई देता हो छविधाम ।

---

१ कामायनी, चिन्ता सर्ग पृ० ५ ।
२ वही, लज्जा सर्ग, पृ० १०३ ।
३ वही, वही वही ।
४ वही, श्रद्धा सर्ग पृ० ५३ ।
५ वही आनन्द सर्ग, पृ० २६३ ।

या कि, नव इन्द्र नील लघु शृंग
फोड़ कर धधक रही हो कान्त,
एक लघु ज्वालामुखी अचेत
माधवी रजनी में अश्रान्त।[1]

## (३) भेदप्रधान साम्यमूलक

इस वर्ग के अलंकारों में दो वस्तुओं में साम्य स्थापित करते हुए भी भिन्नता रखी जाती है। प्रतीप तुल्ययोगिता, व्यतिरेक, दीपक, सहोक्ति, विनोक्ति, दृष्टान्त, निदर्शना और प्रतिवस्तूपमा अलंकार इस के अन्तर्गत हैं। किन्तु अलंकारों के उदाहरण जुटाने की चिन्ता न करने तथा सर्जन प्रक्रिया में धारा प्रवाह में सन्निविष्ट हो कर उसके गत्यात्मक सौन्दर्य एवं महत्ता की अभिवृद्धि करने वाले अलंकारों की योजना द्वारा अभिव्यक्ति को सम्प्रेष्य एवं प्रभावोत्पादक बनाने में तल्लीन रहने के कारण कामायनीकार ने इनकी ओर कोई ध्यान नहीं दिया।

## भेदाभेदप्रधान साम्यमूलक

भेदाभेदप्रधान साम्यमूलक अलंकारों में दो वस्तुओं में पूर्ण समता होने पर भी उन्हें एक-दूसरे से भिन्न प्रदर्शित किया जाता है—भिन्न होते हुए भी वे अभिन्न और अभिन्न होते हुए भी भिन्न रखी जाती हैं। उपमा, अनन्वय उपमेयोपमा और स्मरण अलंकार इसके अन्तर्गत हैं। किन्तु कामायनीकार ने इनमें सर्वाधिक बल उपमा अलंकार की योजना पर दिया है। उसकी उपमायें इतनी स्वाभाविक सबल सशक्त एवं प्रभविष्णु हैं कि देखकर अनायास ही कालिदास का स्मरण हो आता है। सर्जन प्रक्रिया में तल्लीन कवि ने भावावेग में पग पग पर उपमाओं की सृष्टि योजना द्वारा अभिव्यक्ति को स्वाभाविक कलात्मक उत्कर्ष के जिस भव्य शिखर पर पहुंचाया है वह पाठक अध्येताओं की ही नहीं, किसी भी कलाकार की स्पृहा का विषय है। निम्नांकित अवतरण इस विषय में द्रष्टव्य हैं —

(१) हां नयनों का कल्याण बना
आनन्द सुमन सा विकसा हां
वासन्ती के वनवैभव में
जिसका पंचम स्वर पिक सा था।
जो गूंज उठे फिर नस नस में
मूर्च्छना समान मचलता सा
आंखों के सांचे में आकर
रमणीय रूप बन ढलता सा।[2]

---

१—कामायनी, श्रद्धा सर्ग, पृ० ४६–४७।
२—वही, लज्जा सर्ग, पृ० १०१।

(ii) आह ! घिरेगी हृदय लहलहे
खेतों पर करका घन सी
छिपी रहेगी अन्तरतम म
सब के, तू निगूढ़ धन सी ।[१]

(iii) घन रही इडा भी भव के
दूसरे पार्श्व म नीरव
गैरिक वसना सन्ध्या सी
जिसके चुप थे सब कलरव ।[२]

(४) प्रतितिप्रधान साम्यमूलक

इस वग के अलकारों म दो वस्तुओं म समता की प्रतितिमात्र होती है वस्तुत वह होती नहीं । उत्प्रेक्षा एव अतिशयोक्ति अलकार इस वग के अन्तगत हैं।

उत्प्रेक्षा एव अतिशयोक्ति ऐसे कलात्मक उपकरण हैं जिनकी उपेक्षा कोई भी महान् कलाकार नहीं कर सकता । कवि विनिर्मित यथाथ एव कल्पना की समन्वित सष्टि इनका सहयोग पाकर ऐसा सबल-सशक्त एव कलात्मक रूप धारण करती है कि वह मानव मात्र की स्पृहा का विषय बन जाती है । कामायनीकार की कला सष्टि में यद्यपि इन दोनो ही अलकारों की सौन्दय सष्टि का विनियोग है तथापि उसकी उत्प्रेक्षाओं की कलात्मकता अपेक्षाकृत अधिक मनोहारी है। यही नहीं, व्यापकता प्रचुरता स्वाभाविकता सजीवता म वे उसकी अतिशयोक्तियो से कहीं आगे हैं । कारण कामायनीकार का उनके प्रति अपेक्षाकृत अधिक रुझान तथा उनम उसकी विशेष अभिरुचि है । यों भी साहित्य जगत म भी उत्प्रेक्षा का अतिशयोक्ति से कहीं अधिक समादर है। अध्येताओ को भी वे अपनी स्वाभाविक सजीवता के कारण अधिक आकृष्ट करती हैं। अत कामायनीकार के उनके प्रति अपेक्षाकृत अधिक आकर्षण ने उसकी कलात्मक समृद्धि में योग ही दिया है अयोग नहीं। निम्नांकित उत्प्रेक्षाए कितनी मोहक हैं इसका अनुमान सहृदय काव्य मर्मज्ञ स्वय कर सकते हैं —

(i) आह ! वह मुख ! पश्चिम के व्योम
बीच जब घिरते हो घनश्याम,
अरुण रवि मण्डल उनको भेद
दिखाई देता हो छविधाम
× × × ×
घिर रहे थे घुघराले बाल
अस अवलम्बित मुख के पास

---

२—कामायनी चिन्ता सग प० ६ ।
३—वही, आनन्द सग, प० २७७ ।

नील घन शावक से सुकुमार
सुधा भरने को विधु के पास।
और उस मुख पर वह मुसक्यान !
रक्त किसलय पर ले विश्राम
अरुण की एक किरण अम्लान
अधिक अलसाई हो अभिराम ![1]

(ii) शीतल झरनों की धारायें
बिखराती जीवन अनुभूति।
उस असीम नीले अंचल में
देख किसी की मृदु मुसक्यान,
मानो हसी हिमालय की है
फूट चली करती कल गान।[2]

गम्यप्रधान एवं अध्यवसित्यप्रधान साम्यमूलक

गम्यप्रधान साम्यमूलक वर्ग के अलंकारों की योजना कामायनी में प्राय दृष्टिगोचर नहीं होती। हां अध्यवसित्यप्रधान साम्यमूलक वर्ग के अलंकारों में समासोक्ति पर उसने अवश्य बल दिया है क्योंकि एक प्रकार से सारा प्रबन्ध-काव्य ही समासोक्ति पद्धति पर लिखा गया काव्य है।

## विरोधमूलक

इस वर्ग के अलंकारों में दो वस्तुओं का कार्य कारण विच्छेदवश परस्पर विरोध प्रदर्शित किया जाता है। विरोधाभास, विभावना, असंगति भ्रम, विषम, अधिक अन्योन्य, विशेष, विचित्र व्याघात, अत्यन्तातिशयोक्ति और विशेषोक्ति अलंकार इस वर्ग के अन्तर्गत हैं। किन्तु जैसा कि कहा जा चुका है कामायनीकार का उद्देश्य अलंकारों के काव्य शास्त्रीय ज्ञान का प्रदर्शन न होकर अपनी कला का उत्कर्ष प्रदर्शित करना है। अत उसने इन अलंकारों के उदाहरण जुटाने का प्रयत्न तो नहीं किया पर अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए इनमें से कतिपय का उचित प्रयोग अवश्य किया है। कहना न होगा कि विरोधाभास इनमें शीर्षस्थानीय है। उसके स्वाभाविक प्रयोग से कामायनी को कलात्मकता में पर्याप्त योग मिला है —

(i) किरनों का रज्जु समेट लिया
जिसका अवलम्बन ले चढ़ती

---

१—कामायनी, श्रद्धा सर्ग, पृ० ४६-४७।
१—वही आशा सर्ग, पृ० २६।

रस के निर्झर में धस कर मैं
आनन्द शिखर के प्रति बढ़ती ।[1]

(ii) जागृत था सौन्दर्य यदपि वह
सोती थी सुकुमारी ।[2]

(iii) लाली बन सरल कपोलों में
आँखों में अंजन सी लगती ।[3]

## उभयालंकार

उभयालंकारों से आशय उन अलंकारों से है जिनमें एक ही स्थल पर दो या दो से अधिक अलंकारों के समन्वित सौन्दर्य की योजना हो। इनमें तिल तन्दुलवत् पृथक् पृथक् दृश्यमान अलंकारों को संसृष्टि और दुग्ध-जलवत् मिले हुए अलंकारों को संकर की संज्ञा से अभिहित किया जाता है कहने की आवश्यकता नहीं कि कामायनी में कहीं एक ही स्थल पर दो या दो से अधिक शब्दालंकारों के समन्वित सौन्दर्य की योजना है कहीं दो या दो से अधिक अर्थालंकारों के सौन्दर्य की ओर कहीं दोनों ही प्रकार के अलंकारों के समन्वित सौन्दर्य की। इसी प्रकार कहीं ये अलंकार तिल तन्दुलवत् पृथक्-पृथक् दृष्टिगोचर होते हैं और कहीं दुग्ध जलवत् मिले हुए।

## पाश्चात्य अलंकार

उक्त अलंकारों के अतिरिक्त कतिपय पाश्चात्य अलंकारों के सुष्ठु प्रयोग से भी कामायनी की कलात्मक समृद्धि में पर्याप्त योग मिला है। मानवीकरण (Personification), विशेषण-विपर्यय (Transferred Epithet) तथा ध्वन्यर्थ व्यंजन (Onomatopoeia) इसी प्रकार के अलंकार हैं। अधोंकित अवतरण इस दृष्टि से कामायनी की कलात्मक महत्ता के उद्घोषक हैं —

## मानवीकरण

(i) सिन्धु सेज पर धरा वधू अब
तनिक संकुचित बैठी सी,
प्रलय निशा की हलचल स्मृति में
मान किए सी, ऐंठी सी।[4]

(ii) उच्च शैल शिखरों पर हँसती
प्रकृति चंचला बाला

---

१—कामायनी, लज्जा सर्ग, पृ० ९९।
२—वही, कर्म सर्ग पृ० १२५।
३—वही, लज्जा सर्ग पृ० १०३।
४—वही, आशा सर्ग पृ० २४।

धवल हसी बिखराती अपनी
फैला मुधुर उजाला ।[१]

(iii) धीरे धीरे हिम आच्छादन
हटने लगा धरातल से,
जगी वनस्पतिया अलसाई
मुख धोती शीतल जल से ।[२]

विशेषण-विपर्यय

(i) खुली उसी रमणीय दृश्य में
अलस चेतना की आखें ।[३]

(ii) माधवी निशा की अलसाई
अलकों में लुकते तारा सी ।[४]

(iii) जलधि लहरियों की अगडाई
बार बार जाती सोने ।[५]

(iv) आज अमरता का जीवित हू
मैं वह भीषण जर्जर दम्भ ।[६]

ध्वन्यर्थ व्यजन

(i) धीरे धीरे लहरो का दल,
तट से टकरा होता ओझल
छप-छप का होता शब्द विरल,
थर-थर कप रहती दीप्ति तरल ।[७]

(ii) हाहाकार हुआ क्रन्दनमय
कठिन कुलिश होते थे चूर,
हुए दिगन्त बधिर, भीषण रव
बार बार होता था क्रूर ।
दिग्दाहों से धूम उठे, या
जलधर उठे क्षितिज तट के

---

१—कामायनी, नम सर्ग, पृ० ११६ ।
२—वही आशा सग पृ० २३ ।
३—वही वही, पृ० ३५ ।
४—वही काम सग पृ० ६७ ।
५—वही, आशा सग, पृ० २३ ।
६—वही चिन्ता सग, पृ० १८ ।
७—वही दर्शन सग पृ० २४६ ।

सघन गगन में भीम प्रकम्पन
झंझा के चलते झटके ।[1]

(ii) यह क्या तम में करता सनसन ?
धारा का ही क्या यह निस्वन ।[2]

## अप्रस्तुत योजना

काव्य एक कला है । उसकी महत्ता शुष्क-नीरस वर्णनों अथवा इतिवृत्तात्मकता में न होकर उसकी कलात्मकता में है । अप्रस्तुत योजना कलात्मकता के विधायक उपकरणों में शीर्षस्थानीय ही नहीं, एक प्रकार से कला का प्राण है । उसके अभाव में अभिव्यक्ति शुष्क, नीरस एवं पंगु हो जाती है और उसका कोई महत्त्व नहीं रह जाता । यही कारण है कि प्रतिभाशाली कवि अप्रस्तुत-योजना द्वारा अपनी अभिव्यक्ति को कलात्मक रूप देकर उसकी सरसता एवं प्रभावोत्पादकता की अभिवृद्धि करता है । कामायनीकार इस विषय में कितना पटु है यह कदाचित् कहने की आवश्यकता नहीं । उसके अप्रस्तुतों में जितना औचित्य, सम्प्रेषणक्षमता एवं स्वाभाविकता है वह अन्यत्र बहुत कम देखने में आती है । उनमें यदि एक ओर व्यापकता एवं वैविध्य है तो दूसरी ओर चित्र-विधान-क्षमता एवं बिम्ब-निर्माण-कर्त्री शक्ति ।

स्थूलतः अप्रस्तुतों के दो वर्ग किए जा सकते हैं—१ अप्रस्तुत उपमान २ अप्रस्तुत प्रतीक । कामायनीकार का अधिकार दोनों पर समान रूप से है । यदि एक ओर उसके अप्रस्तुत उपमानों में वैविध्य, व्यापकता, सजीवता एवं प्रभावोत्पादन-क्षमता है तो दूसरी ओर अप्रस्तुत प्रतीकों में । दोनों ने ही कामायनी की कला को महत्ता के ऐसे समुच्च शृंग पर प्रतिष्ठित किया है जो पाठक, अध्येताओं तथा कलाकारों को अपनी ओर बरबस आकृष्ट करता है ।

कामायनी में अप्रस्तुत उपमानों के प्रयोग में जो वैविध्य है वह इस बात का द्योतक है कि कवि की कला चेतना में पर्याप्त व्यापकता है । उनके चयन का आधार कहीं वर्ण-साम्य है, कहीं भाव-साम्य, कहीं गुण-साम्य और कहीं व्यापार साम्य । निम्नांकित अवतरणों में प्रयुक्त उपमान इस कथन की यथार्थता के साक्षी हैं—

रूप-साम्य

वह विश्व मुकुट सा उज्ज्वलतम शशिखण्ड सदृश था स्पष्ट भाल ।

---

१—कामायनी चिन्ता सर्ग, पृ० १३ ।
२—वही दर्शन सर्ग पृ० २४७ ।

आकार साम्य

उसी तपस्वी-से लम्बे, थे
देवदारु दो चार खड़े ।[1]

वर्ण-साम्य

(१) केतकी गर्भ सा पीला मुंह, ।[2]
(२) उषा ज्योत्स्ना सा यौवन स्मित ।[3]

भाव साम्य

वह आग पाड़ा अनुभव सा
अग भंगिया का नतन ।[4]

गुण-साम्य

घिर रहे थे घुंघराले बाल
अंस अवलम्बित मुख के पास
नील घन शावक से सुकुमार
सुधा भरने को विधु के पास ।[5]

व्यापार-साम्य

उधर गरजती सिंधु लहरियां
कुटिल काल के जालों सी
चली आ रहीं फेन उगलती
फन फैलाये व्यालों सी ।[6]

इसी प्रकार उसमें कहीं मूर्त उपमेय के लिए अमूर्त उपमानों का प्रयोग किया गया है, कहीं अमूर्त उपमेय के लिए मूर्त उपमानों का, कहीं मूर्त उपमेय के लिए मूर्त उपमानों का और कहीं अमूर्त उपमेय के लिए अमूर्त उपमानों का —

मूर्त उपमेय के अमूर्त उपमान

(i) बिखरी अलकें ज्यों तर्क जाल ।[7]
(ii) श्वास पवन पर चढ़ कर मेरे
दूरागत वंशी रव सी,
गूंज उठी तुम, विश्व कुहर मे
दिव्य रागिनी अभिनव सी ।[8]

---

१–कामायनी चिन्ता सर्ग, पृ० ३ ।
२–वही ईर्ष्या सर्ग पृ० १४२ ।
३–वही, चिन्ता सर्ग, पृ० ६ ।
४–वही वही पृ० ११ ।
५–वही, श्रद्धा सर्ग, पृ० ४७ ।
६–वही चिन्ता सर्ग पृ० १४ ।
७–वही इडा सर्ग, पृ० १६८ ।
८–वही निर्वेद सर्ग, पृ० २२५ ।

**अमूर्त उपमेय के मूर्त उपमान**

(१) मृत्यु अरी चिर निद्रे ! तेरा
अंक हिमानी सा शीतल ।[१]

(२) 'ओ चिन्ता की पहली रेखा !
अरी विश्व वन की व्याली ![२]

**मूर्त उपमेय के मूर्त उपमान**

धस रही इडा भी वय के
दूसरे पार्श्व में नीरव,
गैरिक वसना सन्ध्या सी
जिसके चुप थे सब कलरव ।[३]

**अमूर्त उपमेय के अमूर्त उपमान**

सुना यह मनु ने मधु गुंजार
मधुकरी का सा जब सानन्द ।[४]

इसके अतिरिक्त इन्द्रिय व्यापार-बोधक उपमानों के उचित प्रयोग से भी कामायनी की कला को पर्याप्त बल मिला है। कवि ने कहीं दृश्य उपमानों की योजना द्वारा उसकी कलात्मकता की अभिवृद्धि की है कहीं स्पृश्य उपमानों द्वारा, कहीं श्रव्य उपमानों द्वारा और कहीं घ्रातव्य उपमानों द्वारा।

**अप्रस्तुत प्रतीक**

कामायनी छायावाद युग की सर्वोत्कृष्ट देन है। अतः निसर्गतः ही उसमे छायावादी शैली की प्राय सभी विशेषताएं विद्यमान हैं। अप्रस्तुत प्रतीकों का कुशल प्रयोग कलात्मक उत्कर्ष की एक महती आवश्यकता तथा छायावाद की एक प्रमुख विशेषता है। अतः स्वाभाविक ही है कि छायावाद युग के कर्णधार प्रसाद की कृतियों मे उनका कुशल प्रयोग हो। कामायनी प्रबन्ध काव्य है। प्रतीकों की प्रचुरता उसकी कलात्मक समृद्धि मे सहायक अवश्य होती उसके गुरुत्व गाम्भीर्य एवं औदात्य में भी अत्यधिक अभिवृद्धि करती किन्तु उससे उसकी सम्प्रेषण-क्षमता को आघात पहुंचता, कथानक की सरिता धारा मे व्याघात पड़ता और वह अध्येताओं के लिए अस्पष्ट एवं दुर्बोध होकर एक पहेली बन जाती मलार्मे जैसे प्रतीकवादी कवि यद्यपि इसे उसका गुण ही समझते तथापि प्रसाद को यह अभीष्ट न था। उनका समन्वयवादी दृष्टिकोण अतिवाद विरोधी था। प्रतीक-योजना को वे काव्य का सर्वस्व अथवा साध्य न मान कर शैली शिल्प का एक उपकरण मानते थे। साथ ही मुक्तक एवं प्रबन्ध-काव्य की आवश्यकताओं एवं स्वरूप को भी वे भली भांति समझते थे। यही कारण है कि

---

१—कामायनी, चिन्ता सर्ग, पृ० १८।
२—वही, वही पृ० ५।
३—वही, आनन्द सर्ग पृ० २७७।
४—वही, श्रद्धा सर्ग पृ० ४१।

प्रतीक प्रयोग को शैली-शिल्प का एक उपकरण समझकर कामायनी मे उन्होंने उनका उचित उपयोग किया है।

कामायनी की प्रतीकात्मकता दो प्रकार की है—(१) कथानक तथा पात्रो की प्रतीकात्मकता (२) शली शिल्प की प्रतीकात्मकता। अत दोनों पर पृथक् पृथक रूप से विचार करना होगा।

### (१) कथानक तथा पात्रों की प्रतीकात्मकता

मनु मन, मानसिक चेतना अथवा मनोमय कोश म स्थित जीव के प्रतीक हैं श्रद्धा हृदय की, इडा बुद्धि अथवा मस्तिष्क की, कलास अथवा आनन्द नगर आनन्मय कोश, स्वर्ग या मोक्ष धाम का देवता इन्द्रियो के, आकुलि किलात आसुरी वत्तियों के, वृषभ धम का, सोमलता भोग विलास की, सोमलता से आवत वृषभ भोग विलास-युक्त धम का, प्रलय माया की, हिंसा-यज्ञ आसुरी व्यापारा के, मनुपुत्र हृय, बुद्धि एव मननशीलता युक्त नये मानव का और कलास यात्रा जीव के आनन्द प्राप्ति के लिए अहकार की क्लेशमयी स्थिति से समरसता की आनन्दमयी स्थिति—मनोमय कोश स आनन्दमय कोश-तक पहुचने के प्रयास का प्रतीक है।

किन्तु इसके लिए कामायनीकार का कोई आग्रह नही है। उसका कथन है—

'यह आख्यान इतना प्राचीन है कि इतिहास म रूपक का भी अद्भुत मिश्रण हो गया है। इसीलिए मनु, श्रद्धा और इडा इत्यादि अपना ऐतिहासिक अस्तित्व रखते हुए साकेतिक अथ की भी अभिव्यक्ति करें तो मुझे कोई आपत्ति नही। मनु अर्थात् मन के दोनों पक्ष, हृदय और मस्तिष्क का सम्बन्ध क्रमश श्रद्धा और इडा से भी सरलता स लग जाता है।" [१]

स्पष्ट है कि कथानक का ऐतिहासिक पक्ष प्रस्तुत एव प्रधान है और प्रतीकात्मक पक्ष अप्रस्तुत एव गौण।

शली शिल्प के उपकरणों की दृष्टि से कामायनी मे प्रतीकों का प्रयोग मौलिकता, मार्मिकता, सजीवता औचित्य एव स्वाभाविकता में अपना सानी नही रखता। यही कारण है कि उनके विषय म यहाँ तक कहा जाता है—

'कामायनी की भाषा सवत्र ही चित्र भाषा एव प्रतीक भाषा है जिसमे तत्सम तथा सचित्र, ससन्दम शब्दावली का मुक्त प्रयोग हुआ है। [२]

कहने की आवश्यकता नही कि यह कथन कामायनी की कलात्मक चित्रात्मक एव प्रतीकात्मक—महत्ता एव अपरिमेय प्रभावोत्पादन क्षमता का समन्वित परिणाम

---

१ कामायनी आमुख, पृ० ७–८।

२ डा० नगेन्द्र कामायनी के अध्ययन की समस्यायें, पृ० २२।

है। अत इसे तथ्यों अथवा तर्कों की कसौटी पर कस सकना भले ही सम्भव न हो, पर यह स्पष्ट है कि कामायनी की प्रतीक-योजनागत क्षमता तथा तद्विषयक कलात्मक महत्ता उसके महाकाव्योचित महत्त्व की संकेतक है। उसमें प्रतीकात्मक भाषा का सर्वत्र प्रयोग भले ही न हो, पर उसमें पर्याप्त प्रतीकात्मकता है। भावाभिव्यक्ति के लिए अभीष्ट प्रतीकों का उसमे यथास्थान सुष्ठु प्रयोग है और इस दृष्टि से कलाकार का प्रयास श्लाघनीय। निम्नांकित उदाहरण उसकी शैली शिल्पगत महत्ता तथा प्रयोगगत औचित्य स्वाभाविकता एवं कलाकार की तद्विषयक दक्षता के द्योतक हैं —

(i) तुमने इस सूखे पतझड में
भर दी हरियाली कितनी ।[1]

(ii) आशा की आलोक किरन से
कुछ मानस से ले मेरे,
लघु जलधर का सृजन हुआ था
जिसको शशि लेखा घेरे—
उस पर बिजली की माला सी
झूम पडी तुम प्रभा भरी,
और जलद वह रिमझिम बरसा
मन वनस्थली हुई हरी ।[2]

(iii) क्षुद्र पात्र ! तुम उसमे कितनी
मधु धारा हो ढाल रही ।[3]

(iv) कलियाँ जिनको मे समझ रहा वे काटे बिखरे आस पास।

(v) "मधुमय बसन्त जीवन वन के,
वह अन्तरिक्ष की लहरो में
कब आये थे तुम चुपके से
रजनी के पिछले पहरो मे !
क्या तुम्हें देख कर आते यों,
मतवाली कोयल बोली थी !
उस नीरवता मे अलसाई
कलियो ने आखें खोली थीं ![5]

---

१ कामायनी, निर्वेद सर्ग, पृ० २२३।
२ वही वही, पृ० २२५।
३ वही वही पृ० २२८।
४ वही, इडा सर्ग पृ० १५८।
५ वही काम सर्ग पृ० ६३।

(iv) मुझको काटे ही मिलें धन्य !

हो सफल तुम्हें ही कुसुम कुज ।[१]

उक्त अवतरणों मे प्रयुक्त पतझड विनाश एव शून्यता का, हरियाली निमाण एव आनन्द का, कुछ मोहमयी भावना का, जलधर प्रेम का, शशि लेखा श्रद्धा के प्रभामय मुख मण्डल का, शशिलेखा से आवृत जलधर प्रेमिका श्रद्धा के मुख मण्डल की सीमाओं मे आबद्ध प्रेम का क्षुद्र पात्र तुच्छ व्यक्ति का, मधु धारा आनन्द की, कलिया सुख साधनों की, काँटे दुखो अथवा विपत्तियो के, मधुमय वसत यौवन का, अन्तरिक्ष हृदय का लहरी भावों की, रजनी किशोरावस्था की पिछले पहर समाप्ति का, कोयल मन की कलियाँ वृत्तियो की और कुसुम-कुञ्ज सुख का प्रतीक है ।

## चित्रात्मकता एव बिम्ब निर्माण क्षमता

काव्य एव चित्र-कला का घनिष्ठ सम्बध है । यदि चित्रकार चित्रों म अपनी अभिव्यक्ति को रूपायित करता है, तो कवि उसे शब्द चित्रो मे । चित्र दोनो ही हैं पर वस्तुत दोनों मे एक प्रकार से अतर भी पर्याप्त है । एक तो दोनो की रचना-सामग्री में भिन्नता है, दूसरे यदि चित्र चाक्षुप सवेदन की वस्तु हैं तो काव्य मानसिक सवेदन की वस्तु । अत स्थूल रूप से जब यह कहा जाता है कि 'काव्य वर्णमय चित्र है'[२] जिसके लिए चित्र भाषा की अपेक्षा होती है और जिसके विपय में यह मान्यता है कि "उसके, शब्द सस्वर होने चाहिए, जो बोलते हो, सेब की तरह जिनेके रस की मधुर-लालिमा भीतर न समा सकने के कारण बाहर झलक पडे, जो अपने भाव को अपनी ही ध्वनि में आखो के सामने चित्रित कर सकें, जो झकार में चित्र, चित्र, म झकार हो "[३] तो 'चित्र' शब्द से आशय 'मानस-चित्र' स होता है जो वस्तुत बिम्ब है। कहने की आवश्यकता नही यह बिम्ब शब्द अग्रेजी शब्द 'Image' का पर्याय तथा आधुनिक पाश्चात्य समीक्षाशास्त्र की देन है। अत स्पष्ट है कि जिसे हम शब्द-चित्र या मानस-चित्र कहते हैं वही बिम्ब या काव्य बिम्ब है और जो चित्रात्मकता है वही बिम्बात्मकता अथवा बिम्बमयता । अत जिस प्रकार चित्रात्मकता को हम काव्य का अनिवाय उपकरण मानते हुए ( काव्य को ) 'वर्णमय चित्र' अथवा शब्द चित्र घोषित करते हैं उसी प्रकार आधुनिक पाश्चात्य समीक्षक बिम्ब को काव्य का

---

१- कामायनी, ईर्ष्या सर्ग, पृ० १५४ ।

२- प्रसाद, स्कन्दगुप्त, प्रथम अङ्क, पृ० २१ ।

३- पन्त, पल्लव, प्रवेश, पृ० १७ ।

अनिवार्य उपकरण ही नहीं, 'काव्य क्रियारम्भ की विधि का अनिवार्य मन्त्र' घोषित करते हुए कला सृजना को बिम्ब रचना का पर्याय मानते हैं।[1]

प्रसाद जी काव्य को न केवल वाङ्मय चित्र' मानते हैं प्रत्युत अपनी इस मान्यता को उन्होंने अपने काव्य में क्रियान्वित भी किया है। उनकी कामायनी में न जाने कितने बहुमूल्य चित्र (वस्तुतः बिम्ब) भरे पड़े हैं। उनकी अभिव्यक्ति अपने चित्रों (बिम्बों) के माध्यम से ही गतिशील होती है, उनके अभाव में उसका अस्तित्व ही नहीं प्रतीत होता। अतः वैविध्य, औचित्य, स्वाभाविकता, रसात्मकता अथवा प्रभावोत्पादन-क्षमता जिस किसी भी दृष्टि से देखा जाए, कामायनी के चित्र (बिम्ब) बेजोड़ हैं। उनमें मानव प्रकृति एवं वस्तु चित्र (बिम्ब), पूर्ण एवं खण्ड चित्र (बिम्ब), स्थिर एवं गत्यात्मक चित्र (बिम्ब), दृश्य (चाक्षुष), श्रव्य (श्रौत), स्पृश्य, घ्रातव्य एवं आस्वाद्य चित्र (बिम्ब), लक्षित एवं उपलक्षित चित्र (बिम्ब), यथार्थ तथा रोमानी (स्वच्छन्द) चित्र बिम्ब सभी यथास्थान विनिविष्ट हैं। निम्नांकित बिम्ब इस विषय में द्रष्टव्य हैं —

**पूर्ण बिम्ब**

> मातृत्व बोझ से झुके हुए
> बंध रहे पयोधर पीन आज,
> कोमल काले ऊनों की नव
> पट्टिका बनाती रुचिर साज।
> सोने की सिकता में मानो
> कालिन्दी बहती भर उसास,
> स्वर्गंगा में इन्दीवर की
> या एक पंक्ति कर रही हास।[2]

**खण्ड बिम्ब**

> उधर गरजती सिन्धु लहरियाँ
> कुटिल काल के जालों सी,
> चली आ रहीं फेन उगलती
> फन फैलाये व्यालों सी।[3]

---

१– डा० नगेन्द्र, काव्य-बिम्ब स्वरूप और प्रकार, काव्य बिम्ब, पृ० १।
२– कामायनी, ईर्ष्या सर्ग, पृ० १४२।
३– वही चिन्ता सर्ग, पृ० १४।

सरल बिम्ब

कामायनी कुसुम वसुधा पर पड़ी, न वह मकरन्द रहा,
एक चित्र बस रेखाओं का, अब उसमें है रंग कहा।
वह प्रभात का हीन कला शशि, किरन कहा चादनी रही,
वह सन्ध्या थी, रवि शशि तारा ये सब कोई नही जहा।[1]

मिश्र बिम्ब

लाली बन सरल कपोलों में
आखों में अन्जन सी लगती,
कुंचित अलकों सी घुंघराली
मन की मरोर बन कर जगती।
चंचल किशोर सुन्दरता की
मैं करती रहती रखवाली
मैं वह हलकी सी मसलन हूँ
जो बनती कानो की लाली।[2]

जटिल बिम्ब

"कोमल किसलय के अंचल में नन्ही कलिका ज्या छिपती सी,
गोधूली के धूमिल पट में दीपक के स्वर में दिपती सी।
मंजुल स्वप्नो की विस्मृति में मन का उन्माद निखरता ज्यो,
सुरभित लहरों की छाया मे बुल्ले का विभव बिखरता ज्यो,
वसी ही माया में लिपटी अधरों पर उंगली धरे हुए
माधव के सरस कुतूहल का आखो मे पानी भरे हुए।
नीरव निशीथ में लतिका सी तुम कौन आ रही हो बढती?
कोमल बाहे फैलाये सी आलिंगन का जादू पढती!
किन इन्द्रजाल के फूलो से लेकर सुहाग कण राग भरे,
सिर नीचा कर हो गूथ रही माला जिससे मधु धार ढरे।[3]

लक्षित बिम्ब

घिर रहे थे घुंघराले बाल
अंस अवलम्बित मुख के पास।[4]

---

१– कामायनी, स्वप्न सर्ग पृ० १७५।
२– वही लज्जा सर्ग, पृ० १०३।
३– वही वही, लज्जा सर्ग पृ० ६८।
४– वही, श्रद्धा सर्ग, पृ० ४७।

उपलक्षित बिम्ब

नील परिधान बीच सुकुमार
सुधा भरने को विधु के पास । [1]

इसी प्रकार काव्य तत्वों—भाव बुद्धि कल्पना एवं शैली—के उचित विनियोग, जीवन की विभिन्न स्थितियों के मनोवैज्ञानिक निदर्शन, प्रेम मिलन, त्याग विरह, पुनर्मिलन आदि मार्मिक प्रसंगों के स्वाभाविक कलात्मक एवं मर्मस्पर्शी चित्रण, लक्षणा, व्यंजना आदि शब्द शक्तियों के कुशल प्रयोग औचित्य एवं वक्रोक्ति के षट रूपों—प्रबंध, गुण अलंकार रस लिंग एवं नामगत औचित्य तथा वर्ण विन्यास पद-पूर्वार्द्ध, पद परार्द्ध, वाक्य प्रकरण एवं प्रबन्धगत वक्रोक्ति—की सुष्ठु योजना तथा छंद-वैधानिक सौन्दर्य की दृष्टि से भी कामायनी की कला महाकाव्योचित शीर्षस्थानीय प्रमाणित होती है ।

## ७ व्यापक सौंदर्य-सृष्टि

सौन्दर्य का प्रभाव अमोघ है । उसके साक्षात्कार एवं अनुभूति से प्राणी अपने जीवन को कृतकृत्य समझता है और उसके अभाव में उसे निस्सार एवं निरर्थक । यही कारण है कि वह सर्वत्र उसी की खोज एवं अनुभूति के लिए विकल रहता है । परिणामतः वह कहीं उसकी खोज जीवन एवं जगत् में यथार्थ करता है, कहीं उसके यथार्थ से आगे अपने कल्पना लोक अथवा आदर्श लोक में, कहीं मानव, प्रकृति अथवा वस्तुओं के भव्य, आकर्षक एवं रमणीय बाह्य रूपाकार में और कहीं आत्मा के उन्नायक एवं विश्व-मंगल-विधाता भावों गुणों अथवा वृत्ति-व्यापारों में । कलाकार इस दृष्टि से उससे कहीं आगे है । वह केवल द्रष्टा ही नहीं, स्रष्टा भी है । अपनी सौन्दर्यान्वेषिणी प्रकृति के कारण वह जहाँ विश्व के प्रत्येक रूप में सौन्दर्यान्वेषण का प्रयत्न करता है वहाँ अपनी भावुकता के कारण सृष्टि के कण-कण के सौन्दर्य में दिव्यात्मा का आभास पाकर आनन्द-विभोर हो उल्लसित हो उठता है और अपनी कलात्मक प्रतिभा एवं सृजन-क्षमता के कारण उस काव्य के रूप में व्यक्त कर अपने जीवन को धन्य समझता है । महाकाव्यकार महान् कलाकार है । साहित्य-जगत में उसकी सृष्टि अपना सानी नहीं रखती । अतः स्वभावतः ही वह अपनी वैयक्तिक महत्ता तथा कृति की काव्यरूपगत अनुपमेयता एवं असाधारणता के अनुरूप ही उसमें सौन्दर्य के व्यापक, विराट एवं महान् रूप को प्रश्रय देता है । कहने की आवश्यकता नहीं कि इस प्रकार उसकी यह सृष्टि सौन्दर्य की ऐसी विराट समानान्तर सृष्टि बन जाती है, जिसमें जीवन जगत एवं विश्वात्मा के बहुविध रूपों की सौन्दर्य सत्ताएं अपने समस्त कलात्मक उपकरणों के सौन्दर्यावरण से

---

१ कामायनी श्रद्धा सर्ग पृ० ४७ ।

आवेष्टित होकर ऐसा महान् रूप धारण करती हैं कि पाठक उनके सौंदर्य के साक्षात्कार में तन्मय हो अपने जीवन की यथार्थताओं का विस्मरण कर देता है। कामायनी की सौंदर्य सृष्टि भी बहुत कुछ ऐसी ही महासृष्टि है। उसकी लोकप्रियता तथा साहित्य जगत में उसकी महत्ता की मान्यता बहुत कुछ उसकी सौन्दर्य सृष्टि का परिणाम है।

कामायनीकार प्रसाद वस्तुतः सौंदर्य, प्रेम एवं यौवन के महत्त्व-प्रतिष्ठाता कलाकार हैं। उनकी इसी विशेषता से प्रभावित होकर श्री चन्द्रबलीसिंह ने लिखा है —

एक प्रसिद्ध समालोचक ने सुमित्रानन्दन पन्त को सौंदर्य का कवि कहा है, यह उपाधि जयशंकर प्रसाद पर कहीं अधिक सटीक बैठती है।[1]

कामायनीकार सौंदर्य को ज्ञान के समान विश्व व्यापी मानते हुए इस बात को स्वीकार करता है कि उसके केन्द्र देश-काल और परिस्थितियों से तथा प्रधानतया संस्कृति के कारण भिन्न भिन्न अस्तित्व रखते हैं। उसके अनुसार खगोलवर्ती ज्योति केन्द्रों की तरह आलोक लिए उनका परस्पर सम्बन्ध हो सकता है किन्तु वही आलोक शुक्र की उज्ज्वलता और शनि की नीलिमा में सौंदर्य-बोध के लिए अपनी अलग अलग सत्ता बना लेता है।[2]

व्यापक सौंदर्य भावना में विश्व की प्रत्येक वस्तु के सौंदर्य के लिए स्थान है। जहां आचार्य शुक्ल को प्रकृति के उग्र कराल एवं भयंकर रूपों में सौंदर्य के दर्शन होते हैं, कवि पन्त को पीले पत्तों टूटी टहनियों कंकड़ पत्थरों, छिलकों तथा कूड़े-कर्कट में सौंदर्य बिखरा मिलता है वहां कामायनीकार को भी विश्व के कण कण में सौंदर्य की दिव्याभा विकीर्ण प्रतीत होती है यही कारण है कि प्रकृति के उग्र, कराल एवं भयंकर रूप भी उसके आकर्षण के विषय हैं। कुटिल काल के जालों के समान गरजती हुई सिन्धु लहरियां उसकी सूक्ष्म दृष्टि से इसीलिए नहीं बच सकीं। रम्य मनोहर एवं आकर्षक प्रकृति रूपों के समान ही उसके उग्र कराल एवं भयावह रूपों का सूक्ष्म चित्रण उसकी इस विशेषता का द्योतक है। उसकी दृष्टि में मूर्त एवं अमूर्त का भेदीकरण व्यर्थ है। उसका कथन है—रूपत्व का आरोप मूर्त एवं अमूर्त दोनों में है क्योंकि चाक्षुष प्रत्यक्ष से इतर वायु और अन्तरिक्ष अमूर्त रूप का भी रूपानुभव हृदय द्वारा होता देखा जाता है।[3] अतः स्वभावतः उसने मूर्त एवं अमूर्त दोनों को समान महत्त्व दिया। कहना न होगा कि कामायनी में यदि एक ओर मूर्त

---

१ चन्द्रबलीसिंह (अनु० पाण्डेय), जयशंकर प्रसाद युगमनु-प्रसाद, पृ० ६५।
२ प्रसाद काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध, पृ० २८-२९।
३ वही, वही, पृ० ३५।

सौंदर्य के मोहक रूप की कलात्मक प्रतिष्ठा है तो दूसरी ओर शारीरी एवं अमूर्त मनोवृत्तियों एवं गुणादर्शों की। उसकी विराट सौन्दर्य-सृष्टि में जहां नारी, पुरुष एवं बाल-जगत् का सौन्दर्य अपनी सम्पूर्ण महिमा के साथ प्रतिष्ठित है, वहां अमूर्त प्रकृति रूपा तथा जीवन एवं जगत् के आदर्श रूपों की स्निग्ध सौन्दर्य मूर्ति की भी प्रतिष्ठा है।

रूप को प्रसाद जी सौन्दर्य बोध का एक मात्र साधन मानते हैं। उनकी धारणा है—'सौन्दर्य-बोध बिना रूप के हो ही नहीं सकता। सौन्दर्य की अनुभूति के साथ ही साथ हम अपनी संवेदना को आकार देने के लिए उनका प्रतीक बनाने को बाध्य हैं।'[1] यही कारण है कि उन्होंने शारीरी मनोवृत्तियों को भी सौन्दर्य का अनिंद्य रूप प्रदान करके इस प्रकार प्रस्तुत किया है कि वे अध्येताओं को आनन्द-विभोर एवं आत्म विस्मृत कर देती हैं। कामायनी की लज्जा का मोहक रूप इसका उत्कृष्ट उदाहरण है।

नारी सौन्दर्य की अद्भुत सृष्टि कामायनी के कला-जगत् में एक प्रकार से प्रखर आलोक-पुंज के समान है। श्रद्धा एवं इड़ा अपना ऐतिहासिक अस्तित्व रखने के साथ ही क्रमशः हृदय एवं बुद्धि के प्रतीक रूपा भी हैं। अतः उनके व्यक्तित्व के इन दो-दो रूपों के कारण उनकी सौन्दर्य मूर्ति की स्वाभाविक प्रतिष्ठा के लिए ऐसे अभूतपूर्व कौशल की अपेक्षा थी, जो सामान्य कलाकारों में सम्भव नहीं। किन्तु कामायनीकार की सौन्दर्य-सृजनकर्त्री क्षमता ने उन्हें ऐसा स्वाभाविक एवं दिव्य आकर्षण सम्पन्न रूप प्रदान किया है, जिसे देखकर पाठक कलाकार की तद्विषयक क्षमता पर आश्चर्य-स्तब्ध हुए बिना नहीं रहता। श्रद्धा का रूप-सौन्दर्य साहित्य जगत् की अभूतपूर्व सृष्टि है। उसके मोहक रूपाकार को अनिंद्य भोली अपनी संक्षिप्त रूप रेखा एवं संकेतात्मक अभिव्यक्ति में भी इतनी प्रभावोत्पादक है, उसके रूप चित्र के रंग इतने नैसर्गिक मौलिक एवं आकर्षक हैं, उसकी आत्मा एवं हृदय दोनों ही इतने अनिंद्य, निष्कलुष एवं महान् हैं कि पाठक उनसे अभिभूत हुए बिना नहीं रहता। उसके व्यक्तित्व में उसका हृदय अपनी सम्पूर्ण महत्ता के साथ इस प्रकार प्रतिष्ठित है कि उसके पति मनु के समान ही पाठक उसकी महत्ता से चमत्कृत हो उसके स्वर में स्वर मिला कर कह उठता है —

> 'तुम देवि ! आह कितनी उदार
> वह मातृ मूर्ति है निर्विकार,
> हे सर्वमंगले ! तुम महती,
> सबका दुख अपने पर सहती
> कल्याणमयी वाणी कहती

---

१ प्रसाद काव्य और कला तथा अन्य निबंध पृ० ३५।

तुम क्षमा निलय मे हो रहती,
मैं भूला हूँ तुमको निहार ।"[1]

इडा के व्यक्तित्व में जिस सौन्दय मूर्ति की प्रतिष्ठा हुई है, उसकी स्वामाविकता कलाकार की मौलिक सजनकर्त्री क्षमता की परिचायिका है। प्रसाद जी ने उसके जिस रूप की कल्पना की है वह उसके प्रतीकात्मक रूप के कितना अनुरूप एव स्वाभाविक है यह सोचकर पाठक उनकी प्रतिमा पर मन्त्रमुग्ध हुए बिना नहीं रहता —

बिखरी अलकें ज्यों तक जाल
वह विश्व मुकुट सा उज्ज्वलतम शशिखण्ड सदृश था स्पष्ट भाल
दो पद्म पलाश चषक से दृग देते अनुराग विराग ढाल
गुजरित मधुप से मुकुल सदृश वह आनन जिसमें भरा गान
वक्षस्थल पर एकत्र धरे सस्कृति के सब विज्ञान ज्ञान
था एक हाथ मे कम कलश वसुधा जीवन रस सार लिए
दूसरा विचारों के नभ को था मधुर अभय अवलम्ब दिए
त्रिवली थी त्रिगुण तरगमयी, आलोक वसन लिपटा अराल
चरणों म थी गति भरी ताल ।[2]

यही नहीं उसके आन्तरिक गुणो के चित्रण में भी पर्याप्त स्वाभाविकता है। अपनी तर्क-बुद्धि का वह किसी भी स्थिति मे छोडन को तयार नहीं। 'सघष' सग में कामुक मनु स वह जिस प्रकार तक वितक करती है, वह उसके प्रतीकात्मक रूप की महत्ता के प्रदशन के साथ ही विश्व के निखिल सौन्दय की सार रूपा नारी के महिमामय व्यक्तित्व के अनिद्य रूप की भी उद्घोषणा करता है।

पुरुष-सौन्दय भी इसी प्रकार सक्षिप्त एव सकेतात्मक होने पर भी पर्याप्त प्रभविष्णु है। मनु अपनी शारीरिक सौन्दय सम्बन्धी बाह्य रूपाकारगत विशेषताओं तथा शक्ति-सामथ्य बल विक्रम एव अन्य अनेक क्षमताओं एव सबलताओं के कारण अभिनन्दनीय हैं यद्यपि उनकी मनोवज्ञानिक दुबलताए उनके व्यक्तित्व को सवथा निष्कलक नहीं रहने देतीं। मनु-पुत्र मानव के रूप म बाल-सौन्दय की स्पृहणीय प्रतिष्ठा है। आकुलि एव किलात मनु के व्यक्तित्व के कलक माजन तथा उसकी सबलता की अभिव्यक्ति म सहायक हैं।

वस्तु-सौन्दय की स्पृहणीय योजना देवताओं की सस्कृति तथा उनके भाग विलास के प्रसाधनों श्रद्धा द्वारा निर्मित कुटीरादि तथा सारस्वत प्रदेश की भौतिक एव वैज्ञानिक समृद्धि के प्रसग म हुई है फिर भी सृष्टि विकास के आदिकाल से सम्बद्ध होने के कारण कामायनी म उसको वह व्यापकता नहीं मिल सकी जो एक महाकाव्य की अनिवाय विशेषता है।

---

१ कामायनी, दशन सग पृ० २४८।
२ वही इडा सग, पृ० १६८।

जीवन जगत् एवं प्रकृति को कामायनीकार ने चिति के विराट मंगलमय शरीर के रूप में देखा है। अतः स्वभावतः उन उनमें सर्वत्र अनन्त सौन्दर्यमयी चेतना वृत्तियाँ उस विश्वात्मा के रहस्य को मूर्तिमान् करती प्रतीत होती हैं जिसकी इच्छा इस सृष्टि की उत्पत्ति एवं विनाश का कारण है। यही कारण है कि सृष्टि के कण कण में उसे उसी विश्वात्मा के रहस्यमय सौन्दर्य के दर्शन होते हैं। सृष्टि के बाह्य आवरण यद्यपि उस के सौन्दर्य के साक्षात्कार में बाधक हैं तथापि उनके अन्तराल से उसका अनिंद्य रूप-सौन्दर्य झाँकता प्रतीत होता है।

घटनाओं की स्वल्पता के कारण यद्यपि पात्रों के वृत्ति-व्यापारों तथा उनके कर्म सौन्दर्य की योजना में वह व्यापकता नहीं आ सकी जो एक महाकाव्य के लिए अपेक्षित है तथापि श्रद्धा मनु एवं इडा के मंगलमय वृत्ति-व्यापारों के रूप में उसका विनियोग अपनी क्षेत्रगत सीमाओं के बावजूद भी पर्याप्त प्रभावोत्पादक है। साथ ही मन के दुर्दम से क्रुद्ध प्रजा, देव शक्तियों तथा रुद्रादि का रोष प्रदर्शन विरोध एवं युद्ध में घातक प्रहारों द्वारा उन्हें दिया गया दण्ड भी अपने मंगलकारी रूप के कारण धर्म रक्षा एवं न्यायशीलता की सौन्दर्य मूर्ति का प्रतिष्ठापक है। कहने की आवश्यकता नहीं कि मनु का इडा के प्रति बलात्कार तो निन्द्य एवं विगर्हणीय है ही उनका अहंवादी निरंकुशता एवं अनियन्त्रित अधिकारवाद भी सामाजिक दृष्टि से अनिष्टकारी होने के कारण अवांछनीय एवं गर्हित है क्योंकि उससे दूसरों के अधिकारों का हनन तथा उनके साथ अन्याय होता है, Live and let Live' के सिद्धान्त की हत्या होती है। जो दूसरों को जीवित रहने के अधिकार से वंचित करता है, उसे स्वयं भी जीने का अधिकार क्यों हो? इसी प्रकार मानव के मातृ पितृ-प्रेम आदि से प्रेरित वृत्ति व्यापारों के संक्षिप्त संकेतात्मक वर्णन भी उसके बालकोचित कर्म-सौन्दर्य की ओर इंगित करते हैं।

इस प्रकार स्पष्ट है कि कामायनी की सौन्दर्य-सृष्टि यद्यपि आदि मानव एवं आद्या नारी की जीवन गाथा तथा सृष्टि विकास के आदिकाल की कथा से सम्बद्ध होने और उसके परिणामस्वरूप घटनाओं पात्रों तथा सभ्यता संस्कृति एवं जीवन के रूपों की स्वल्पता के कारण महाकाव्योचित व्यापकता की कसौटी पर पूर्णतया खरी प्रमाणित नहीं होती तथापि कलाकार के वर्णन कौशल तथा उसकी संक्षिप्त सांकेतिक पद्धति एवं व्यंजनात्मकता के कारण उसमें अपूर्व मार्मिकता एवं प्रभावोत्पादकता है और अपने इन गुणों के कारण वह अपनी व्यापकता के अभाव की पूर्ति कर देती है।

### गुरुत्व, गाम्भीर्य एवं औदात्य

महाकाव्य गुरु गम्भीर एवं उदात्त रचना है उसकी विषय वस्तु, भाषा शैली, भाव व्यापार, घटना प्रसार पात्रों के व्यक्तित्व तथा कवि की वैचारिक पीठिका सभी में आद्यन्त गुरुत्व, गाम्भीर्य एवं औदात्य की प्रतिष्ठा होनी चाहिए क्योंकि महाकाव्य की

महत्ता अन्य अनिवार्य शाश्वत तत्वों के साथ ही बहुत कुछ उसके गुरुत्व गाम्भीर्य एवं औदात्य पर भी निर्भर रहती है।

कामायनी का गुरुत्व असंदिग्ध है किन्तु उसके गुरुत्व से आशय वस्तुत उसके आकार के गुरुत्व (दीर्घता अथवा विशदता) से न होकर उसके भारीपन महत्त्व गौरव एवं गुरुत्वाकर्षण से है। उसमें आकार का गुरुत्व अवश्य नहीं है पर उसके कथानक, पात्रों के व्यक्तित्वों, भाषा, शैली शिल्प आदि सभी में गुरुत्व है—सभी का अपरिमेय महत्त्व है, सभी गौरवपूर्ण स्थान के अधिकारी हैं और सभी में एक प्रकार का भारीपन एवं गुरुत्वाकर्षण है। उसका कथानक सृष्टि के आदि मानव तथा आद्या मानवी की उस महान् जीवन-गाथा से सम्बद्ध है जो विश्वमांगल्य के अनेकानेक पोषक तत्वों से युक्त है और जिससे प्रेरणा लेकर मनुष्य भौतिकता से पराङ मुख हो समरसता एवं परमानन्द की स्थिति में पहुंच सकता है। पात्रों में नारी जीवन की निखिल विभूतियों से युक्त श्रद्धा उसके उच्चातिउच्च गुणादर्शों के सर्वोच्च शिखर पर प्रतिष्ठित है। मनु इडा एवं मनु पुत्र मानव भी इसी प्रकार महान् हैं। भाषा शैली की दृष्टि से भी उसमें पर्याप्त गुरुत्व है और समष्टि रूप से भी उसमें पर्याप्त गुरुत्व एवं गुरुत्वाकर्षण विद्यमान है। इसके अतिरिक्त उद्देश्यगत गुरुता एवं महत्ता की दृष्टि से भी वह इस कसौटी पर खरी प्रमाणित होती है। वैचारिक दृष्टि से तो वह इस क्षेत्र में और भी अधिक आगे बढ़ी हुई है। उद्देश्य की महत्ता के अन्तर्गत इस विषय में विस्तार से विचार किया जा चुका है। अत यहां उसके विशद विवेचन की आवश्यकता नहीं।

गम्भीरता की दृष्टि से भी वह अपनी उपमा नहीं रखती। यदि एक ओर उसके कथानक में पर्याप्त गम्भीरता है तो दूसरी ओर उसके पात्रों के व्यक्तित्व में। मनु श्रद्धा, इडा, मानव आकुलि किलात आदि उसके सभी पात्र महाकाव्योचित गम्भीरता से युक्त हैं। वैचारिक दृष्टि से समस्त ग्रन्थ न केवल महाकाव्योचित गम्भीरता लिए हुए है प्रत्युत कहीं-कहीं ऐसा लगता है कि जटिल दार्शनिक विचारों एवं पारिभाषिक शब्दों को प्रश्रय देने के कारण वह गम्भीरता के दुर्वह भार से आक्रान्त हो गया है। यही नहीं उसकी प्रतिवादी दार्शनिकता के कारण कहीं-कहीं उसमें क्लिष्टार्थ एवं अप्रतीतत्व दोष भी आ गये हैं। समस्त प्रबन्ध गम्भीर दार्शनिक पीठिका पर आधारित है। उसमें नियोजित मानवतावाद नियतिवाद क्षणवाद, समन्वयवाद, शून्यवाद एवं परमाणुवाद तो बहुत स्पष्ट हैं किन्तु कश्मीरी शैव-दर्शन (प्रत्यभिज्ञा दर्शन) के समरसतावाद एवं आनन्दवाद सामान्य अध्येताओं की पहुंच से बहुत परे है। अत इस दृष्टि से प्रसाद गुण का प्रेमी व्यक्ति उस पर आक्षेप लगाते हुए यह कह सकता है —

'सरल कवित कीरति बिमल, सोइ आदरहिं सुजान।'[1]

तथा

अगर अपना कहा तुम आप ही समझे तो क्या समझे ?
मजा कहने का जब है, इक कहे औ दूसरा समझे।[2]

किन्तु जैसा कि कहा जा चुका है महाकाव्य की गम्भीरता उसकी अनिवार्य शाश्वत विशेषता है। अत इस दृष्टि से उस पर इस प्रकार का दोषारोपण विशेष कर जबकि उसमें प्रसाद गुण भी यथास्थान पर्याप्त मात्रा में विद्यमान है उचित नहीं। *कहने की आवश्यकता नहीं कि उसकी यह गम्भीरता, उसकी महाकाव्योचित सफलता की संकेतिका ही है* उसका कोई बाध नहीं। इसके अतिरिक्त उसकी भाषा भी संस्कृतनिष्ठ पदावली तथा प्रसाद के अपने दृष्टिकोण विशेष के कारण महाकाव्योचित गम्भीरता से संयुक्त है। साथ ही उसकी शैली भी छायावाद की विशेषताओं विशेषकर उपमान एवं प्रतीक-योजना मूर्तीकरण, मानवीकरण विशेषण विपर्यय, ध्वन्यर्थ व्यंजन तथा ध्वन्यात्मकता की अतिशयता से आक्रान्त गीति-तत्व के कारण कहीं भी महाकाव्योचित गम्भीरता से रहित प्रतीत नहीं होती। इसके अतिरिक्त रहस्यवादी भावना के यत्र तत्र समावेश के कारण भी उसमें पर्याप्त गम्भीरता आ गयी है। यही कारण है कि उसकी महाकाव्योचित गम्भीरता से प्रभावित होकर श्री इलाचन्द जोशी लिखते हैं —

"प्रसाद जी के झरने से आंसू की बूंदें छहर कर जिस सागर सगमोन्मुखी 'लहर' में मिलकर एकाकार हुई हैं वे 'कामायनी' महासागर में विलीन हो गई हैं। इस महासागर में केवल प्रसाद जी की ही काव्य रचनाएं नहीं समा गई हैं, बल्कि छायावादी युग के प्राय सभी कवियों की काव्य-सरिता धाराएं इसकी अतलव्यापी गम्भीरता में आकर विलीन हो गई हैं। कामायनी को पढ़ने के बाद प्रसाद जी की सब रचनाएं और दूसरे छायावादी कवियों की सब कृतियां अत्यन्त फीकी और हल्की जान पड़ने लगती हैं।'[3]

औदात्य की दृष्टि से भी उसमें कोई अभाव प्रतीत नहीं होता। उसका कथानक उसके पात्र, उसकी विचारधारा उसका उद्देश्य उसकी भाषा शैली सभी कुछ उदात्त है। अत इस दृष्टि से भी उसके महाकाव्यत्व में किसी प्रकार के सन्देह के लिए कोई स्थान नहीं।

---

१ तुलसी रामचरितमानस, बालकाण्ड, पृ० ४७।

२ गालिब।

३ इलाचन्द जोशी, प्रसाद जी की काव्य धारा, युगमनु प्रसाद, पृ० ५७।

## व्यापक प्रकृति चित्रण एवं अभीष्ट वस्तु वर्णन

कामायनी का प्रकृति चित्रण उसके रचयिता के दृष्टिकोण की व्यापकता एवं मौलिकता के कारण इतना प्रभावोत्पादक है कि पाठक उसे पढ़कर भावविभोर हो उठता है। उसमें प्रबन्धकार की कमनीय कल्पना, प्रकृति प्रेम, मूर्त अमूर्त [1] एवं चेतन-अचेतन [2] के एकात्म्य की धारणा बाह्याकार एवं अन्तरात्मा के समन्वय की भावना आदि उसके व्यक्तित्व की विशेषताएं उसमें स्पष्ट प्रतिबिम्बित हैं। उसमें कलाकार प्रसाद का शैवागमों के आनन्दवाद से प्रभावित रूप तथा यह मान्यता कि "प्रकृति सौन्दर्य ईश्वरीय रचना का एक अद्भुत समूह अथवा उस बड़े शिल्पकार के शिल्प का एक छोटा सा नमूना है',[3] स्पष्ट रूपायित प्रतीत होती है। उनकी मान्यता है कि यह समस्त सृष्टि आनन्द एवं सुन्दर की अभिव्यक्ति है। यही कारण है कि उन्हें उसके विभिन्न व्यक्त रूपों में विश्वात्मा के सौन्दर्य एवं रूपाकार की झलक मिलती है। कामायनी में चित्रित प्रकृति का रूप-वैविध्य प्रबन्धकार के इसी दृष्टिकोण का परिणाम है। उसमें विनियोजित उसके आलम्बन, उद्दीपन, मानवीकृत, सम्वेदनात्मक पृष्ठभूमिक वातावरण निर्माता, आलंकारिक आदि रूपों ने कामायनी के प्रकृति चित्रण को व्यापकता प्रदान करने के साथ ही उसकी कला-भूमि को जो अद्भुत अनिन्द्य सौन्दर्य प्रदान किया है, वह उसकी महाकाव्योचित सफलता का उद्घोषक है। स्पष्टीकरण के लिए उसके उक्त विभिन्न रूपों पर किंचित् प्रकाश डालने की आवश्यकता है।

### आलम्बन रूपा प्रकृति

काव्य में प्रकृति का वर्णन आलम्बन रूप में वहां होता है जहां पाठक के मनश्चक्षुओं के समक्ष उसकी एक मूर्ति सी उपस्थित हो जाती है और जहां कवि अपने सूक्ष्म निरीक्षण द्वारा वस्तुओं के अंग प्रत्यंग वर्ण आकृति तथा उनके आस-पास की परिस्थिति का संश्लिष्ट विवरण देता है। [4] कहने की आवश्यकता नहीं कि ऐसी स्थिति में प्रकृति स्वयं वर्ण्य विषय होती है। कवि उसके प्रति अनुराग के कारण

---

१ मूर्त एवं अमूर्त का भेद कवि को मान्य नहीं। उसका कथन है कि 'रूपत्व का आरोप मूर्त एवं अमूर्त दोनों में है क्योंकि चाक्षुष प्रत्यक्ष से इतर वायु और अन्तरिक्ष अमूर्त रूप का भी रूपानुभव हृदय द्वारा होता देखा जाता है।"

—काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध, पृ० ३५।

२ देखिए—काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध पृ० ५६।

३ प्रसाद विचाराधार, पृ० १२५।

४ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल कविता क्या है ?, चिन्तामणि भाग १, पृ० १४७-१४८।

उसके सांगोपांग वर्णन द्वारा उसका एक चित्र सा प्रस्तुत कर देता है। कामायनी में ऐसे वर्णन बहुत अधिक न होने पर भी पर्याप्त मोहक एवं आकर्षक हैं। निम्नांकित अवतरण इस विषय में द्रष्टव्य हैं —

छूने को अम्बर मचली सी
बढ़ी जा रही सतत उंचाई,
विक्षत उसके अंग, प्रगट थे
भीषण खड्ड भयकरी खाँई ।
रविकर हिम खण्डों पर पड़ कर
हिमकर कितने नये बनाता,
द्रुततर चक्कर काट पवन भी
फिर से वहीं लौट आ जाता ।
नीचे जलधर दौड़ रहे थे
सुन्दर सुर धनु माला पहने,
कुंजर कलभ सदृश इठलाते
चमकाते चपला के गहने ।
प्रवहमान थे निम्न देश में
शीतल शत शत निर्झर ऐसे,
महा श्वेत गजराज गण्ड से
बिखरी मधु धारायें जैसे ।
हरियाली जिनकी उभरी वे
समतल चित्र पटी से लगते
प्रतिकृतियों के बाह्य रेख से
स्थिर नद जो प्रतिपल थे भगते ।[1]

तथा

सामने विराट धवल नग अपनी महिमा से विलसित ।
उसकी तलहटी मनोहर श्यामल तृण वीरुध वाली
नव कुंज गुहा गृह सुंदर ह्रद से भर रही निराली ।

वह मञ्जरियों का कानन कुछ अरुण पीत हरियाली,
प्रतिपर्व सुमन संकुल थे छिप गई उन्हीं में डाली,
यात्री दल ने रुक देखा मानस का दृश्य निराला,
— जो अति सुखदायक छोटा सा जगत उजाला ।

मरकत की वेदी पर ज्यो रक्खा हीरे का पानी,
छोटा सा मुकुर प्रकृति का या सोयी राका रानी।[१]

### उद्दीपन-रूपा प्रकृति

उद्दीपन रूप में प्रकृति चित्रण में कामायनी की कला अपना सानी नहीं रखती। उसकी उद्दीपक प्रकृति न तो प्राचीन अथवा मध्यकालीन कवियो की प्रकृति की भाति षट्ऋतुओं अथवा बारहमासे के वर्णन के अवांछित विस्तार भार से आक्रान्त है और न ही उसमें उसके प्रभावो की नाप-जोख अथवा ऊहात्मक पद्धति को अपनाया गया है। उसके चित्र इतने सूक्ष्म, रेखाए इतनी हल्की और रग ऐसे विरल हैं कि देखकर मत्र-मुग्ध हो जाना पडता है। जहा एक ओर वह मनु-श्रद्धा के सयोग काल में अपने मादक-मोहक रूपो एव वृत्ति-व्यापारो द्वारा उनके सयोगानन्द को उद्दीप्त करती है वहा दूसरी ओर अपने विभिन्न रूपों द्वारा परित्यक्ता श्रद्धा के वियोग-दु ख को। सक्षिप्त एव साकेतिक होते हुए भी उसके ये वर्णन कितने सरस एव हृदयग्राही हैं यह कदाचित् कहने की आवश्यकता नहीं। उदाहरणार्थ निम्नांकित अवतरण लीजिए —

चलो, देखो वह चला आता बुलाने आज—
सरल हसमुख विधु जलद लघु खण्ड वाहन साज।
कालिमा धुलने लगी घुलने लगा आलोक।
इसी निभृत अनन्त में बसन लगा अब लोक।
इस निशामुख की मनोहर सुधामय मुसक्यान,
देख कर सब भूल जायें दु ख के अनुमान।
देख लो, ऊचे शिखर का व्योम चुम्बन व्यस्त,
लोटना अन्तिम किरण का और होना अस्त।
चलो तो इस कौमुदी में देख आवें आज
प्रकृति का यह स्वप्न शासन, साधना का राज।'
सृष्टि हसने लगी आखो में खिला अनुराग,
राग रजित चद्रिका थी, उडा सुमन पराग।
और हसता था अतिथि मनु का पकड कर हाथ,
चले दोनों, स्वप्न पथ में स्नेह सम्बल साथ।[२]

तथा

कामायनी कुसुम वसुधा पर पडी, न वह मकरन्द रहा,
एक चित्र बस रेखाओ का अब उसमे है रग कहा।

---

१ कामायनी, आनन्द सर्ग, पृ० २८३–२८४।
२ वही वासना सर्ग, पृ० ८७ ८८।

यह प्रभात का हीन कला शशि किरन कहाँ चाँदनी रही,
वह सन्ध्या थी, रवि शशि तारा ये सब कोई नहीं जहाँ।
जहाँ तामरस इन्दीवर या सित शतदल हैं मुरझाये,
अपने नालों पर, वह सरसी श्रद्धा थी, न मधुप आये।
वह जलधर जिसमें चपला या श्यामलता का नाम नहीं,
शिशिर कला की क्षीण स्रोत वह जो हिमतल में जम जाये।[1]

मानवीकृत

कामायनी छायावादी युग की मूर्द्धन्य कृति है और कामायनीकार छायावाद युग का प्रतिनिधि कवि। प्रकृति का मानवीकरण छायावादी युग की प्रमुख विशेषता है और कामायनीकार की इसमें सर्वाधिक अभिरुचि। किन्तु उसकी इस अभिरुचि का मूल भारतीय सांस्कृतिक परम्परा में है। इस विषय में उसने स्पष्ट लिखा है—"साहित्य में विश्व सुन्दरी प्रकृति में चेतना का आरोप संस्कृत वाङ्मय में प्रचुरता से उपलब्ध होता है।"[2] यही कारण है कि जड़ चेतन प्रकृति के अनेकानेक मानवीकृत रूप कामायनी में भरे पड़े हैं। कहीं सुनहले तीरों की बौछार करती तथा जय लक्ष्मी सी उदित होती हुई उषा सुन्दरी की मनोहर झांकी है, कहीं जल मे छिपती हुई पराजिता काल रात्रि की, कहीं सिन्धु शय्या पर बैठी हुई मानवती धरा-वधू की, कहीं अभिसारिका निशा सुन्दरी की कहीं प्रात काल शीतल जल से मुख धोती हुई सुन्दरी वनस्पतियों की कहीं घनमाला की सुन्दर बहुरंगी ओढ़नी ओढ़े हुए सन्ध्या सुन्दरी की और कहीं भव्य शुभ्र तुषार मुकुटों को पहने हुए गगन चुम्बिनी शैल श्रेणियों की। इसी प्रकार प्रकृति के अन्य उपकरण भी यत्र-तत्र मोहक मानवीकृत रूपों में प्रस्तुत किये गये हैं। उदाहरणार्थ निम्नांकित अवतरण प्रस्तुत हैं —

(i) हिम खण्ड रश्मि मण्डित हो
मणि दीप प्रकाश दिखाता,
जिनसे समीर टकरा कर
अति मधुर मृदंग बजाता।[3]

(ii) रश्मियाँ बनी अप्सरियाँ
अन्तरिक्ष मे नचती थीं,
परिमल का कन कन लेकर
निज रंग मंच रचती थीं।

---

१— कामायनी, स्वप्न सर्ग, पृ० १७५।
२— प्रसाद, रहस्यवाद, काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध, पृ० ३६।
३—कामायनी आनन्द सर्ग पृ० २६३।

मांसल सी आज हुई थी
हिमवती प्रकृति पाषाणी,
उस लास रास मे विह्वल
थी हसती सी कल्याणी ।
वह चन्द्र किरीट रजत नग
स्पदित सा पुरुष पुरातन,
देखता मानसी गौरी
लहरो का कोमल नतन ।[१]

### वातावरण-निर्मात्री प्रकृति

वातावरण एव परिस्थितियों के निर्माण में कामायनी का रचनाकार विशेष रूप से सिद्ध हस्त है और इस विषय मे वह प्रकृति का भी पर्याप्त योग लेता है। वासना सग में मनु श्रद्धा मिलन के प्रसग में कवि ने प्रकृति के सहयोग से वातावरण का जो निर्माण किया है, वह कामायनीकार की कला का उत्कृष्ट नमूना है। समस्त सग में प्रेमी-प्रेमिका मनु श्रद्धा के हृदयस्थ भावो के अनुरूप ही ऐसा मधुर, मदिर एव मोहक वातावरण प्रस्तुत किया गया है कि पढकर पाठक कलाकार के रचना कौशल से अभिभूत हुए बिना नहीं रहता। उदाहरणाथ निम्नाकित पक्तिया लीजिए —

सृष्टि हसने लगी आंखों मे खिला अनुराग,
राग रजित चन्द्रिका थी उडा सुमन पराग।
और हसता था अतिथि, मनु का पकड कर हाथ
चले दोनों, स्वप्न पथ मे स्नेह सम्बल साथ।
देवदारु निकुज गह्वर सब सुधा मे स्नात
सब मनाते एक उत्सव जागरण की रात।
आ रही थी मदिर भीनी माधवी की गन्ध,
पवन के घन घिरे पडते थे बने मधु अन्ध।
शिथिल अलसाई पडी छाया निशा की कान्त
सो रही थी शिशिर कण की सेज पर विश्रान्त।[२]

इसी प्रकार आनन्द सग में मनु श्रद्धा एव इडा के साथ आए हुए यात्रियो के आनन्दोल्लासपूर्ण वातावरण के निर्माण के लिए प्रबन्धकार ने प्रकृति का जो कलात्मक योग लिया है वह उसकी वातावरण निर्माण-क्षमता का परिचायक है। इसी प्रकार पृष्ठभौमिक सवेदनात्मक, अलकरणकर्त्री, उपमान रूपा प्रतीकात्मक तथा

---

१ कामायनी, आनन्द सग पृ० २९४।
२ वही, वासना सग, पृ० ८८।

परमतत्त्व प्रदर्शिका प्रकृति का चित्रण भी कामायनी की कलात्मकता की विशेषता है। कहने की आवश्यकता नहीं कि रचनाकार इस विषय में प्राय समान रूप से सिद्ध हस्त है। निम्नांकित अवतरण इस विषय में द्रष्टव्य हैं —

पृष्ठभौमिक प्रकृति

यह विवर्ण मुख त्रस्त प्रकृति का
आज लगा हसने फिर से,
वर्षा बीती, हुआ सृष्टि में
शरद विकास नये सिर से।
नव कोमल आलोक बिखरता
हिम संसृति पर भर अनुराग
सित सरोज पर क्रीड़ा करता
जैसे मधुमय पिंग पराग।[1]

संवेदनात्मक प्रकृति

(i) सन्ध्या नील सरोरुह से जो श्याम पराग बिखरते थे
शैल घाटियों के अंचल को वे धीरे से भरते थे।
तृण गुल्मों से रोमांचित नग सुनते उस दुख की गाथा,
श्रद्धा की सूनी सासों से मिलकर जो स्वर भरते थे—
"जीवन में सुख अधिक या कि दुख मन्दाकिनि कुछ बोलोगी ?
नभ मे नखत अधिक, सागर मे या बुद्बुद हैं गिन दोगी ?
प्रतिबिम्बित हैं तारा तुम मे, सिंधु मिलन को जाती हो
या दोनो प्रतिबिम्ब एक के इस रहस्य को खोलोगी !"[2]

(ii) वन बालाओं के निकुंज सब भरे वेणु के मधु स्वर से
लौट चुके थे आने वाले सुन पुकार अपने घर से।
किन्तु न आया वह परदेसी युग छिप गया प्रतीक्षा मे,
रजनी की भीगी पलकों से तुहिन बिन्दु कण कण बरसे।[3]

अलंकरणकर्त्री प्रकृति

(i) स्मिति मधुराका थी श्वासों से
पारिजात कानन खिलता।[4]

---

१ कामायनी आशा सर्ग, पृ० २३।
२ वही, स्वप्न सर्ग, पृ० १७६।
३ वही, वही पृ० १७८।
४ वही, निर्वेद सर्ग पृ० २२४।

(ii) अवकाश सरोवर का मराल,
कितना सुन्दर कितना विशाल ।[1]

(iii) दुख की पिछली रजनी बीच
विकसता सुख का नवल प्रभात,
एक परदा यह भीना नील
छिपाये है जिसमें सुख गात ।[2]

उपमान रूपा प्रकृति

(i) घिर रहे थे घुंघराले बाल
अंस अवलम्बित मुख के पास
नील घन शावक से सुकुमार
सुधा भरने को विधु के पास ।
और उस मुख पर वह मुसक्यान !
रक्त किसलय पर ले विश्राम
अरुण की एक किरण अम्लान
अधिक अलसाई हो अभिराम ।[3]

(ii) उसी तपस्वी से लम्बे, थे
देवदारु दो चार खड़े
हुए हिम धवल जैसे पत्थर
बन कर ठिठुरे रहे अड़े ।[4]

(iii) और देखा वह सुन्दर दृश्य
नयन का इन्द्रजाल अभिराम
कुसुम वैभव में लता समान
चन्द्रिका से लिपटा घनश्याम ।
हृदय की अनुकृति बाह्य उदार
एक लम्बी काया, उन्मुक्त,
मधु पवन क्रीडित ज्यों शिशु साल
सुशोभित हो सौरभ संयुक्त ।

---

१ कामायनी, दर्शन सर्ग, पृ० २३५ ।
२ वही श्रद्धा सर्ग पृ० ५३ ।
३ वही, वही, पृ० ४७ ।
४ वही चिन्ता सर्ग पृ० ३ ।
५ वही, श्रद्धा सर्ग पृ० ४६ ।

## : ५ :

# छायावाद की परिभाषा : समस्या एवं समाधान

छायावादी काव्य (सन् १९१३-१९३६ ई०) की सर्वाधिक चिन्तनीय समस्या उसकी परिभाषागत अराजकता की है। उसके आविर्भावकाल से लेकर आज तक न जाने कितने आलोचकों ने उसकी परिभाषा निर्धारण का प्रयत्न किया न जाने कितने कवियों ने अपना क्षेत्र छोडकर अनधिकार चेष्टा करके उसके स्वरूप निर्धारण की चेष्टा की, किन्तु अद्यावधि इस विषय में मतैक्य न हो सका। आज भी उसकी कोई सर्वमान्य परिभाषा निर्धारित कर सकना सरल कार्य नहीं। आज भी कोई किसी पूर्व आलोचक अथवा कवि की परिभाषा को ब्रह्म वाक्य समझ कर अन्य आलोचकों तथा कवियों द्वारा निर्दिष्ट परिभाषाओं को तिरस्करणीय समझता है, कोई अपने सीमित अध्ययन एवं सनक के प्रवाह में बहता हुआ एकांगी एवं ऊट-पटांग परिभाषा प्रस्तुत करता है, कोई उसे अस्पष्टता का पर्याय मानता है तो कोई रहस्यवाद का, कोई उसे मात्र एक विशिष्ट शैली मानता हुआ शैली-शिल्प के संकुचित कठघरे में सीमित करना चाहता है तो कोई उसे केवल वस्तु वैचित्र्य की चार दीवारी में, कोई रहस्यपूर्ण सौन्दर्य दर्शन की अभिव्यक्तिजन्य अस्पष्टता को छाया वाद कहता है[1] तो कोई उसका खण्डन करता हुआ कहता है—

'कुछ लोग इस छायावाद में अस्पष्टतावाद का भी रंग देख पाते हैं हो सकता है कि जहाँ कवि ने पूर्ण तादात्म्य न कर पाया हो वहाँ अभिव्यक्ति विशृंखल हो गई हो शब्दों का चुनाव ठीक न हुआ हो, हृदय से उसका स्पर्श न होकर मस्तिष्क से ही मेल हो गया हो परन्तु सिद्धान्त में ऐसा रूप छायावाद का ठीक नहीं कि जो कुछ अस्पष्ट छायामात्र हो वास्तविकता का स्पर्श न हो, वही छायावाद है।'[2]

यदि एक ओर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल छायावाद को रहस्यवाद का पर्याय मानते हुए योरोपीय छाया (Phantasmata) शब्द से उसका सम्बन्ध जोड़ने तथा हिन्दी में उसका बंगला से आगमन मानते हैं—

———

१ मुकुटधर पांडेय।
२ जयशंकर प्रसाद', काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध (सं० आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी), पृ० १४८।

छायावाद शब्द का प्रयोग दो अर्थों म समझना चाहिए। एक तो रहस्यवाद के अर्थ में, जहा उसका सम्बन्ध काव्य-वस्तु से होता है अर्थात् जहा कवि उस अनन्त और अज्ञात प्रियतम को आलबन बनाकर अत्यन्त चित्रमयी भाषा म प्रेम को अनेक प्रकार स व्यजना करता है। रहस्यवाद के अन्तर्गत रचनाए पहुँचे हुए पुराने स तो या साधकों की उस वाणी के अनुकरण पर होती हैं जो तुरीयावस्था या सम धि दशा में नाना रूपकों के रूप मे उपलब्ध आध्यात्मिक ज्ञान का आभास दती हुई मानी जाती थी। इस रूपात्मक आभास को योरोप म 'छाया' (फैंटासमाटा) कहते थे। इसी से बगाल में ब्रह्म समाज के बीच उक्त वाणी के अनुकरण पर जो आध्यात्मिक गीत या भजन बनते थे वे 'छायावाद' कहलाने लगे। धीरे धीरे यह शब्द धार्मिक क्षेत्र से वहा के साहित्य क्षेत्र मे आया और फिर रवीन्द्र बाबू की धूम मचने पर हिन्दी के साहित्य क्षेत्र म भी प्रकट हुआ।"[1]

तथा

'पुराने ईसाई सन्तों के छायाभास (फटासमाटा) तथा योरोपीय काव्य क्षेत्र म प्रवर्तित आध्यात्मिक प्रतीकवाद (सिबालिज्म) के अनुकरण पर रची जाने के कारण बगाल में ऐसी कविताए छायावाद' कही जाने लगी थीं।"[2]

तो दूसरी ओर आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी बगाल मे छायावाद के प्रादुर्भाव तथा रहस्यवाद और छायावाद के एकात्म्य को भ्रम मानते हैं —

१–' इसी नवीन प्रकार की कविता को किसी ने 'छायावाद नाम दे दिया है। यह शब्द बिलकुल नया है। यह भ्रम ही है कि इस प्रकार के काव्यों को बगाला में छायावाद कहा जाता था और वहीं से यह हिन्दी में आया है।[3]

२–'बहुत दिनों तक इस काव्य का उपहास किया गया है और बाद मे भी इसे या तो चित्र भाषा शली या प्रतीक-पद्धति के रूप म माना गया या रहस्यवाद के अर्थ में।"[4]

३ छायावाद नाम उन आधुनिक कविताओ के लिए बिना विचारे ही दे दिया गया था, (क) जिनमे मानवतावादी दृष्टि की प्रधानता थी, (ख) जो वक्तव्य विषय को कवि की व्यक्तिगत चिन्तना और अनुभूति के रग मे रँगकर अभिव्यक्त करती थीं, (ग) जिनमें मानवीय आचारो, क्रियाओं चेष्टाओ और विश्वासों के बदले हुए और बदलते हुए मूल्यों को अगीकार करने की प्रवत्ति थी (घ) जिनमें छन्द, अलकार, रस ताल, तुक आदि सभी विषयों मे गतानुगतिकता

———

१ हिन्दी-साहित्य का इतिहास, तेरहवां पुनमु द्रण (स० २०१८), पृ० ६३७।
२ वही, वही पृष्ठ ६२१।
३ हिन्दी-साहित्य, पृ० ४६१।
४ वही, वही।

से बचने का प्रयत्न था और (ङ) जिनमे शास्त्रीय रूढ़ियों के प्रति कोई आस्था नहीं दिखाई गई थी। (२) छायावाद एक विशाल सांस्कृतिक चेतना का परिणाम था, यद्यपि उसमें नवीन शिक्षा के परिणाम होने के चिह्न स्पष्ट हैं तथापि वह केवल पाश्चात्य प्रभाव नहीं था, कवियों की भीतरी व्याकुलता ने ही नवीन भाषा शैली मे अपने को अभिव्यक्त किया और (३) सभी उल्लेखनीय कवियों मे थोडी बहुत आध्यात्मिक अभिव्यक्ति की व्याकुलता भी थी। जिन कवियों ने शास्त्रीय और सामाजिक रूढियो के प्रति विद्रोह का भाव दिखाया उनके इस भाव का कारण तीव्र सांस्कृतिक चेतना ही थी।

४ हिन्दी मे जब नवीन युग की हवा बही तो विषयी प्रधान कविताए भी लिखी जाने लगीं। वे सभी कविताए एक श्रेणी की नहीं थी। कुछ वाच्यार्थ प्रधान थी कुछ व्यंग्यार्थ प्रधान। पर सब मे प्राचीन रूढियो की उपेक्षा की गई थी। किसी ने इस प्रकार की सब कविताओं का नाम 'छायावाद' रख दिया। बाद मे व्यंग्यार्थ प्रधान दृष्टि रखने वाले कवियों को यह नाम उपयुक्त नहीं लगा। उन्होंने सशोधन करके रहस्यवाद" नाम दिया। अब पण्डितों ने दोनों शब्दों का अलग अलग अर्थ नियत कर दिया है।"[1]

यदि एक ओर "प्रसाद" पौराणिक युग की घटना अथवा देश विदेश की सुन्दरी के बाह्य वर्णन से भिन्न वेदना के आधार पर स्वानुभूतिमयी अभिव्यक्ति को छायावादी काव्य तथा "छाया" की अनुभूति और अभिव्यक्ति की भंगिमा पर निर्भर मानते हुए ध्वन्यात्मकता, लाक्षणिकता, सौन्दर्यमय प्रतीक-विधान तथा उपचार वक्रता के साथ स्वानुभूति की विवृति को छायावाद की विशेषताएं घोषित करते हैं[2] तो दूसरी ओर गंगाप्रसाद पाडेय विश्व की किसी वस्तु मे एक अज्ञात, सप्राण छाया की झाँकी पाने अथवा उसके आरोपण को छायावाद मानते हैं। यदि एक ओर डा॰ देवराज अनाधुनिक पौराणिक धार्मिक चेतना के विरुद्ध आधुनिक लौकिक चेतना के विद्रोह का छायावाद की संज्ञा देते हुए[3] कहते हैं कि 'छायावाद गीति काव्य है प्रकृतिकाव्य है प्रेमकाव्य अथवा रहस्यवादी काव्य है"[4] तो दूसरी ओर बाबू गुलाबराय छायावाद को वस्तुओं म उनकी कटी-छटी सीमाओं के अतिरिक्त और कुछ देखने की प्रवृत्ति का फल तथा इन्द्रियगोचर जगत् का भाव

---

१ हिन्दी-साहित्य पृष्ठ ४६१—४६२।

२ काव्य और कला तथा अन्य निबंध पृ॰ १४२-१४६।

३ छायावाद का पतन पृ॰ १७।

४ वही, पृ॰ ११।

जगत् से समन्वयकर्ता[1] मानते हुए छायावादी काव्य में छाया की सी कोमलता और स्वप्नप्रियता तथा वस्तु मे एक आध्यात्मिकता और स्थूल मे सूक्ष्म की स्वप्निल आभा का अस्तित्व[2] घोषित करते हैं।

जहां एक ओर श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी लिखते हैं —

(क) छायावाद खड़ी बोली का कला युग है।"[3]

(ख) "छायावाद केवल काव्यकला नहीं है। जहाँ तक साहित्यिक टेकनीक से उसका सम्बन्ध है वहा तक वह कला है और जहा दार्शनिक अनुभूति से उसका सबध है वहा वह एक प्राण है, एक सत्य है। अतएव छायावाद काव्य की केवल एक अभिव्यक्ति ही नहीं, बल्कि इसके ऊपर एक श्रेष्ठ अभिव्यक्ति भी" है। छायावादी शब्द यदि उसकी कला के स्वरूप (अभिव्यक्ति) को सूचित करता है तो 'वाद' उसके अन्त प्रकाश (अभिव्यक्त) को। छाया की तरह उसके कलारूप म परिवर्तन होता रहता है किन्तु उसका प्रकाश अक्षुण्ण रहता है।'[4]

वहां दूसरी ओर डा० रामकुमार वर्मा लिखते हैं —

'छायावाद वास्तव म हृदय की एक अनुभूति है। वह भौतिक-ससार के क्रोड में प्रवेश कर अनन्त जीवन के तत्त्व ग्रहण करता है और उसे हमारे वास्तविक जीवन से जोडकर हृदय मे जीवन के प्रति एक गहरी सवेदना और आशावाद प्रदान करता है।'[5]

तथा

"इस ससार म उस दैवी सत्ता का निदर्शन कराने के कारण ही इस प्रकार की कविता को छायावाद की सज्ञा दी गई।'[6]

जहां एक ओर सुश्री महादेवी वर्मा छायावाद को प्रकृति के बीच म जीवन का उद्गीथ"[7] मानती हैं वहा दूसरी ओर श्री सुमित्रानदन पत के अनुसार छायावाद 'मन की नीरव वीथियों से निकलकर लाज भरे सौन्दर्य में लिपटी, एक नवीन काव्य-चेतना" है जो 'युग के निभृत प्रागण को सहसा स्वप्न मुखर कर देती है और जिसमें पिछली वास्तविकता की इतिवृत्तात्मकता नवीन कला-सकेतों के, अरूप सौंदर्य मे तिरोहित होकर भावना के सूक्ष्म अवगुण्ठनों के कारण रहस्यमयी प्रतीत होने लगती है।'[8]

---

१ हिन्दी-साहित्य का सुबोध इतिहास, पृष्ठ, ३२३।
२ वही, पृष्ठ ३२५।
३ ज्योति विहग, पृष्ठ १६।
४ सचारिणी, पृ० २२१–२२२।
५ विचार-दर्शन, पृ० ७२।
६ वही, वही।
७ महादेवी का विवेचनात्मक गद्य पृ० ६४।
८ गद्य-पथ यदि मैं कामायनी लिखता पृ० १८७।

यदि एक ओर आचार्य वाजपेयी का कथन है —

'मानव तथा प्रकृति के सूक्ष्म किन्तु सुन्दर सौन्दर्य में आध्यात्मिक छाया का भान मेरे विचार से छायावाद की सर्वमान्य व्याख्या हो सकती है।'[१]

तो दूसरी ओर डॉ० नगेन्द्र लिखते हैं —

"निष्कर्ष यह है कि छायावाद एक विशेष प्रकार की भाव पद्धति है, जीवन के प्रति एक विशेष भावात्मक दृष्टिकोण है।"[२]

यदि एक ओर आचार्य विनयमोहन शर्मा छायावाद को 'स्वर्गीय संगीत की प्यास' से उद्भूत मानते हुए छायावाद और रहस्यवाद को समानार्थी बताते हैं[३] तो दूसरी ओर वे उसे 'स्वानुभूतिमयी लाक्षणिक अभिव्यक्ति'[४] मानते हैं। यदि एक ओर वे लिखते हैं —

(क) द्विवेदी—युग की इतिवृत्तात्मक (मैटर आफ फैक्ट) रचनाओं की रूक्षता की प्रतिक्रिया के रूप में जब आभ्यन्तर भावों का विशेष ढंग से प्रकटीकरण होने लगा तब उसमें नवीनता देख उसे छायावाद की संज्ञा दी गई।"[५]

(ख) "मनोविज्ञान की भाषा में कहा जा सकता है कि देश के बाह्य विद्रोह में असफल मन ने साहित्य के निरापद क्षेत्र में स्वच्छन्द वृत्ति का परिचय दिया। यही स्वच्छन्दतावाद आगे चलकर छायावाद की संज्ञा से अभिहित किया जाने लगा।"[६]

तो दूसरी ओर उनका कथन है —

परन्तु यदि गम्भीरता से विचार किया जाय तो छायावाद कोई वाद नहीं बन सकता। उसके पीछे कोई दार्शनिक या परम्पराजन्य भूमि नहीं दिखाई देती। उसे हम काव्य की एक शैली कह सकते हैं।'[७]

यदि एक ओर छायावाद और रहस्यवाद के अन्तर का उल्लेख करते हुए श्री रामकृष्ण शुक्ल लिखते हैं —'छायावाद प्रकृति में मानव जीवन का प्रतिबिम्ब मानता है, रहस्यवाद समस्त सृष्टि में ईश्वर का, ईश्वर अव्यक्त है और मनुष्य व्यक्त है। इसलिए छाया मनुष्य की व्यक्ति की ही देखी जा सकती है अव्यक्त की नहीं।

---

१ हिन्दी साहित्य, बीसवीं शताब्दी पृ० १६३।
२ आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ, पृ० १५।
३ कवि प्रसाद आँसू तथा अन्य कृतियाँ पृ० २३।
४, वही, पृष्ठ २४।
५ दृष्टिकोण, पृ० १७।
६ अवन्तिका, जन० सन् १६५४, पृष्ठ १६७।
७ कवि 'प्रसाद' आँसू तथा अन्य कृतियाँ पृ० २३।

अव्यक्त रहस्य ही रहता है । अत दोनों में लौकिक और अलौकिक, व्यक्त और अव्यक्त, स्पष्ट और अस्पष्ट, ज्ञात और अज्ञात तथा छाया और रहस्य का ही अन्तर है ।"[1]

तो दूसरी ओर कई विद्वान् दोनो को समानार्थी अथवा पर्याय समझते हैं । यदि एक ओर अधिकाश विद्वान् छायावाद को द्विवेदी युगीन इतिवृत्तात्मकता तथा स्थूल के प्रति सूक्ष्म की प्रतिक्रिया मानते हैं तो डॉ० रामविलास शर्मा आदि कतिपय विद्वान् उनकी इस मान्यता को असत्य घोषित करते हुए कहते हैं —

छायावाद स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह नही रहा वरन् थोथी नैतिकता रूढ़िवाद और सामती साम्राज्यवाद के बधनो के प्रति विद्रोह रहा है ।

इसी प्रकार कुछ लोग रहस्यवाद के प्रथम सोपान को छायावाद मानते हैं कुछ रोमासवाद के भारतीय सस्करण को छायावाद की सज्ञा देते हैं और कुछ स्थूल के प्रति सूक्ष्म के विद्रोह को छायावाद कहते हैं ।

किन्तु उक्त समस्त परिभाषाओ पर विचार करने से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि उनमे से कतिपय अस्पष्ट हैं कतिपय अनर्गल एव निराधार और कतिपय एकागी जबकि छायावादी काव्य के अध्ययन से स्पष्ट है कि वह न तो रहस्यवाद का पर्याय है और न अस्पष्टता एव धुधलेपन का, न तो वह मात्र 'प्रकृति म जीवन का उद्गीथ' है और न मात्र मानव जीवन का प्रतिबिम्ब न तो वह एक मात्र शैली है और न मात्र रोमासवाद, न तो उसे केवल स्वानुभूतिमयी लाक्षणिक अनुभूति" कहने से उसकी पूर्ण एव उचित परिभाषा हो सकती है और न मात्र रोमासवाद का भारतीय सस्करण' कहने से, न तो वह मात्र रोमानी एव बगला प्रभाव से उद्भूत है और न मात्र भारतीय परम्परा की देन, न तो वह मात्र आध्यात्मिक छाया का भान" है और न मात्र लौकिकता से उद्भूत, न तो उसे मात्र कुठाजात ही माना जा सकता है और न मात्र आध्यात्मिक जिज्ञासोद्भूत न तो वह मात्र स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह है और न मात्र इतिवृत्तात्मकता की प्रतिक्रिया । जिस प्रकार उसे भारतीय परम्परा से बरबस जोड़ना उपहासास्पद है उसी प्रकार मात्र आग्ल रोमासवाद का अनुकरण मानना । वह वस्तुत हाथी के पर के समान है जिसमें सबके पर आ जाते हैं जिसमें उक्त समस्त विशेषताए अन्तर्भूत हैं । उसे परिभाषित करना यद्यपि सरल कार्य नहीं तथापि यदि ऐसा करना आवश्यक ही हो तो कहा जा सकता है कि छायावाद आग्ल रोमानी काव्य धारा से प्रेरित तथा द्विवेदीयुगीन काव्य की इतिवृत्तात्मक नैतिकता की प्रतिक्रिया एव विद्रोह से उद्भूत मानव कुठाओं को आध्यात्मिकता

---

१ रामकृष्ण शुक्ल हिन्दी साहित्य का इतिहास ।

एवं प्रकृति के आवरण एवं माध्यम से व्यक्त करने वाली वह नयी वैज्ञानिक सशक्त काव्यधारा है जो वस्तु एवं शैली दोनों ही दृष्टियों से मानव के शाश्वत सौन्दर्य मोह, रम्यता-प्रेम एवं विद्रोहात्मक प्रवृत्तियों को परिभाषित करती है और जिसमें मानव तथा प्रकृति दोनों में ही मानव, प्रकृति एवं विश्वात्मा की छाया का भान एवं व्यंजना तथा वास्तविक आध्यात्मिक अनुभूतियों के स्थान पर उनकी छाया की अभिव्यक्ति होती है।

---

# नयी कविता की समस्याएँ

परिवर्तन प्रकृति का सार्वभौमिक शाश्वत नियम है और इस नियम का कारण नूतनता का मंगलाभिनिवेशी रूप तथा तज्जन्य आनन्द की कल्पना एवं उसका दुर्निवार आकर्षण है। यही कारण है कि नूतनता के मंगलकारी तत्त्वों से परिचित व्यक्ति यह कहे बिना नहीं रहता —

> पुरातनता का यह निर्मोक
> सहन करती न प्रकृति पल एक
> नित्य नूतनता का आनन्द
> किए है परिवर्तन में टेक।[1]

प्राचीनता की केंचुल निस्सन्देह घातक है और इसलिए उसका त्याग भी परमावश्यक किन्तु नूतनता की इस दौड़ में जब व्यक्ति नेत्र बन्द करके बेतहाशा भागता है तो वस्तुतः गिरे बिना नहीं रहता। अतः आवश्यक है कि नूतनता का अन्वेषी इस तथ्य का ध्यान रखते हुए उसे मात्र साधन ही समझे साध्य नहीं। साधनों का महत्त्व तभी है जब कि उनसे साध्य आनन्द की प्राप्ति हो, उसके अभाव में उनका कोई महत्त्व नहीं। नयी कविता तथा नये कवि भी इसके अपवाद नहीं हैं। उनका प्राचीनता की केंचुल का त्याग तथा नवीनता के प्रति आग्रह ललक एवं दौड़ उचित ही है किन्तु तभी तक जब तक कि वे अन्य सांसारिक सत्यों की ओर से अपने नेत्र बन्द नहीं कर लेते और जब तक कि वे उसे मात्र साधन समझ कर ही साध्य आनन्द की प्राप्ति का प्रयत्न करते हैं। किन्तु ऐसा सभी कर सकें यह सम्भव नहीं। यही कारण है कि नयी कविता में जहाँ एक ओर पाठक श्रोताओं के लिए एक विशिष्ट आकर्षण है उसके अन्तराल में जहाँ विषय-वस्तु भाव बोध एवं चिन्तन धारागत मौलिकता का मंगलाभिनिवेश तथा तज्जन्य आकर्षण एवं आस्वादगत आनन्द धारा प्रवहमान है, उसके बाह्य रूपाकार में जहाँ भाषा एवं शैली शिल्प के विभिन्न उपकरणों की आकर्षक योजना है वहाँ दूसरी ओर वह पाठक श्रोताओं एवं आलोचक अध्येताओं के लिए ही नहीं, स्वयं अपने स्रष्टाओं के लिए भी अनेक

---

1 प्रसाद कामायनी, श्रद्धा सर्ग, पृ० ५५।

समस्याएं उत्पन्न करती जाती है । यदि एक ओर उसके काल निर्धारण की समस्या है तो दूसरी ओर उसकी पाश्चात्य पराश्रयता की, यदि एक ओर उसकी आलोचना तथा उसके मानदण्डों के निर्धारण का प्रश्न मुंह बाए खड़ा है तो दूसरी ओर उसकी उपेक्षा का, यदि एक ओर उसकी अस्पष्टता की समस्या है तो दूसरी ओर उसकी गद्यात्मकता की । इसी प्रकार नये कवियों में से कतिपय के भाषा विषयक दृष्टिकोण ने जहां भाषा की समस्या उत्पन्न की है वहां कतिपय के साधारणीकरण विषयक दृष्टिकोण एवं धारणाओं ने साधारणीकरण की । इसके अतिरिक्त जहां एक ओर नये कवियों के अतियथार्थवादी चित्रण ने एक विशिष्ट समस्या उत्पन्न की है वहां परम्परा एवं नव्यता के पक्ष मतों ने भी दोनों के मध्य की खाई को गहरा करने में पर्याप्त योग दिया है । इन सबका विशद विवेचन यहां सम्भव नहीं ।[1] अतः इनमें से केवल कतिपय पर संक्षिप्त प्रकाश डाला जाता है ।

## काल-निर्धारण की समस्या

नयी हिन्दी-कविता की एक चिन्तनीय समस्या उसके काल निर्धारण की है । इस विषय में आलोचकों में इतना मत-वैषम्य है कि साधारणतः किसी निष्कर्ष पर पहुंच सकना यदि असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य प्रतीत होता है । कोई उसका प्रारम्भ निराला एवं नरेन्द्र की कविताओं के रचना काल से मानता है और कोई सन् १९३० एवं १९४० ई० की मध्यवर्ती अवधि से, कोई छायावादोत्तर समस्त कविता को नयी कविता मानता हुआ उसका आरम्भ सन् १९३६ ई० के आस पास मानता है और कोई 'नये पत्ते' (१९५३) और 'नयी कविता' (१९५४) के प्रकाशन के अनन्तर, कोई उसका प्रारम्भ 'तार सप्तक' के प्रकाशन-काल सन् १९४३ ई० से मानता है कोई स्वतन्त्रता प्राप्ति के अनन्तर १९४७ ई० से और कोई सन् १९५५-५६ ई० से । परिणाम यह हुआ है कि सामान्य अध्येता उक्त विभिन्न मतों के झाड़ झंखाड़ में ही उलझ जाता है, उससे बाहर निकल सकना उसके लिए सम्भव नहीं हो पाता । अतः प्रश्न है कि वस्तुस्थिति क्या है ? नयी कविता का प्रारम्भ वस्तुतः कब से हुआ ? किन्तु इस विषय में कोई निष्कर्ष निकालने से पूर्व आवश्यक है कि उक्त विभिन्न मतों का संक्षिप्त आकलन करके उनके औचित्यानौचित्य का निर्धारण किया जाए । इस विषय में श्री गिरिजाकुमार माथुर लिखते हैं—

(क) परिवर्तित भाव बोध के अनुरूप न कोई उपकरण थे और उनको संकेत दिशाओं का कोई आभास ही था । भाषा छन्द, उपमान, प्रतीक, भावभूमियां, सभी भस्मीभूत हो चुके थे यहां तक कि काव्यगत संगीत-तत्त्व और तुकान्त तक रूढ़ बन गये थे । नए रचनाकार अपनी अपनी सामर्थ्य और दृष्टि के अनुसार इस

---

१ विशद विवेचन के लिए देखिए—लेखक की पुस्तक नयी कविता की समस्याएं ।

स्थिति से बाहर आने का यत्न कर रहे थे। सन् १९४१ तक काफी नया कृतित्व प्रकाश में आ चुका था। रामविलास शर्मा, केदारनाथ अग्रवाल, प्रभाकर माचवे, मुक्तिबोध की नयी रचनाएं निकल रही थी।

प्रकाशचन्द्र गुप्त की स्थापना के बावजूद कि तारसप्तक मे नूतन सांस्कृतिक स्वर प्रबल है, समस्त नयी प्रवृत्ति को प्रयोगवाद का अनुचित नाम देने की त्रुटि कुछ प्रगतिवादी साम्प्रदायिक आलोचकों ने की थी जिन्होंने संकलन कम को नेतृत्व समझ लिया था। उन्होंने शुद्ध रचनात्मक उपलब्धि में निष्पक्ष तुलनात्मक दृष्टि से यह नहीं देखा कि 'सम्पादक' से अधिक परिपक्व और भिन्न प्रकार का अभिनव कृतित्व तार सप्तक मे है, और यह भी कि अच्छे सम्पादक, संकलनकर्ता या व्याख्याता काव्य-धाराओं का नेतृत्व नही करते, रचनात्मक श्रेष्ठता को ही वह श्रेय हो सकता है।

वस्तुत हिन्दी-साहित्य में प्रयोगशीलता के साथ 'आधुनिकता' का समारम्भ हुआ था और पिछले २५ वर्ष के काव्य विकास को इसी रूप मे समझा जाना उचित है। उसे 'प्रयोगवाद' और "नयी कविता" के कृत्रिम वर्गों में देखना असगत है।"[1]

उक्त कथनों से स्पष्ट है कि श्री माथुर के अनुसार नयी कविता और प्रयोगवादी कविता के मध्य किसी प्रकार की विभाजक रेखा खींचना अनुचित है काल क्रम के कारण एक ही धारा के स्वरूप में आगे चलकर कुछ परिवर्तन अवश्य हो गया किन्तु दोनों की एकता में संदेह नहीं किया जा सकता। इस विषय में वे अन्यत्र लिखते हैं —

'आज इसे सभी स्वीकार करते हैं कि नयी कविता छायावाद के काल्पनिक रोमान, व्यक्तिवादी निराशा और आध्यात्मिक पलायन की प्रतिक्रिया बन कर आई थी। सन् १९३० से १९६५ तक जो सामाजिक, राजनीतिक और वैचारिक परिवर्तन हमारे देश के क्षितिज पर उदित हो रहे थे उन्हें यहां ध्यान में रखना आवश्यक है।'[2]

पिछले पन्द्रह वर्षों में इस विभाग के अन्तर्गत विषय-वस्तु और रूप विधान दोनों ही प्रकार के नये प्रयत्न और प्रयोग किए गए हैं। अब तक आलोचकों द्वारा बनाए हुए नयी कविता के प्रचलित वर्गीकरण से हम मोटे तौर पर यह समझते रहे हैं कि जो रचनाएं समाजवादी मार्क्सवादी दृष्टिकोण के साथ सामाजिक आग्रह

———

१—गिरिजाकुमार माथुर, नयी कविता सीमाएं और सम्भावनाएं, प्र० सं० पृ० ६–८।

२—वही, वही वही, पृ० ७३

२—नयी कविता प्रयोगवाद से भिन्न है। प्रयोगवादी काव्य की क्षीण धारा आगे चलकर उसी से निकलकर पृथक हो गई।

३ नयी कविता की बीजावस्था सन् ४०-४२ से लेकर तार सप्तक के प्रकाशन अर्थात् सन् १९४३ ई० तक, पल्लवावस्था 'दूसरा सप्तक' और 'प्रतीक' के प्रकाशन काल के आस पास अर्थात् सन् १९५१ ई० के लगभग तक और विकासावस्था सन् १९५० ई० के बाद मुख्य रूप से 'नयी कविता' और 'नयेपत्ते' के प्रकाशन के बाद आती है।

किन्तु घोष जी की उक्त मान्यतायें कई दृष्टियों से असंगत हैं। नयी कविता का प्रारम्भ सन् १९४० ई० से मानना किसी भी प्रकार उचित नहीं प्रमाणित किया जा सकता। सन् १९४० में न तो नयी कविता की कोई ऐसी प्रवृत्ति प्रकाश में आई और न ही ऐसी कोई साहित्यिक घटना घटित हुई जिसके आधार पर उसे नयी कविता का आविर्भाव काल घोषित किया जा सके। हिन्दी काव्य जगत् में उस समय प्रगतिवादी स्वर की प्रधानता थी और नवीनता के नाम पर उस समय उसमें कथ्य वस्तु अथवा शैली शिल्प की दृष्टि से कोई ऐसी विशेषता नहीं थी जिसके आधार पर उसे परम्परागत काव्य धारा से सर्वथा पृथक् सिद्ध किया जा सके। यही नहीं, वह एक प्रकार का राजनीतिक आन्दोलन था जिसने साहित्य की साहित्यिकता को ही एक प्रकार से खतरे में डाल दिया था। अतः नयी कविता का प्रारम्भ सन् १९४० ई० से नहीं माना जा सकता।

प्रयोगवादी काव्य धारा नयी कविता से उद्भूत हुई अथवा वह नयी कविता से कोई नितान्त भिन्न काव्य धारा है यह कथन भी प्रमाणित नहीं किया जा सकता। नयी कविता प्रयोगवादी काव्य धारा का विकसित अथवा उद्‌गम रूप अथवा उसकी परवर्ती काव्य धारा है, प्रयोगवाद की पूर्ववर्ती काव्य धारा अथवा उसका मूलोद्‌गम नहीं क्योंकि नूतनता का सर्वग्राही मोह तथा परम्परा के प्रति विगहणा एवं विद्रोह का स्वर सर्वप्रथम इसी काव्य धारा में सर्वाधिक प्रकट हुआ। इसकी पूर्ववर्ती किसी भी काव्य धारा में नूतनता का यह प्रबल आग्रह जो उसे समग्र पूर्ववर्ती काव्य से पृथक् कर देता हो, दिखाई नहीं देता। आलोचकों के मन्तव्यों के आधार पर भी इसे प्रमाणित नहीं किया जा सकता क्योंकि उनका आशय घोष जी के आशय से भिन्न है। प्रयोगवादी काव्य धारा नयी कविता से उद्भूत अथवा उससे पृथक होकर बहने वाली क्षीण धारा नहीं, प्रत्युत उसका मूल है।

नयी कविता के विकास की अवस्थाओं के सम्बन्ध में भी घोष जी की धारणा भ्रामक है। दूसरा सप्तक सन् १९५१ ई० में प्रकाशित हुआ। किन्तु उनके अनुसार नयी कविता की पल्लवावस्था सन् १९५१ ई० और विकासावस्था सन् १९५० ई० के उपरान्त आती है जो कि अनुचित है क्योंकि विकासावस्था पल्लवावस्था (सन् १९५१ ई०)

के उपरान्त ही प्रारम्भ हो सकती है, उसके पूर्व सन् १९५० ई० से नहीं—५१ के उपरान्त १९५० का आगमन अथवा प्रारम्भ सम्भव नहीं।

(घ) नयी कविता के आविर्भाव के विषय में श्री लक्ष्मीकान्त वर्मा की निम्नांकित मान्यतायें भी उल्लेखनीय हैं —

ऐतिहासिक दृष्टि से नयी कविता 'दूसरा सप्तक' (१९५१ ई०) के बाद की कविता को कहा जा सकता है, किन्तु इस ऐतिहासिक क्रम के अतिरिक्त भी नयी कविता का वास्तविक रूप उस समय प्रतिष्ठित हुआ जब 'दूसरा सप्तक' के बाद के कवियों ने सारी कविताओं को 'दूसरा सप्तक' के निकटवर्ती पाते हुए, किन्हीं अर्थों में कुछ भिन्नता का अनुभव भी किया। नयी कविता मूलतः १९५३ ई० में 'नये पत्ते' के प्रकाशन के साथ विकसित हुई और जगदीश गुप्त तथा रामस्वरूप चतुर्वेदी के सम्पादन में प्रकाशित होने वाले संकलन नयी कविता' सन् १९५४ ई० में सर्वप्रथम अपने समस्त सम्भावित प्रतिमानों के साथ प्रकाश में आई।"[१]

स्पष्ट है कि वर्मा जी नयी कविता को दूसरे सप्तक की कविताओं से किंचित् भिन्न मानने के कारण नयी कविता का विकास दूसरे सप्तक के उपरान्त विशेषकर "नये पत्ते" के प्रकाशन काल सन् १९५३ ई० के अनन्तर मानते हैं। किन्तु नयी कविता तथा प्रयोगवादी काव्य धारा में जो साम्य है, प्रवृत्तियों एवं विशेषताओं का जो एकात्म्य है परम्परागत काव्य उसके उपकरणों के प्रति विगर्हणा एवं विद्रोह का जो जो भाव है और प्रयोगवादी एवं नये कवियों के पृथक्करण की जो कठिनाइयां हैं वे सभी इस बात की द्योतक हैं कि नयी कविता प्रयोगवादी कविता से सर्वथा भिन्न कोई पृथक् काव्य धारा नहीं मानी जा सकती। यही नहीं 'नयी कविता' संज्ञा की सार्थकता भी बहुत कुछ प्रयोगवादी काव्य की नूतनता के सर्वग्राही मोह एवं आग्रह के कारण ही है अतः उसे प्रयोगवादी काव्य का छद्म अथवा विकसित रूप ही माना जा सकता है उससे पृथक् उसका कोई अस्तित्व नहीं। उसके नामकरण एवं अस्तित्व का मूल कारण वस्तुतः 'वादी' कहलाने की हेयता एवं प्रयोगवाद के प्रति पाठक आलोचकों की विगर्हणा के भाव हैं। अतः नयी कविता का प्रारम्भ वस्तुतः सन् १९५३ अथवा १९५४ से मानना अनुचित है।

इसी प्रकार श्री शिवकुमार शर्मा की भी यह मान्यता कि नयी कविता का प्रारम्भ सन् १९५४ से 'नयी कविता' के प्रकाशन काल से हुआ, तर्कसंगत नहीं मानी जा सकती।[२]

---

१—लक्ष्मीकान्त वर्मा हिन्दी साहित्य कोश प०स० पृ० ३६६।

२— सन् १९५४ में डा० रामस्वरूप चतुर्वेदी और डा० जगदीश गुप्त के सम्पादन में प्रयोगवादी कविता का अर्द्ध वार्षिक संकलन नयी-कविता के नाम से प्रकाशित होने लगा है इसी समय से प्रयोगवादी काव्य का नाम 'नयी कविता' पड़ गया।
—हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तियां, पृ० ३७६।

उड़ाते हैं[1] तथापि वे अपनी करनी से बाज नहीं आते। यही नहीं, इसके साथ ही वे अपने आलोचकों से भी आशा रखते हैं कि वे उनकी रचना-शक्ति एवं काव्यगत महत्ता की भूरि भूरि प्रशंसा करें। वाल्मीकि, कालिदास, भारवि सूर, तुलसी तथा प्रसाद के काव्य-दोषों का उल्लेख वे भले ही करें, पर नये कवियों में इस प्रकार के दोष-दर्शन का उन्हें अधिकार नहीं। वस्तुतः वे समझते हैं कि बड़े से बड़े कवियों में दोष भले ही हों, पर वे उनसे परे एवं अछूते हैं। किसी ने उनके किसी काव्य-दोष की ओर संकेत किया नहीं कि वे उसे ले उड़े। आलोचक तथा कवि दोनों ही के अधिकार वे अपने हाथ में रखते हैं। छन्द-लय के अभाव की ओर किसी आलोचक ने संकेत किया तो वे उसकी अनावश्यकता को सिद्ध करने के लिए किसी लेखक अथवा आलोचक के कथनों को खोज निकालते हैं और उसकी अनावश्यकता को सिद्ध करके ही दम लेते हैं, भावुकता तथा कल्पना के अभाव की बात कहते ही उसकी अनावश्यकता सिद्ध करने के लिए विभिन्न प्रकार के उचित-अनुचित तर्क प्रस्तुत करने लगते हैं, विषय-वस्तु में वचित्र्य के अनौचित्य की बात आते ही अपनी सफाई पेश करने लगते हैं, भाषा के अनगढ़पन तथा स्वनिर्मित शब्दावली के मनमाने प्रयोगों के प्रयोग के आक्षेप से बचने तथा अपने पक्ष के समर्थन के लिए अनेकानेक हास्यास्पद तर्क प्रस्तुत करते हैं, साधारणीकरण की अक्षमता के आरोप से बचने के लिए उसकी अनावश्यकता सिद्ध करने का जी-जान से प्रयत्न करते हैं, विशेषीकरण की प्रक्रिया तथा उसके महत्त्व पर बल देते हैं और साधारणीकरण को प्राचीन साहित्य की वस्तु कहकर उसकी उपेक्षा करते हैं, प्रसादात्मकता तथा प्रेषणीयता के अभाव के आरोप से बचने के लिए दुरूहता एवं दुर्बोधता को काव्य का अनिवार्य गुण मानते हैं, रसात्मकता के अभाव का आक्षेप होते ही काव्य में उसकी अनिवार्यता का निषेध करते हैं, बुद्धि रस की कल्पना करके काव्य को बौद्धिक व्यायाम का अखाड़ा सिद्ध करने का प्रयास करते हैं और काव्य की महत्ता की प्राचीन कसौटियों की खिल्ली उड़ाते हैं—

> फुव्वारा।
> न फव्वारा, न फुहारा, न फौवारा,
> मार दिया पौ बारा।
> यह भी कविता क्या है।

---

[1]—जिस भाँति असुन्दर स्त्री का, प्रसाधनों की सहायता से अपने को सुन्दर दिखाने का प्रयत्न करना अशोभन जान पड़ सकता है उसी प्रकार यदि पंगु कविता अपने को व्याख्या की पंगु बैसाखी पर टिकाने का व्यर्थ उद्योग करे तो कुछ लोगों को हँसी आ सकती है। यह बात दूसरी है कि असुन्दर स्त्री या पंगु कविता को अपने अपने लिए उद्यम करने का पूरा अधिकार है और कुछ लोग ऐसे होंगे ही जो इन दोनों से सहानुभूति दिखाएँ। आज कल की अधिकांश नयी कविता जो या तो वक्तव्य के साथ है या स्वतः वक्तव्य है—कदाचित् इसीलिए बहुतों से प्रोत्साहन पा रही है।

—कीर्ति चौधरी, वक्तव्य,

जिसके पढ़ने को फिर जी न करे दोबारा।
पढ़ना क्या करना है पारायण ?
नारायण ! नारायण !!
अपनी तो यही टेव,
हर हर हर महादेव ![1]

नये कवि-आलोचकों की विवेकहीनता एवं गर्हित पक्षधरता के जो उदाहरण आलोचना-जगत् में प्राये दिन देखने में आते हैं उनसे स्पष्ट है कि वे अपनी कविता की प्रशंसा ही सुनना चाहते हैं उनके दोषों की बात भी सुनना उन्हें सहन नहीं। नयी कविता अंक ४ (सन् १९५९ ई०) में 'आचार्य श्री की कृपा दृष्टि" शीर्षक सम्पादकीय लेख में डा० जगदीश गुप्त ने वाजपेयी जी की नयी कविता की आलोचना की जो आलोचना की है, वह अपने अनौचित्य में अपना सानी नहीं रखती, यह कदाचित् कहने की आवश्यकता नहीं। आप लिखते हैं—

अज्ञेय की कविता की अंतिम पंक्तियाँ उद्धृत करके जिस अखण्ड विश्वास से वाजपेयी जी ने लिखा कि हिन्दी का साधारण पाठक भी इन पंक्तियों की लयहीनता बिना प्रयत्न के ही बता सकेगा, परख की आवश्यकता भी न होगी, उसकी गुजराती के प्रतिष्ठित कवि उमाशंकर जोशी ने स्वसम्पादित पत्रिका 'संस्कृति' में कैसी उपयुक्त पूजा की है यह दर्शनीय है। जोशी जी ने उसकी लय को गुजराती क्रम से स्पष्ट करते हुए टिप्पणी की है— 'श्री वाजपेयी लयहीनता' शीरी ते जुभे छे ते समजवु मुश्केल छे' अर्थात् वाजपेयी जी को किस प्रकार कविता की इन पंक्तियों में लयहीनता दिखाई देती है, यह समझना कठिन है।'[2]

किन्तु श्री उमाशंकर जोशी अथवा डा० जगदीश गुप्त अपनी पक्षधरता के अनौचित्य का ध्यान न करके वाजपेयी जी की आलोचना की कितनी ही आलोचना क्यों न करें सत्य वाजपेयी जी के ही साथ है। अज्ञेय जी की जिस कविता की जिन पंक्तियों के विषय में वाजपेयी जी ने लयहीनता का आरोप किया था वे किसी भी प्रकार उस दोष से मुक्त नहीं मानी जा सकतीं। मुक्त छन्द की स्वच्छन्दता का अर्थ यह नहीं कि लय एवं प्रवाह का गला घोट दिया जाए। कवि की इसको भी पंक्ति को दे दो,' 'इसको भी भक्ति को दे दो' आदि पंक्तियाँ कविता के पूर्व धारा प्रवाह को इस प्रकार खण्डित कर देती हैं कि लगता है मानों कोई व्यवधान आ गया हो मानो पाठक के गले में कोई वस्तु अटक गई हो अथवा मार्ग पर द्रुत गति से जाते हुए टाँगे, स्कूटर अथवा कार के मार्ग में कोई पत्थर आ गया हो। कहने की आवश्यकता नहीं कि मुक्त छन्द का छन्दत्व उसकी लय एवं प्रवाह में ही है।[2] मुक्त होकर भी वह छन्द की भूमिका पर रहता है और छन्द की भूमिका पर रहकर भी उसके नियमादि से मुक्त। संभवतः इसीलिए श्री टी० एस० इलियट ने कहा था —

———

१—नयी कविता, अंक चार, १९५९ ई०, पृ० ९।
२—निराधार पाण्डे, पौ बारा, नयी कविता पृ० १०४।

"No Verse is free for the man who wants to do a good job ...only a bad poet will welcome free verse as a liberation form"[1]

अर्थ-लय की बात करना व्यर्थ है । काव्य में उससे काम नहीं चल सकता क्योंकि काव्य एवं गद्य का भेदक लक्षण शब्द-लय ही है, अर्थ-लय नहीं । अर्थ लय तो गद्य में भी हो सकती है और प्राय होती है । किन्तु शब्द लय ही काव्य को गद्य से पृथक् करती है । नयी कविता के प्राय सभी उत्कृष्ट कवि मुक्त छन्द की महत्ता तथा उसकी लय एवं प्रवाहमयता की अनिवार्यता से न केवल परिचित हैं प्रत्युत उन्होंने अपनी रचनाओं में प्राय सर्वत्र उनकी उत्कृष्ट योजना द्वारा उसे जो भव्य रूप प्रदान किया है वह देखते ही बनता है । स्वयं अज्ञेय जी की रचनाएं इस विषय में आलोक स्तम्भों का सा काम करती हैं । आलोच्य पंक्तियों की लयहीनता का दोष एक अपवाद मात्र है जो किसी भी उत्कृष्ट कवि में भी खोजा जा सकता है अत इस प्रकार की विरल त्रुटियों के संकेत मात्र से क्षुब्ध होकर आलोचना जगत में अराजकता फैला देने की आवश्यकता नहीं क्योंकि वे इतनी विरल हैं कि उनसे कवि के व्यक्तित्व पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता । उसके काव्य गुणों की सरिता धारा में उनका अस्तित्व विरल तृणवत् ही है इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं ।

इसी प्रकार अन्य नये कवियों की रचनाओं में भी यत्र-तत्र गति लय एवं प्रवाह के बाधक तत्व दृष्टिगोचर होते हैं जो वस्तुत उनकी दुर्बलता के लक्षण हैं । निम्नांकित अवतरण इस विषय में द्रष्टव्य हैं —

नई मोटी लालटेन ले
घूम रहे गोदामों में ये मोटे वार्डर
जांच रहे रेलों के पहिए
हथौड़ियों से घन घन करके,
मोटे होठों में चुरुट जल रहा ।
आसमान की छाती में
इंजिन का सारा शोर भर रहा ।
जाने किस राक्षस की आंखों जैसी—

---

मुक्त छन्द वह है जो छन्द की भूमिका पर रहकर भी मुक्त है......मुक्त छन्द का समर्थक उसका प्रवाह ही है । वही उसे छन्द सिद्ध करता है और उसका नियम राहित्य उसकी मुक्ति ।
——निराला परिमल भूमिका पृ० १८-१९ ।

[1] T S Eliot Selected Prose Page 34

लाल हरी लाइटें
चमक रहीं सिगनल खम्भों की।[1]

तथा

सत सत हब्शी
इन पृथ्वी पुत्रों को
भेड़ों जैसा वे हाक रहे हैं।
बधे हाथ
कोड़ों की सड़ सड़
तभी कल्पना चित्र बदल जाता
कबूतर को गुटरू से
जो इन भवनों के अपने महराबी-निवास में
आखें बन्द किए बैठे हैं।[2]

नयी कविता का वचित्र्य तथा उसके कर्ताओ का उसके मूल्याकन एव महत्त्व निर्धारण विषयक दृष्टिकोण भी उसकी आलोचना एव गुण-दोषा क पृथक्करण म बाधक हैं। नये कृतिकारों की अपनी रचनाओं के मूल्याकन की कसौटी एव तद्विषयक धारणाए आलोचकों की धारणाओं से मेल नहीं खातीं। इस विषय मे एक घटना के उल्लेख से यह अनुमान हो जाएगा कि नए कृतिकारो एव आलोचका म कितना मत-वभिन्य है—

बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के बी॰ ए॰ के पाठ्यक्रम निर्धारण के समय हिन्दी विभागाध्यक्ष से कतिपय विभागीय अध्यापकों ने इस बात का अनुरोध किया कि नयी कविता को भी उसमें यथोचित स्थान दें। अध्यक्ष महोदय के सहमत होने पर अज्ञेय की कविताए, जिन्हें वे सर्वोत्तम समझते थे पाठ्यक्रम मे रखी गयीं और अन्य जी का इस विषय की सूचना देकर उनसे अनुमति मागी गई। किन्तु अज्ञेय जी का पत्र पाकर उन सबको यह जानकर आश्चर्य हुआ कि स्वय कविताओं के रचयिता अज्ञेय जी उन्हें अपनी उत्कृष्ट रचनायें नहीं मानते। उनका विचार था कि वे कवितायें उनकी निकृष्टतम रचनाओं में से हैं।[3]

मुण्डे मुण्डे मतिर्भिन्ना', Minds differ as rivers differ" अथवा 'भिन्न रुचिर्हि लोक' के अनुसार साहित्यालोचन के क्षेत्र में भी मतभेद के लिए पर्याप्त स्थान

———

१—नरेश मेहता समय-देवता, मेरा समर्पित एकात, पृ॰ ६३।

२—वही वही, वही पृ॰ ६४।

३—डा॰ जगन्नाथप्रसाद शर्मा, जयपुर में दिया गया एक भाषण —— १९६६ ई॰।

है। किन्तु नयी कविताओं के विषय में आलोचकों एवं रचयिताओं के मध्य मतभेद की खाई इतनी बड़ी है कि उनमें किसी प्रकार के सामंजस्य के लिए कोई स्थान नहीं दीखता यही नहीं स्वयं कवियों तथा आलोचकों में भी परस्पर इसी प्रकार का मत-वैषम्य है, इसी प्रकार की गहरी खाई है जिसे पाटना सहज सम्भव नहीं। कहने की आवश्यकता नहीं कि आलोचना की यह समस्या तभी सुलझ सकती है जबकि कविगण स्वयं आलोचक बनना छोड़ कर आलोचकों की विद्वत्ता, तटस्थता, समीक्षण क्षमता तथा उनकी कसौटी एवं तद्विषयक सिद्धान्तों में आस्था एवं विश्वास रखें, उनके मूल्यांकन एवं तद्विषयक निर्णयों का अपने मूल्यांकन की कसौटी, दृष्टिकोण एवं निर्णयों से अधिक महत्त्वपूर्ण समझें, उनके दृष्टिकोणों एवं समीक्षा सिद्धान्तों पर गम्भीरतापूर्वक विचार करके उनके औचित्य को समझने का प्रयत्न करें और उनके निर्णयों को किसी प्रकार का अनिष्टकारी बम विस्फोट न समझकर अपने कवि कर्म के लिए मंगलकारी समझकर उन्हें शिरोधार्य करें। इसके विपरीत आलोचकों को भी अपने दायित्व की महत्ता समझते हुए नयी कविता एवं उसके रचयिताओं के प्रति उपेक्षा वृत्ति त्याग कर आधुनिकता एवं मौलिकता का महत्त्व समझना चाहिए, उनके दृष्टिकोण स्थापनाओं मान्यताओं एवं काव्य सिद्धान्तों के औचित्यानौचित्य पर गम्भीरतापूर्वक विचार करना चाहिए और उनकी अन्तरात्मा में प्रवेश कर तटस्थ रूप से उनके काव्य के गुण-दोषों का पृथक्करण कर उसका मूल्यांकन एवं महत्त्वांकन करना चाहिए।

## गद्यात्मकता की समस्या

मुक्त छन्द की स्वच्छन्दता पर बल देने तथा उसकी छन्दात्मकता एवं छन्दगत भूमिका का निषेध करने का परिणाम यह होता है कि कविगण कविता के स्थान पर शुष्क नीरस गद्य की रचना करने लगते हैं। नयी कविता में भी ऐसा हुआ है जो वस्तुतः चिन्त्य है और जिससे काव्य-जगत् में एक समस्या सी उठ खड़ी हुई है। नया कवि ऐसे स्थलों पर गद्य और कविता में कोई अन्तर नहीं रखना चाहता, किन्तु वह यह भूल जाता है कि गद्य और कविता दोनों भिन्न विधाएं हैं। जिस प्रकार यह सत्य है कि कविता केवल पद्य का ही पर्याय नहीं मानी जा सकती उसके लिए कुछ और भी अपेक्षित है उसी प्रकार यह भी कि कविता और गद्य में पर्याप्त अन्तर है शुष्क नीरस गद्य-रचना कविता नहीं मानी जा सकती। कविता में जिस गति तथा लय की अपेक्षा है वही उसे गद्य से भिन्न कर देती है किन्तु नया कवि इन दोनों की ही उपेक्षा करके जब कोरी गद्य रचना द्वारा काव्य रचना का यशोलाभ चाहता है तो देखकर निराशा होती है। नयी हिन्दी कविता के निम्नांकित स्थल ऐसे ही हैं —

(क) "प्रभु मैं आप के लिए स्टेट एक्सप्रेस का डब्बा मंगवा रहा हूँ
मेरी बीबी चाय बनाने गयी है, मेरा मुन्ना चन्दन घिस रहा है,
मेरी मुन्नी माला गूँथ रही है मेरा नौकर बाजार से रोटी लाने गया है।"[1]

(ख) 'मैं आज भी जिंदा हूँ
उस हस्ताक्षर की भांति
जो मजाक-मजाक में यों ही किसी वटवृक्ष के नीचे
पिकनिक, तफरीह में लिख दिया गया था।[2]

(ग) जमा है ऐश ट्रे में राख का थक्का
दोस्त!
तुमको चुरुट पीते तो कभी देखा नहीं
और हां
दो मिनट पहले डाकिए ने
जो दिया नीला लिफाफा
जिस पर इंग्लिश में पता लिखा
था कहाँ है?[3]

कहने की आवश्यकता नहीं कि उक्त अवतरणों में गद्य और पद्य का अन्तर मिट गया है। कविता के लिए जिन तत्वों की अपेक्षा है उनका इनमें नितान्त अभाव है अतः उन्हें कविता न कहकर गद्य कहना अधिक उपयुक्त होगा मात्र एक दो शब्दों के स्थान परिवर्तन से ही वे विशुद्ध गद्य का रूप धारण कर लेते हैं। उदाहरणार्थ उन्हें गद्य में इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है —

(क) प्रभु मैं आपके लिए स्टेट एक्सप्रेस का डब्बा मंगवा रहा हूँ, मेरी बीबी चाय बनाने गयी है, मेरा मुन्ना चन्दन घिस रहा है, मेरी मुन्नी माला गूँथ रही है, मेरा नौकर बाजार से रोटी लाने गया है।

(ख) मैं आज भी उस हस्ताक्षर की भांति जिंदा हूँ जो मजाक मजाक में यों ही किसी वटवृक्ष के नीचे पिकनिक तफरीह में लिख गया था।

(ग) ऐश ट्रे में राख का थक्का जमा है। दोस्त! तुमको चुरुट पीते तो कभी देखा नहीं। और हाँ, दो मिनट पहले डाकिये ने जो नीला लिफाफा दिया था, जिस पर इंग्लिश में पता लिखा था कहाँ है?

इसके अतिरिक्त उक्त अवतरणों में न तो कोई कल्पनागत सौंदर्य है और न भाव अथवा रसोद्रेक। शुष्क नीरस गद्यात्मकता के अतिरिक्त उनमें कोई काव्योचित महत्त्व की वस्तु है यह बात नये कवियों में से भी बहुतों को मान्य न होगी।

---

१ राजेन्द्र किशोर स्थितियाँ अनुभव और अन्य कविताएं, अनुभव ३।
२ लक्ष्मीकान्त वर्मा नयी कविता अंक २ सन् १९५५ ई०।

इसी प्रकार निम्नांकित अवतरण भी कविता की अपेक्षा गद्य के अधिक निकट है —

एक
रंग
दिखता है
शेष
सब समा गये
+ + +
गिन गिन की वह आवाज
सब
दिशाओं में
प्रतिध्वनित है।
और
अब मैं घूम
रहा हूँ।[1]

तथा

जो लड़की
मुझे
प्यार कर सकती थी
उसने
मुझे
प्यार नहीं किया
जो लड़की
मुझे घृणा दे सकती थी
उसने
मुझे
प्यार दिया।
मैं
जो
दुनिया के साथ
विद्रोह कर सकता था
समझौतावादी
हो गया।

---

१ दाऊजी गुप्त, बचपन- एक आवाज, मौन बोली पृ० ५

दुनिया
जो मेरी हथेली पर
उग सकती थी
फलकर
असीम हो गई ।[1]

कहने की आवश्यकता नहीं कि उक्त अवतरणों में कविता का इसलिए भ्रम होता है क्योंकि वे उसके रूपाकार में प्रस्तुत किए गए हैं, अन्यथा उनमें और गद्य में कोई अन्तर नहीं। यही नहीं, गद्य का रूप देने के लिए उनमें किसी प्रकार का शब्दों का स्थान-परिवर्तन भी आवश्यक नहीं है। इस प्रकार की कवितायें न केवल काव्य के रूप को विकृत करती हैं प्रत्युत इनसे काव्य-क्षेत्र एवं उसके आलोचना-जगत में अनेक समस्याएं भी उत्पन्न होती हैं। काव्य की परिभाषा तथा उसका स्वरूप क्या है? काव्य और गद्य में अन्तर क्या है? इन प्रश्नों का समाधान ऐसी स्थिति में और भी कठिन हो जाता है। वस्तुतः मुक्त छन्द में कविता लिखना सरल है, उसमें किसी प्रकार का कोई बन्धन नहीं है, इस प्रकार की भ्रामक धारणायें ही ऐसी कविताओं के सृजन की प्रेरणा देती हैं। रचयिता ऐसी धारणाओं से कवि-कर्म को सरल सुकर समझकर बिना किसी बन्धन अथवा नियम की चिन्ता किये स्वच्छन्दतापूर्वक लिखता चला जाता है। परिणाम यह होता है कि काव्य प्रतिभा के अभाव में भी व्यक्ति कवि-कर्म में प्रवृत्त हो शुष्क, नीरस, कलात्मकता विरहित गद्य लिख कर काव्य-जगत में अराजकता को जन्म देता है। किन्तु इस समस्या का समाधान तब तक नहीं हो सकता जब तक कि पाठक आलोचक तथा समाज के अन्य सदस्य ही नहीं, स्वयं कवि भी अपने दायित्व के महत्त्व का अनुभव करके ऐसी रचना न करे जिससे उसके समक्ष किसी प्रकार का प्रश्नचिह्न लगाया जा सके।

## परम्परा एवं नव्यता के संघर्ष की समस्या

नया कवि नव्यता का प्रेमी तथा परम्परा का घोर विरोधी है। उसकी दृष्टि में समस्त प्राचीन साहित्य निस्सार एवं विगर्हणीय है। उसके अनुसार उसमें वही बेसुरी एवं युग-युगान्तर के जूठे चुम्बनों-सी उपमायें, वही परम्परायुक्त बिम्ब एवं प्रतीक, वही परम्परागत भाषा और वही घिसी पिटी विषय-वस्तु है, जिसका कोई मूल्य नहीं। अपनी उपमाएं, अपने प्रतीक, अपने बिम्ब, अपनी स्व निर्मित भाषा तथा अपनी विषय वस्तु उसे जहां एक ओर श्रेष्ठतम प्रतीत होती है वहां प्राचीन साहित्य की ये सभी वस्तुयें हेय एवं तिरस्करणीय । या यह सत्य है कि संसार की

---

१ उदयभानु मिश्र नियति, कविताएं, पृ० १७–१८।

एसी कोई वस्तु नही, जो काव्य का विषय न बन सके और इस दृष्टि से नए कविया का यह कथन कि "कुत्ते का पिल्ला, दियासलाई की काडी, साबुन का टुकडा"[1] कोई भी कविता की विषय वस्तु के अयोग्य नही ह, किसी को भी हेय या उपेक्ष्य नही समझा जा सकता, "रोटी का टुकडा, केले का छिलका, टेबिल की काठ"[2] सभी कवि से कुछ न कुछ अपेक्षा रखते हैं, सभी में काव्य का विषय बन कर गौरवान्वित होने की आकाक्षा ह, किसी प्रकार भी अनुचित नही कहा जा सकता। "दरवाजे की कुण्डी, आरती की थाली, घोडे की लगाम," सभी कविता के विषय हो सकते है। किन्तु नये के प्रति यह आत्यन्तिक मोह जहां एक प्रकार से श्लाघ्य ह वहां प्राचीनता के प्रति कवियों का विराग, विद्रोह एव विरोध गर्हित एव त्याज्य। काव्य का क्षेत्र यदि समस्त चराचर जगत् है तो उसमें किसी अ श विशेष के प्रति उपेक्षा का व्यवहार

---

१–२ कुत्ते का पिल्ला,
दियासलाई की काडी
साबुन का टुकडा,
मान मत हीन किसी को,
हैं सभी कवितामय।
रोटी का टुकडा,
केले का छिलका,
टेबिल की काठ,
देखते तेरी ही ओर।
कहते अपनी गहराई नापते
दरवाजे की कुण्डी
आरती की थाली,
घोडे की लगाम
ह कौन कविता के अयोग्य ?
हो, जो हो नित्य अनुपम।
हां, कविता का प्राण,
करते द रस निर्वेद,
न मिलेगा शोभा का वरण ?
चाहें हों तो यह
है यह संसार एक पयसागर,
है यह धाम कविता की अनूप !
—श्री श्री हेमन्त कवि, पड़ोस में बजती बांसुरिया, धर्मयुग १९ मार्च १९६०।

क्या किया जाए ? नया कवि जहा नये विषयो के प्रति न्याय करता है, वहा पुराने विषयों का तिरस्कार करके उनके साथ अन्याय। ऐसा करना उसके लिए कहा तक उचित ह, यह वह स्वय ही सोचे। कहने की आवश्यकता नही कि इस प्रकार नये कवियो द्वारा परम्परा एव प्राचीनता के प्रति विद्रोह नये एव पुराने कवियो एव आलोचको में ही नही, प्राचीन एव नवीन, परम्परा एव नव्यता के प्रेमिया, उपासको एव उनसे सहानुभूति रखने वाले समाज के वर्गों में भी सघर्ष उत्पन्न करता ह। परिणामत दोनो एक दूसरे पर व्यग्य करते हैं, एक दूसरे की खिल्ली उडाते हैं और इस प्रकार प्राचीन एव नवीन, परम्परा तथा अपरम्परा की खाई को चौडा करते हैं यदि एक ओर पुराना कवि नये कवियो की नव्य उपमान-सधान की आवश्यकता से अधिक बलवती एव मोहमयी प्रवत्ति पर व्यग्य करता ह :—

गलत न समझो, म कवि हू—
खादी में रेशम की गाठ जोडता हू म।
कल्पना कडी से कडी, उपमा सडी से सडी, मिल जाय पडी,
उसे नही छोडता हू म।
आख मीच, मास खीच, जो भी लिख देता उसे, आपकी कसम,
नयी कविता बताता हू।
अली की, कली की बात बहुत दिनो चली, अजी हिन्दी में
देखो छिपकली भी चलाता हू। [1]

तो दूसरी ओर नया कवि परम्परा को ससार के लिए विनाशक मानता हुआ विश्व को उसके विषाक्त प्रभाव से बचने के लिए सावधान करता है —

उस पुष्प गध से बचो
जो अपने पराग में तक्षक लिए होने के बाद भी हसता ह
खा लेता है सारे जीवन की सचित मूल शक्ति
क्याकि उसे या उसके विष को
फूल की गध, सौरभ, पराग बाध नहीं पाता
वह हर परीक्षित को सशय की जडता बन डसता है
ओ परम्परा की निर्जीव सत्ता पर जीने वाला
तक्षक भागवत्र के पृष्ठों के ससग में भी
परीक्षित की मृत्यु लिए फिरता है। [2]

---

१ गोपालप्रसाद व्यास, चले आ रहे हैं, पृ० १३–१४।

२–लक्ष्मीकान्त वर्मा, तक्षक की परम्परा।

तथा

मारते क्यो हो
निरीह प्राणी को
जाने दो
उसको तो जाना है
चला जाएगा
भटके राही सा ।
बेचारा पनिया ह ।
किन्तु हो कसा भी
सप ह ।
उसे तो मरना होगा ही,
निज को हमें त्रासमुक्त
करना तो होगा ही
मय विष का ही नही,
रूप, रग, आकार का भी,
मत उसे बलि होने दो
अपनी विषाक्त परम्परा के लिए ।[1]

कभी परम्परा के प्राचीन खोल एव दम घोट अन्धकार को चीर कर नव्यता की प्रकाश किरणो के साक्षात्कार का आनन्दलाभ कर कतकृत्य हो उठता ह,[2] कभी परम्परा प्रमियो को भूतो एव लुटेरो के प्रतीका द्वारा चित्रित करते हुए बच्चो द्वारा उन्ह लठियाने की बात सोचकर गर्वानुभव करता है, और कभी परम्परागत सभ्यता, सस्कृति एव साहित्य के उपकरणो को नष्ट कर डालने म ही अपने जीवन की चरम सार्थकता समझता ह —

सभ्यता की भूल को
ग्रह की तिजोरी में घर—
पहाडी ढलानो से ढुलका दे,
खोया अपनत्व मिटा दे ।
कभी कभी मन होता ह
गुब्बारों को फोड दे
लिखी स्लेटों को—
पत्थर से तोड दे,

---

१–शान्ति महरोत्रा, विषाक्त परम्परा, खुला आकाश मेरे पख, पृ० २७१ ।
२–जयसिंह नीरज, सतुल भृग, नील जल सोई परछाइया, पृ० २२ ।

नयी स्लेटो पर
खाली पन्नो पर
जीवन प्रारम्भें ।[१]

तथा

आओ, आज इस सन्दूक को खोलें
तहायी साडिया उठाकर बिखरा दे
ब्लाउजो को तार-तार कर दे
सायों को परो से रौंदें
रुमालो को गेंद सा उछालें
तौलिया से जूतो के तलवे पोंछें,
चादरा के बुशट बनायें
परदो के सूट सिलायें
मेजपोशों के स्काफ बाधें
आओ, आज इस परम्परा की सन्दूक को खोलें
जिसे एक बूढे पिता ने
अपने नासमझ बेटे को
विरासत में दिया था।[२]

यही नही, न तो उसे अपनी पितृ परम्परा में विश्वास है, न जन्मदाता पिता ही में। उसका कथन है —

मुझे विश्वास नही पितृ परम्परा में
न उस पिता में,
जिसने सृष्टि रची
न उसमें जिसने जन्म दिया
नाटक में निर्धारित पाट अदाकर
वे चले गये सदा के लिए
मै मरो का उपासक नही
जीवितो का स्वर हू।[३]

यही कारण है कि इस विषय में वह औचित्य की सीमाओं का लाघ कर परम्परा पर थूकने तक की बात करने लगा हू —

---

१—जयसिंह 'नीरज,' सच बात, नील जल सोई परछाइया, पृ० २१।
२—वही, कभी-कभी, वही, पृ० २८।
३— किरण जन, आओ आज इस सन्दूक को खोलें, स्वर परिवश के, पृ० २३।

छू दिया जिस दिन रसज्ञता ने
हास पर
अनजाने अजन्ता के चित्र पर
उस दिन लिखी गई कविता
दोबारा।[1]

कहने की आवश्यकता नहीं कि साहित्य का उपजीव्य घृणा नहीं, प्रेम है। उसके पावन मंदिर में घृणा के लिए कोई स्थान नहीं। उसकी देव प्रतिमा के द्वार सभी के लिए समान रूप से खुले हैं। साहित्यकार जब इस तथ्य को विस्मृत कर किसी अन्य उद्देश्य से प्रेरित होकर साहित्य सृष्टि करता है तो वह अपने पद से पतित हो जाता है। नया कवि जब परम्परा पर प्रहार करता है, परम्परा की देन होने के कारण जब वह प्राचीन साहित्य, प्राचीन भाषा, प्राचीन साहित्यशास्त्र, एवं प्राचीन रस सिद्धान्त की खिल्ली उड़ाता तथा उनके विनाश की कामना करता है तो उससे न केवल प्राचीनता के उपासकों को ठेस पहुँचती है प्रत्युत उनके हृदय में उसके प्रति कटुता एवं विगर्हणा का भाव भी उत्पन्न होता है क्योंकि घृणा, विद्वेष एवं शत्रुता प्रायः घृणा, विद्वेष एवं शत्रुता को ही जन्म देते हैं, कुरूप एवं अमंगल की ही स्थिति उत्पन्न करते हैं, प्रेम, सौन्दर्य एवं मंगल को नहीं। फलतः न तो स्वस्थ कला का ही निर्माण हो पाता है और न स्वस्थ आलोचना का ही।

## अस्पष्टता की समस्या

नयी कविता की एक चिन्तनीय समस्या उसकी अस्पष्टता है। काव्य में प्रसाद गुण का महत्त्व सदा सर्वदा रहा है और रहेगा, यह जानते हुए भी नये कवि अपने पक्ष समर्थन के लिए जब दुरूहता, दुर्बोधता तथा अस्पष्टता को काव्य का अनिवार्य गुण मानते हैं तो पाठक उनकी तथाकथित विवेक बुद्धि को देखकर आश्चर्य-स्तब्ध हुये बिना नहीं रहता। नया कवि आलोचक यह भूल जाता है कि काव्य में प्रसाद गुण का महत्व केवल प्राचीन काव्य आलोचकों की ही देन नहीं, उसके समकालीन साथी-सहयोगी कवि भी उसके महत्त्व में आस्था रखते हैं। इस विषय में श्री गिरिजाकुमार माथुर का यह कथन द्रष्टव्य है —

"हम नहीं समझते कि दुरूहता ही श्रेष्ठता की कसौटी है और जो श्रेष्ठ साहित्य होता है वह दुरूह होता है। श्रेष्ठ साहित्य का तो लक्षण ही यह है कि वह अत्यन्त जटिल अनुभवों को अत्यन्त सहज और सर्वग्राह्य रूप में व्यक्त करता है, जटिलताओं को पचाकर उसमें से सार्वजनीन सत्य का असली डोर निकाल लाता है।[2]

---

१ किरण जैन, पोदिया का अन्तर, स्वर परिवेश के, पृ० ३५।
२ मुद्राराक्षस, परिचर्चा, नयी कविता, अंक ८, पृ० ११०।

स्पष्ट ह कि काव्य में प्रसाद-गुरण को महत्त्व देने वाले साथियो के होते हुए भी उनके अभिमत के विरुद्ध अनेक नये कवि अस्पष्टता को काव्य का अनिवाय गुण मानते हैं उनके अनुसार नये कवियो की अनुभूतिगत उपलब्धि बडी विलक्षण ह। भाषा उसे उसकी सम्पूर्णता में व्यक्त करने में असमथ ह। उसका सकेत किया जा सकता ह, अभिव्यक्ति नही की जा सकती।[1] यही कारण है कि कभी कभी नया कवि वाणी की असमथता को पहचान कर मौन रह जाना ही श्रेयस्कर समझता है। अज्ञेय की निम्नाकित पक्तियाँ इसी सत्य की अभिव्यजक हैं —

एक मौन ही ह जो अब भी
नयी कहानी कह सकता ह,
इसी एक घट में नवयुग की
गगा का जल बह सकता ह,
ससृतिया की, सस्कृतियो की
तोड सभ्यता की चट्टानें
नयी व्यजना का सोता, बस
इसी तरह से बह सकता ह।[2]

नयी कविता की अस्पष्टता के समथक कवि आलोचक उसके समथन में निम्नाकित तक प्रस्तुत करते हैं —

(क) हमारे जीवन में जो अनेक अस्पष्ट और अछूते भाव-स्तर हैं, नयी कविता उनके चित्र प्रस्तुत करना चाहती ह। यह सरल काय नही ह। जीवन के गुह्य स्तरो पर सतरित होने वाली कविता इतनी सरल नहीं हो सकती कि उसे शब्दो से समझ लिया जाय। शब्द तो सकेत हैं, जिनका सहारा लेकर हमें उस भाव भूमि तक पहुँचना है, जहा धूमिलता ही धूमिलता ह। वहा प्रभा ही हमारी सहायता कर सकती ह। सकेत और ध्वनि के प्राचुय के कारण ही नयी कविता कुछ अ शा में अस्पष्ट रह जाती ह।[3]

(ख) प्रत्येक युग के काव्य की यह विशेषता ह कि वह सवथा नय और अछूते भाव-स्तरो (Obscure Corners) का उद्घाटन करना चाहता ह। एसे भावस्तर के रहस्या से पाठक परिचित नहा रहता। भाषा की अक्षमता के कारण उन रहस्यो को कवि ठीक-ठीक व्यक्त नही कर पाता। इस कारण प्रत्यक नया काव्य प्रारम्भ में अस्पष्ट रहता ह, पीछे चलकर क्रमश स्पष्ट होता जाता ह। छायावाद

१ गिरिजाकुमार माथुर, निकष नवीन दृष्टिकोण का प्रतीक, आलोचना, जनवरी, १९५६, पृ १३८।

२ डा० जगदीश गुप्त, नाव के पाव, पृ० १२।

३ अज्ञेय, नयी व्यजना, हरी घास पर क्षण भर, पृ० ५१।

की भी यही स्थिति थी। प्रारम्भ में उसमें जितनी अस्पष्टता और रहस्यमयता देखी जाती थी, पीछे उसका अंश क्रमशः कम होता गया।[1]

(ग) किसी भी श्रेष्ठ कवि के लिए भाषा उसकी सीमा है। भाषा रूपी सीमित साधन से वह असीम भाव जगत का सतरण करना चाहता है, यही उसकी विवशता है। इस विवशता के कारण ही वह अपने काव्य में धुंधला, अनिर्वच और अस्पष्ट होता है। वह जो कुछ कहना चाहता है उसे ठीक-ठीक कह नहीं पाता। भाषा बड़ी अपर्याप्त प्रतीत होती है। अपने मन की बात को वह नाना शब्दों, नाना विशेषणों और नाना ढंगों से कहना चाहता है, फिर भी सफल नहीं होता। भाव की यह घनीभूत राशि सम्यक् भाषा या अभिव्यक्ति के अभाव में ठीक-ठीक व्यक्त नहीं होती, दद कहा नहीं जाता, अनकहा रह जाता है।[2]

नया कवि आकर्षण को ही कविता का अनिवार्य गुण मानता है। अभिव्यक्ति की स्पष्टता की वह चिंता नहीं करता। यही कारण है कि वह महज खाकों अथवा शब्द-सकेतों को ही कविता समझ बैठता है जो उसके कवि कर्तव्य की उपेक्षा का द्योतक है। श्री शमशेरबहादुरसिंह की निम्नांकित पंक्तियां इस विषय में द्रष्टव्य हैं —

"इन खाकों में कुछ हैं जो महज इशारे हैं जिनमें व्यंजना की परोक्षता ही केवल व्यक्त हुई है जैसे रेखागणित की शक्लें होती हैं। उनका शाब्दिक अर्थ कुछ नहीं है। मुमकिन है ऐसी कविताएं बहुत मुद्दत बाद समझमें आयें मगर कुछ पाठकों के दिल को वे अपनी तरफ जरूर खींचेंगी। इनके इस खिंचाव में ही इनकी कविता छिपी हुई है, शाब्दिक अर्थों में नहीं। शाब्दिक अर्थ सिर्फ इशारा के हल्के पर्दे हैं क्योंकि बाज दफा हमें अपने जी का हाल सिर्फ इशारों की उलझी हुई दुनिया सा लगता है। अक्सर नहीं पता लगता कि आखिर वह चाहता क्या होगा, वह अनमना सा क्यों है।[3]

इस प्रकार सकेताभिव्यक्ति को ही काव्य का सबस्व मानकर चलने से परिणाम यह होता है कि कवि अपने कहे को प्रायः स्वयं ही समझ पाता है, पाठकों एवं श्रोताओं तक उसकी बात पहुँच नहीं पाती। कविता कवियों एवं पाठकों के मध्य जिस टेलीफोन का काम करती है, वह नयी कविता द्वारा सिद्ध नहीं हो पाता। फलतः कवि एवं पाठक के मध्य सूत्र विच्छिन्न हो जाते हैं और पाठक के अभाव में कवि अपने उद्देश्य में सफल नहीं होता। नयी कविता की निम्नांकित पंक्तियां इसी तथ्य की अभिव्यंजक हैं —

---

१ श्यामसुन्दर घोष, नयी कविता का रचना विधान, पृ० १०३।

२ वही, वही, पृ० १०३–१०४।

३ वही, वही, पृ० १०२।

म माइक के सम्मुख हूं
माइक मेरे सम्मुख है,
कोई सुनता भी होगा
या नहीं, इसी का दु ख है।[1]

नयी कविता की अस्पष्टता के विषय में एक किवदन्ती है। 'वचना के द्रुग' की कविताओं के अनुवाद के लिए दिल्ली के किसी पत्रकार ने पुरस्कार की घोषणा की किन्तु जब उनकी अस्पष्टता एवं दुरूहता के कारण कोई अनुवाद का साहस न कर सका तो स्वयं उनके लेखक अज्ञेय ने छद्म नाम से उनका अनुवाद प्रस्तुत किया। कहने की आवश्यकता नहीं कि यह अनुवाद भी कविताओं के समान ही दुरूह था।

कविता की अस्पष्टता उसकी महत्ता एवं सार-मत्ता को क्षीण करके कवि को लक्ष्य भ्रष्ट कर देती है। किन्तु नये कवि इसकी चिन्ता न करके ऐसी अस्पष्ट रचनाएं करते हैं जिनका कोई आशय ही समझ में नहीं आता। यद्यपि यहां कहने का आशय यह नहीं है कि सभी नयी कविताएं इस दोष से युक्त होती हैं। कवि का उद्देश्य अपने भावों, विचारों एवं मान्यताओं को पाठकों पर प्रकट करना है, अत यदि वह ऐसा करने में समर्थ नहीं होता तो उसका श्रम व्यर्थ जाता है। निम्नांकित रचनाएं अपनी अस्पष्टता के कारण उस महत्त्व को खो बैठी हैं जो उन्हें अन्यथा प्राप्त हो सकता था —

(क) चन्द्रमा
नारियल के खोल में
रस मलाई खाता रहा
समुद्र मुंह फाड़
धुएं को निगलता रहा
हवा भी
पश्चिमी दरवाजे में
आग आई तट पर
आधी रात
शतरंजी चादर पर
केवल एक ही खेल था
शह और मात
शह और मात ।[2]

---

1 प्रभाकर माचवे, कवि के मुख से, नयी कविता, अंक २, सन् १९५५ पृ० १०८।
२ धर्मवीर भारती, ताश, एक कविताएं, कल्पना, नवम्बर ६४, पृ० ५१।

(ख) चादनी सित रात चितकबरी,
इसी भूमण्ड की गजी सतह पर
खोह–से खण्डहर
कपाला म धसा ज्या रेंगता मनहूस म धिमारा ।
अचानक चौंक कर बुत छाव म
दो पख फडके,
क्यों किसी स्मृति ने कपूरो पर खडे हो
दूर की मेहराव में घुमती हुई
प्रेतात्माओ को पुकारा
"प्यार की अतृप्त खण्डित आत्मा
आश्वस्त हो
वह दद जीवित है तुम्हारा [१]

उक्त उद्धरणो का शब्दाथ तो स्पष्ट है किन्तु उनका आशय क्या है, यह स्पष्ट नहो है। प्रथम अवतरण म प्रयुक्त 'नारियल" एव "रसमलाई शब्द भी उसकी स्पष्टता मे बाधक हैं। 'नारियल एव रसमलाई म से कौन अधिक सुस्वाद है, यदि यह प्रश्न किया जाए तो कदाचित् द्वितीय के ही पक्ष में उत्तर मिलेगा। किन्तु कवि के कथन से लगता है कि प्रथम का अधिक महत्त्व है क्योंकि उसके भ्रम म 'चन्द्रमा" "रसमलाई" खाता है अन्यथा शायद वह 'नारियल" को ही अधिक पसन्द करता। किन्तु यदि इन शब्दो के सापेक्षिक आस्वाद पर ध्यान न भी दिया जाए तो भी उक्त अवतरण का आशय स्पष्ट नहो होता। हा बौद्धिक शीर्षासन से अवश्य उसके आशय की स्पष्टता की कुछ आशा हो सकती है।

द्वितीय अवतरण के विषय मे कहा जा सकता है कि इसमे बिम्बो से एक वातावरण प्रस्तुत किया गया है ऐसा वातावरण जिससे कवि का आशय स्वत प्रकट हो जाना चाहिए भावुक के मन को प्रभावित करने के लिए प्रयुक्त शब्द-समूह को अर्थ की अपेक्षा नहीं होना चाहिए।[२] किन्तु केवल वातावरण-चित्रण मे कवि का अभीष्ट सिद्ध नहो होता। बिम्ब-निर्माण अथवा बिम्बात्मक चित्रण का उद्देश्य अभिव्यक्ति को अधिकाधिक प्रेषणीय बनाकर पाठकों के मम को छूना है अत जब तक इस उद्देश्य की सिद्धि न हो तब तक कवि को सफल चित्रकार नहीं कहा जा सकता। कविता के विषय म यह नहीं कहा जा सकता कि वह अमुक पाठक के लिए न होकर किसी विशिष्ट श्रेणी के पाठकों के लिए है। किसके पख फडके ? प्रेतात्माए कौन थीं ? मेहराब में क्यों घुम रही थीं।[२] इन प्रश्नो के उत्तर उक्त कविता से मिल जाने चाहिए पर उसम इनका अभाव है।

---

१ बालकृष्णराव कु वरनारायण परिचय नयी कविता अक ३ १९५६ पृ ३३ ३४।
२ वही वही वही वहा।

भाषा सामाजिक सम्पत्ति है उसका उद्देश्य कथ्य को दूसरों पर प्रकट करना है किन्तु यदि वह अपने उद्देश्य की सिद्धि में सफल नहीं होती तो उसका अस्तित्व व्यर्थ है। कवि सामाजिक प्राणी है, अपने भावों, विचारों एवं भावनाओं को अपनी कविता द्वारा दूसरों पर व्यक्त करना उसका उद्देश्य है। किन्तु जब वह भाषा का ऐसा वैयक्तिक प्रयोग करता है, शब्दों को मनमाना अर्थ देता है, शब्द-समूह के स्थान पर मनभीष्ट संकेत चिह्नों द्वारा अपना अभीष्ट सिद्ध करना चाहता है तो वह उसमें असफल एवं लक्ष्य भ्रष्ट होकर अपने पद के महत्त्व को खो देता है। निम्नांकित काव्य-पंक्तियाँ इसी प्रकार की हैं —

→△→
( हाय ! )
←△←
(नहीं चैन,
जागते ही कट गई रैन"
→←
(प्रेम यानी इश्क यानी लव)
"
△—△
?
(अरमानों के गाल पर चाटा
फरवरी का काटा
मुहब्बत में घाटा)[1]

उक्त कविता चमत्कारोत्पादक अवश्य है किन्तु उसमें कथ्य की वह प्रेषणीयता नहीं जो उसकी विशेषता है। माना कि उसमें काव्य एवं चित्रकला का समन्वय है किन्तु वह अवांछित है क्योंकि इससे वह न तो कविता ही रह गई है और न चित्र ही। कथ्य की सम्प्रेषणीयता के अभाव में पाठकों पर उसका वह प्रभाव नहीं पड़ता जो अन्यथा पड़ सकता था। उसे पढ़ कर महाकवि गालिब की यह उक्ति स्मरण हो जाती है —

अगर अपना कहा तुम आप ही समझे, तो क्या समझे
मजा कहने का तब है, इक कहे औ दूसरा समझे।

खैर, प्रेम की बात तो फिर भी गोपनीय हो सकती है। कवि किसी बात को कहकर भी न कहना चाहता हो अथवा कोड वर्ड्स के समान किसी अन्य व्यक्ति तक

---

१ शफीउद्दीन, प्रेम की ट्रेजेडी।

अपने कथ्य को पहुँचाना ही उसका उद्देश्य हो, सामाजिक नियन्त्रण, भय निन्दा की भावना अथवा कथ्य के अनौचित्य से बचने की प्रवृत्ति के कारण वह ऐसा करता हो किन्तु अन्य क्षेत्रों में अस्पष्टता की इस प्रवृत्ति का औचित्य क्या हो सकता है? रीतिकालीन कवि बिहारी अथवा उनकी परम्परा के कवियों के नायक नायिका यदि भरे भवन में संकेत भाषा से बात करके अपना अभीष्ट सिद्ध करें तो उन्हें इसके लिए दोषी ठहराना अवश्य उचित नहीं, चोर डाकू यदि कोड (Code) भाषा का प्रयोग करें तो इसमें कोई अस्वाभाविकता नहीं, उसे समझने के लिए 'अहिफन कमल चक्र टकारा, तरुवर पवन युवा सुस्कारा' तथा 'अगुलिन अधर घुटकिन मात्रा' जैसी पंक्तियों में अन्तर्हित कोड भाषा सीखनी आवश्यक है। किन्तु जिस विद्या की कोई जानकारी नहीं जिसकी कोई Code Language नहीं, जिसे केवल कवि ही जानता है और वह भी ऐसे वैज्ञानिक एवं व्यवस्थित रूप से नहीं कि उसे अन्य भी सीख सकें उसे कैसे जाना जाए? जिस कथ्य से केवल कवि ही परिचित है उसे पाठक कैसे समझे? जिन संकेतों अथवा शब्दों को केवल कवि ही समझता है, पाठक अध्येताओं अथवा समाज के लिए उनका क्या महत्त्व है? भाषा की सामाजिकता का फिर क्या अर्थ है? ये प्रश्न हैं जो नये कवियों के अस्पष्टतावादी दृष्टिकोण की देन हैं और जो पाठक अध्येता एवं आलोचक समाज के लिए एक प्रकार की उलझन एवं समस्या उत्पन्न करते हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि इस समस्या का निदान यद्यपि कालान्तर में समय प्रस्तुत करेगा—नयी कविता ज्यों ज्यों समाज के निकट आती जायगी, त्यों त्यों वह उसके लिए अधिकाधिक स्पष्ट होती जाएगी—तथापि इसके लिए कवि के दृष्टिकोण का अभीष्ट संस्कार भी अपेक्षित है।

## भाषा की समस्या

नया कवि परम्परागत काव्य भाषा का विरोधी है। वह उसे निर्जीव एवं निष्प्राण मानता है और पुरानी मान्यताओं पुराने शब्दों तथा पुरानी कहावतों को नए अर्थ से विभूषित करके कविता में प्रयुक्त करता है क्योंकि उसका विश्वास है कि इस प्रकार शब्दों के नव्य प्रयोग से पाठक की अनुभूतियों को छूने में सहायता मिलती है।'[1] उसके अनुसार मौजूदा हालत में कवि-कर्म के लिए ये दो बातें बहुत जरूरी हैं—'उन्मुक्त साहसिक और क्रान्तिकारी कल्पना जिससे शब्द पुनरुज्जीवित हों और आज की बुझी, बरबाद मरी हुई भाषा के स्थान पर एक जीवन्त भाषा आए, और आज की भाषा चूँकि मुर्दा और अवरुद्ध सामाजिक संस्थाओं का प्रतिफल है इसलिए इसके स्थान पर एक विकासमान और प्राणवान सभ्यता के हित में क्रान्तिकारी राजनीति से प्रतिबद्धता।'[2]

---

१ हरिनारायण व्यास वक्तव्य दूसरा सप्तक पृ० ६१।
२ कमलेश मरी हुई कविताए एक वक्तव्य, कल्पना, दिसम्बर ६४ पृ० ५।

नया कवि जहाँ तक भाषा की सरलता पर बल देता है, 'जिस तरह हम बोलते हैं, उस तरह तू लिख, और उसके बाद फिर हमसे बड़ा तू दिख" कहकर दनदिन प्रयोग की भाषा का अपने काव्य मे प्राथमिकता देता है वहाँ तक तो वह काव्य भाषा का उचित प्रयोग करता है किन्तु जब वह परम्परागत काव्य-भाषा को निर्जीव एव निष्प्राण घोषित करके उसका तिरस्कार और बहिष्कार करता है और उसके परिवतन के लिए बेचैन होता है तो उसकी बुद्धि पर तरस आता है। निम्नांकित पंक्तियाँ कवि की अबाधित व्याकुलता की अभिव्यजक हैं —

'कितनी सकुचित, जीर्ण, बूढ़ी हो गई आज कवि की भाषा।
कितने प्रत्यावतन जीवन में चचल लहरों के समान
आए, बह गये, काल बुद्-बुद सा उठा, मिटा पर परम्परा
अभिमुक्त
अभी परिवर्तित हुई न परिभाषा
रूप की, व्यक्ति की। नव विचार, नव ज्ञान रीति,
नित नित नवीन जीवन के स्वर, पर प्राचीना
अब भी है वाणी की वीणा।' [1]

नये कवियो की मान्यता है कि भाषा पुरानी हो गई है, वह नये युग बोध की अभिव्यक्ति देने म सवथा असमथ है, अत नयी कविता को नयी भाषा गढ़नी पड़ेगी। शब्दों में कितना नया अथ भरा गया है नया कवि इसी को कविता की श्रेष्ठता की कसौटी मानता है। किन्तु सहस्राब्दियों से चली आई भाषा जो अब तक न जाने कितनी रचनाओं का भार वहन करती आई है और जिसके पीछे न जाने कितने चितन एव कल्पना-साम्राज्य का उत्तराधिकार है, असमथ किस प्रकार हो गई यह समझ में नहीं आता। कवि को भाषा पर पूर्णाधिकार होना चाहिए जिससे वह उसकी भावानुगामिनी होकर उसकी प्रत्येक अनुभूति को अभिव्यक्ति दे सके उसके प्रत्यक भाव, विचार एव चिन्तन को अनुरूप शब्दों म बांध सके। उस (कवि) में साधनाजन्य शिल्प और चातुय भी होना चाहिए जिससे वह भावों को ठीक उसी नर्मी या गर्मी से रंगीनी या सादगी से अभिव्यक्त कर सके, जिसके साथ वे बाहर आना चाहते हैं। टेलीफोन के एक सिरे पर हम जिस प्रकार बोलते हैं, उसके दूसर सिरे पर वसा ही सुना जाता है। कविता भी दो हृदयों के बीच टेलीफोन का काय करती है। कवि के हृदय म उठे हुए भाव ठीक-ठीक पाठक के हृदय में पहुँच जाएँ तभी पाठक को उस आनन्द की अनुभूति होती है, जिसका अनुभव कवि ने किया है। [2] अत कवि की महत्ता इसी में है कि भाषा उसके भावों की अनुगामिनी हो,

१ भारतभूषण अग्रवाल, तार सप्तक (स० अज्ञेय) पृ० २४-२५।
२ रामधारीसिंह 'दिनकर', कविता की परख, काव्य की भूमिका पृ० १४१।

शब्द उसके संकेत पर चलें और वह अपनी अनुभूति को, अपने भावों विचारों एवं कल्पनाओं को अनुकूल भाषा के माध्यम से सम्यक् अभिव्यक्ति देने में समर्थ हो। महान् कवि न तो भाषा की दरिद्रता अथवा असमर्थता की बात करता है और न उपयुक्त शिल्प एवं कलात्मकता की, ठीक उसी प्रकार जैसे कुशल वक्ता भाषा अथवा शब्दों के अभाव की चिन्ता नहीं करता। वक्ता की विशेषता इसी में है कि वह अपने भावों विचारों एवं चिंतन की कुशल अभिव्यक्ति कर सके। जो ऐसा करने में समर्थ नहीं, उसे वस्तुतः वक्ता नहीं माना जा सकता। इसी प्रकार भाषा एवं शब्दों की दरिद्रता अथवा असमर्थता की बात करने वाला कवि भी वस्तुतः श्रेष्ठ कवि नहीं माना जा सकता। अतः नये कवि का यह वचन कि 'जो व्यक्ति की अनुभूति है उसे समष्टि तक कैसे पहुँचाया जाय यह समस्या है, वस्तुतः उसकी असमर्थता का ही परिचायक है।

यहाँ यह स्मरणीय है कि भाषा सामाजिक सम्पत्ति है। अतः व्यक्ति को उसको उसी रूप में उसके शब्दों एवं प्रतीकों को उन्हीं अर्थों एवं संकेतों के लिए प्रयुक्त करना चाहिए जिनके लिए वे समाज द्वारा निर्दिष्ट हैं वैयक्तिक अथवा एकान्त मनगढ़ अर्थ में उनका प्रयोग केवल अनुचित एवं अस्वाभाविक ही नहीं सामाजिक नियमों की उपेक्षा करने के कारण एक प्रकार का अपराध भी है। अतः शब्दों का मनमाने अर्थों में प्रयोग एवं उलट फेर न केवल कवि को लक्ष्य-भ्रष्ट करता है, प्रत्युत उसे सामाजिक अपराधी भी बना देता है क्योंकि सामाजिक व्यवस्था को भंग करने का किसी को अधिकार नहीं हो सकता। नए कवि को स्मरण रखना होगा कि कविता का आकार उसकी शैली-शिल्प भिन्न हो सकता है पर शब्द वही रहते हैं, और उनका अर्थ भी प्रायः वही रहता है, उनमें किसी प्रकार का क्रान्तिकारी परिवर्तन सम्भव नहीं —

A writer could certainly write a poem about a new invention but only in material—words—that could not be unprecedented Language of its own nature repudiates a complete break between past and present A 'revolution of the word in the sense of the words changing completely their sense and becoming somethin else is one kind of revolution that is impossible a revolution in human nature being perhaps another ictionaries contain the material with which writers work and they are overwhelmingly traditional It may be theoretically possible to discover an entirely new form in which a poem might be written, but form is only one aspect of a poem and its unprecedentedness would only

with the unavoidable continuities of grammar and usage [1]

शब्दों के नये अर्थों में प्रयोग एवं नव्य अर्थवत्ता के विषय में भी यह स्मरणीय है कि उनका प्रयोग नितान्त नव्य अर्थ में नहीं किया जा सकता। हाँ, उनके प्राचीन मूलार्थ को सुरक्षित रखते हुए यदा कदा उन्हें नये सन्दर्भों में प्रयुक्त किया जा सकता है यद्यपि उनके इस प्रयोग की भी सीमाएं मानी जा सकती हैं। यही कारण है कि कभी-कभी यह कहा जाता है कि कविता पूर्णत नयी नहीं हो सकती। आलोचक स्टेफेन स्पेण्डर की अधोंकित पंक्तियाँ इस विषय में द्रष्टव्य हैं —

Poetry could not be completely modern and new in the way that the other arts could be because it uses as its material words which are old and social and which only to a limited extent can be used in new ways The limitation is imposed by the fact that the meaning, words have outside the poem, has to be maintained even if it is stretched within the poem [2]

यही नहीं यह कहना भी शायद अनुचित नहीं होगा कि कविता में प्रयुक्त शब्द उसके लिए कोई विशिष्ट रूप नहीं रखते, वरन् इसके साथ ही यह भी कहा जा सकता है कि काव्य में प्रयुक्त शब्दों का अर्थ किसी विशिष्ट सलाप की अपेक्षा अधिक व्यापक एवं शुद्ध होता है। वह उस शब्दार्थ में सशोधन करता है जो बाह्य प्रयोगों से विकृत हो जाता है —

Literature is an art whose basic condition is that the medium used—words—is not special to the art Within poetry the mean ing of words are both more exact and more extended than they are in a special discourse They correct meanings which are abused outside [3]

अपने विशिष्ट अनुभव को व्यक्त करने के लिए साधारण शब्दार्थ को असमर्थ पाकर नया कवि उसका विशिष्ट प्रयोग करता है—शब्द के निर्दिष्ट अर्थ से भिन्न उसमें विशिष्ट अर्थ भरने का प्रयत्न करता है। इसके लिए वह तरह तरह के प्रयोग करता है एक तो विज्ञान, दर्शन मनोविज्ञान, मनोविश्लेषण-शास्त्र बाजार, गाव, गली-कूचे सभी जगह से शब्द एकत्र करता हुआ अपने शब्द भाण्डार को व्यापक बनाता है, दूसरे शब्दों का विचित्र और सर्वथा अनर्गल प्रयोग करता है, और तीसरे, अपने अप्रस्तुत विधान को अत्यन्त असाधारण रूप देने का प्रयत्न करता है। इसके अतिरिक्त

1 Stephen Spender, Lit and Painting The Struggle of the Modern, p 191
2 Ibid, p 190
3 Idid, p 191

वह कविता की अंतर और बाह्य शक्ति पर इतना बल देता [illegible] पाठकों को [illegible] करता है कि वह इतना व्यस्त हो जाती है और उसको सब अलग [illegible] देती है। इससे [illegible] को [illegible] के [illegible] रेखा के लिए प्रकार के अनेक प्रयोग उठाते हैं जिससे उसे इतर शब्दों की सहायता लेनी पड़ती है—कविता को प्रायः बाहर विराम चिह्न [illegible] और [illegible] टिप्पणी [illegible] इसकी ओर और रेखाओं के बाद अधूरे शब्दों की सहायता लेनी पड़ती है। या फिर, वह विदेश के प्रभाववादी भविष्यवादी आदि कवियों का [illegible] करता हुआ [illegible] के सामने एक बोधगम्यता उपस्थित कर देता है।

परिणाम यह होता है कि वह स्वयं भ्रष्ट होकर अपने काव्य के उद्देश्य की पूर्ति नहीं कर पाता। उसके भाव एवं विचार इतर उन्हीं तक सीमित रहते हैं पाठक तक उनकी पहुँच नहीं हो पाती। निम्नांकित काव्य-पंक्तियाँ मेरे कथन की इसी [illegible] की द्योतक है[1] :—

→△→
(हाथ !)
←△←
(नहीं घेर
आगे हो कट गई रेल——)
→ ←
(प्रेम पानी हाथ पानी सब)
''
△—△
……………………………?
(परमाणों के गाल पर चोट
झरबेरी का कांटा
मुहब्बत म घाटा)[2]

इसके अतिरिक्त शब्दों का मनमाना प्रयोग उलट-फेर एवं विकृतीकरण भी उसके अभीष्ट-साधन में व्यवधान उपस्थित करता है और पाठक सहृदयों एवं आलोचकों के समक्ष एक समस्या उपस्थित कर देता है। यही नहीं, सामान्य स्तर का पाठक तो ऐसी स्थिति में कभी-कभी पथ भ्रष्ट भी हो जाता है। कवि द्वारा प्रयुक्त शब्द रूपों को शुद्ध मानकर कभी वह उनका प्रयोग करने लगता है और कभी इस उधेड़ बुन म पड़ जाता है कि कवि द्वारा प्रयुक्त शब्दों के शुद्ध रूप क्या हैं और उसके विकृत प्रयोगों के मूल में कौन-कौन से कारण अन्तर्हित हैं। बहुवचन के स्थान

---

१ डा० नगेन्द्र, आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ, पृ० ११६।
२ शफीउद्दीन, प्रेम की ट्रेजेडी।

पर एक वचन का [1] और एक अर्थ के लिए दो-दो शब्दों का प्रयोग [2] वह क्यों करता है ? सज्ञा से क्रिया [3] क्रिया से सज्ञा [4] और सज्ञा से विशेषण [5] के निर्माण मे उसका उद्देश्य क्या है ? उपसर्गों तथा प्रत्ययो के एक साथ प्रयोग द्वारा शब्द वचित्र्य को वह जन्म क्यों देता है ? निपात द्वारा शब्द-निर्माण, [6] बहुवचन का भी बहुवचन बनाने, [7] सकर समासों [8] तथा ग्रामीण शब्दों [9] के अवाछित प्रयोग तथा शब्दों को अनेक प्रकार से बिना किसी आवश्यकता के ही विकृत [10] करने की क्या आवश्यकता

---

१-२ कितनी बार
कितनी साझ
इस सिन्धु बेला तट
बितायीं ।
—नरेश मेहता, सशय की एक रात, पृ० ६२ ।

३- इनकी वास्तविकता को
कभी चुनौता ही नहीं गया ।
—वही वही प० ६० ।

तथा

जब सुभाष ने अग्रगामि दल नगर बम्बई मे स्थापा था ।
—प्रभाकर माचवे तार सप्तक, प० ८४ ।

४- कितनी ही पर्वत माला की घूमों मे से ।
—गिरिजाकुमार माथुर, तार सप्तक, पृ० ४४ ।

५- तुम्हारी यह दतुरित मुसकान ।
—नागार्जुन सतरगे पखों वाली पृ० ४६ ।

६- अच्छी है किसी दुखियारे की सहायता
बेकार पोथा भर लिखना हाय हायता ।
—प्रभाकर माचवे, स्वप्न भग, पृ० ५६ ।

७- मेघ राजा- ।
जलों को छाड़ो ।
—नरेश मेहता बन पाखी सुनो, प० ४३ ।

८- देख आया चन्द्र गहना ।
—केदारनाथ अग्रवाल, युग की गगा, प० ५० ।

९- बनाकर ठूठ बनाकर छोड गया पतझार
अलग अलगुन सा खडा रहा कचनार ।
नागार्जुन, सतरगे पखों वाली पृ० १८ ।

१०- इन उपकारों के बदले
कृतज्ञित हूँ ।
—नरेश मेहता, सशय की एक रात, पृ० २६ ।

तथा

जबकि नित्य जग के हाटक में मृषा आँसुओं का बिक्रा है ।
—प्रभाकर माचवे, स्वप्न भग पृ० ८३ ।

है ? क्या इस प्रकार भाषा के क्षेत्र में अराजकता उत्पन्न करने से सम्प्रेषणीयता में कोई व्यवधान अथवा समस्या उत्पन्न नहीं होगी और यदि होगी है तो उसका समाधान क्या है ? इस विषय में यद्यपि यह कहा जा सकता है कि यदि भाषा को स्थिर मानकर उसमें किसी प्रकार का परिवर्तन न किया जाए तो नए अर्थों एव सन्दर्भों की अभिव्यक्ति किस प्रकार की जाए तथापि इसके साथ ही यह भी सत्य है कि उसमें किसी प्रकार का कोई क्रान्तिकारी परिवर्तन करना तो दूर रहा, उसे पूर्णत गत्यात्मक रूप भी नहीं दिया जा सकता क्योंकि ऐसी स्थिति में भाषा सदैव परिवर्तित होता जाएगा[1] जो कि उचित नहीं होगा, क्योंकि उससे सम्प्रेषणीयता के उद्देश्य की सिद्धि न हो व्यवधान पड़ेगा । अत यद्यपि नए अर्थों स्थितियों एव सन्दर्भों के लिए नए शब्दों का प्रयोग आवश्यक है, तथापि पूर्व प्रचलित शब्दों तथा उनके अर्थों में किसी प्रकार का क्रान्तिकारी परिवर्तन उचित नहीं । भाषा न तो निर्जीव है न बेस्वाद, न बुझी हुई, न जीर्ण और न बद्ध । कवि का उसके प्रति इस प्रकार का दृष्टिकोण अनुचित एव अविवेकपूर्ण है क्योंकि इससे उसकी सर्वशक्तिमत्ता एव सम्प्रेषण-क्षमता में ही सन्देह उत्पन्न होने लगता है । समस्या केवल कवि के भाषा के प्रति दृष्टिकोण के कारण ही है । अत उसके अभीष्ट परिष्कार से ही उसका समाधान हो सकता है । कहने की आवश्यकता नहीं कि भाषा के प्रति यह दृष्टिकोण सभी नए कवियों का न होकर केवल कतिपय का ही है अधिकांश नए कवियों को उसकी सम्प्रेषण-क्षमता में कोई सन्देह नहीं ।

---

1 If language was static, the communication of new meanings and refernces would be altogether impossible But it would be equally incompatible to attribute to it the characteristic of dynamism for the meaning would constantly change
—Dr Padma Agrawal, Symbolism in Language and Everyday Life, A Psychological *Study in Symbolism*, p 289